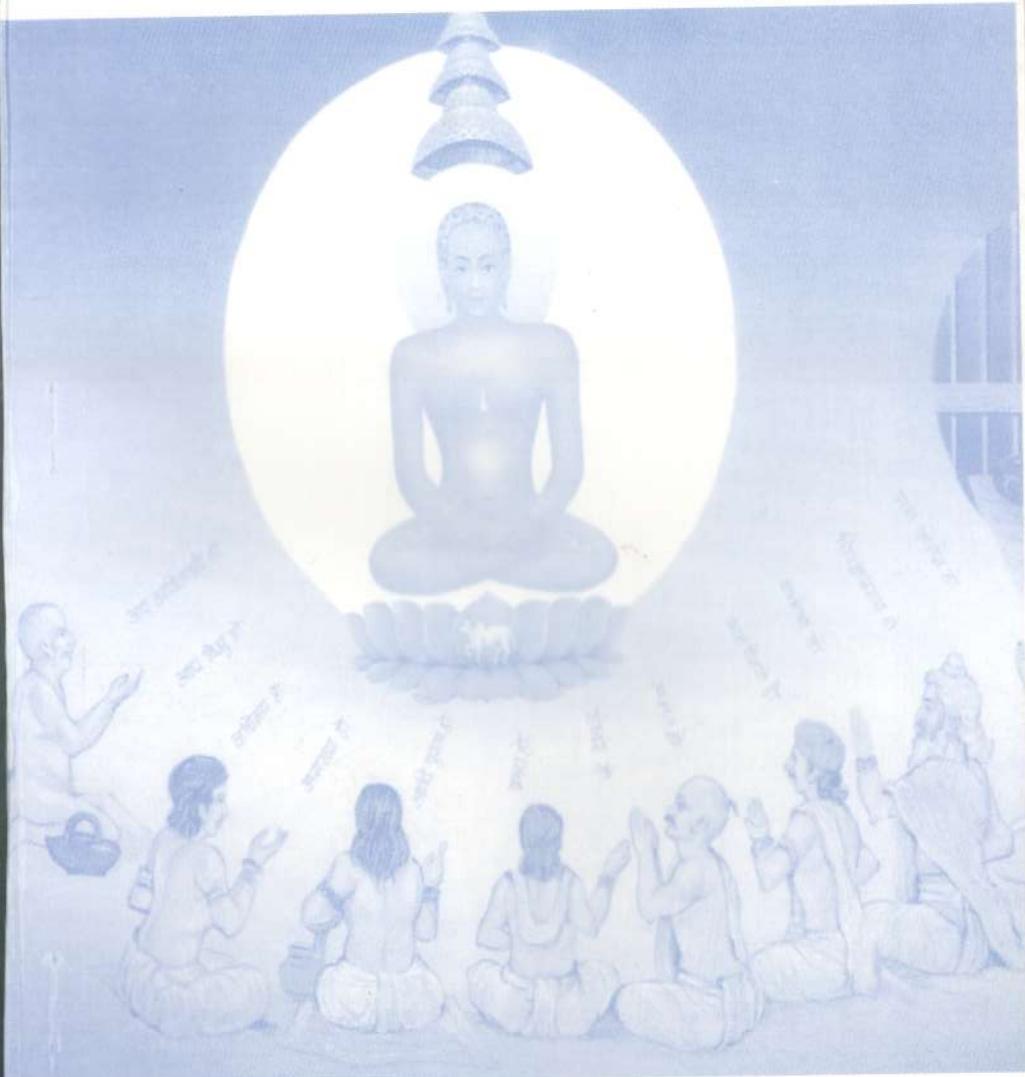


सत्य परमेश्वर

Truth is God

(आध्यात्मिक—वैज्ञानिक—व्यावहारिक परिप्रेक्ष्य में)



आचार्य श्री कनकनंदीजी गुरुदेव

सत्य परमेश्वर

Truth is God

(आध्यात्मिक—वैज्ञानिक—व्यावहारिक परिप्रेक्ष्य में)

मेरा चार—आयाम सिद्धान्त

भगवान् है मेरा परम—सत्य स्वरूप

सिद्धान्त है स्याद्वाद—अनेकान्त रूप।

सतत साधना है मेरी स्वस्थ—समता

उपलब्धि हो मेरी परम—शान्ति रूपा।

आचार्य कनकनन्दी



आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव द्वारा प्रदत्त द्वय मुनि दीक्षा के अवसर प्रभाग लेते हुए दिग्म्बर एवं श्वेताम्बर संप्रदायों के साधु—साध्वी तथा आवक—श्राविकाएँ (उदयपुर)



आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव के आशीर्वाद से एवं आचार्य महाप्रज्ञ के सामिध्य में आयोजित जैन दर्शन एवं विज्ञान राष्ट्रीय संगोष्ठी के अवधार पर द्वय आचार्यों के साहित्य के विक्रय केन्द्र में संस्थान के कार्यकर्ता छोटू लाल चित्तौड़ा एवं डॉ. सन्तोष कुमार चित्तौड़ा

प्रस्तुत कृति की सार्वभौमिकता

सत्य के बिना आध्यात्मिक, धर्म, दर्शन, विज्ञान, गणित, संस्कृति, सभ्यता, शिक्षा, कला, इतिहास, पुराण, साहित्य, न्याय, राजनीति, व्यापार, व्यवहार, कथन, आदान—प्रदान आदि ही कथा स्वर्ग से लेकर मोक्ष तथा परमात्मा परमेश्वर का भी अस्तित्व संभव नहीं। इतना ही नहीं सत्य का न कोई निर्माण या विनाश कर सकता है। अतः इस कृति की विषय—वस्तु शाश्वतिक, सार्वभौम, सर्वोपरि—सर्व शक्तिवान्, परमरक्षक, सर्वोपयोगी है। अतएव सत्यग्राही महानुभाव भले वे किसी भी धर्म, जाति, लिंग, देश, काल, कार्यक्षेत्र के हो उन सबके लिए यह कृति सर्वत्र—सर्वश्रेष्ठ—सर्वज्येष्ठ उपयोगी है। (आचार्यकनकनन्दी)

लेखक :—आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव

सत्य परमेश्वर

Truth is God

(आध्यात्मिक—वैज्ञानिक—व्यावहारिक परिप्रेक्ष्य में)

लेखक :— आचार्य श्री कनकनंदी जी गुरुदेव

पुण्य स्मरण

- प. पू. सत्य—अहिसा—शान्ति के प्रतीक विमलनाथ परमेश्वर
- के निर्मल—शान्त—प्रदूषण रहित प्राकृतिक वातावरण में (ग.
- पु. कॉ. सागवाडा 2007) ज्ञान—ध्यान—समता—शान्ति—
- स्वाध्याय—साहित्य लेखन रूपी एकान्त साधना स्वरूप पावन
- वर्षायोग के स्मरण ने

ग्रंथांक—172

प्रथम संस्करण—2007

प्रतियोगी—1000

मूल्य—75 रुपये (पुनः प्रकाशनार्थ)

मुद्रांकन :— मुनि तीर्थ नन्दी

मुद्रक शोधन एवं लेखन सहायक :— मुनि श्री श्रुतनन्दी,

मुनि आध्यात्म नन्दी जी, आ. ऋषि श्री,

मुद्रक :—

सीमा प्रिन्टर्स, उदयपुर, फोन : 0294-3295406

प्राप्ति स्थान

धर्म दर्शन सेवा संस्थान, ड्रॉफ्ट नं. 1 क्र. 15 डिस्ट्रिक्ट

द्वारा—छोटू लाल चितौड़ा, राजस्थान—313001(राज.)

चंद्रप्रभ दि. जैन मंदिर आयड़, आयड बस—स्टॉप के पास उदयपुर— 313001(राज.)

फोन नं.— (0294) 2413565. 6941114

सम्पर्क सूत्र

डॉ नारायण लाल कच्छारा (सचिव) 55, रवीन्द्रनगर उदयपुर 313001(राज.)

फोन (0294) 2491422 मो. 9214460622

ई—मेल: nlkachhara@yahoo.com.

पुस्तक परिचय

सत्यं भगवं, सत्य परमेश्वर, सत्यं धर्मः सनातनः, सत्यंब्रह्म सनातम्, सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्, सत्यं सत्सु सदा धर्मः, सत्यमेव जयते नानृतम्, ब्रह्मसत्यं जगत् गिथ्या, सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप आदि महान् सूत्र/वाक्य/नीति/न्याय/व्यवहार व्यक्ति कल्याण से लेकर विश्व कल्याणकारी है। क्योंकि सत्य रूप होने पर ही धर्म, भाव, न्याय, व्यवहार, कथन आदि कल्याणकारी है अन्यथा विध्वंसकारी है। सत्य की मान्यता तथा आवश्यकता प्रत्येक काल, धर्म, समाज, व्यक्ति, व्यवहार, कथन आदि में होने पर ही सत्य की व्यापकता—गहनता—सूक्ष्मता—श्रेष्ठता—ज्येष्ठता को कोई—कोई विरले महात्मा पुरुष ही जानते हैं—मानते हैं—अपनाते हैं, अन्यथा तो अधिकांश व्यक्ति सत्य के नाम पर असत्य को ही जानते हैं, मानते हैं, अपनाते हैं। जहाँ सत्य है वहाँ ही धर्मदर्शन, विज्ञान, गणित, न्याय, राजनीति, व्यापार, व्यवहार, कथन, कला, संगीत, सुन्दरता श्रेष्ठता, ज्येष्ठता, गरिमा, पवित्रता, शान्ति—समता—विकास—मोक्ष—ईश्वर सम्बन्ध है अन्यथा सत्य के अभाव में धर्म—दर्शन—विज्ञान से लेकर मोक्ष—ईश्वर तक असत्य है, झूठ है। ऐसा परम गरिमामय, विराट—विश्वरूप, सर्वाधार, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी सत्य का दिग्दर्शन इस शोध पूर्ण कृति में करने का एक नम्र प्रयास सन्म्र सत्य ग्राही सज्जनों के लिए किया है।

आचार्य कनक नन्दी—ज्योति पर्व

ग. पु. कॉ. सागवाडा—2007

सत्य की आवश्यकता

प्राज्ञानिक डॉ. पारस मल अग्रवाल (भूतपूर्व वैज्ञानिक अमेरिका)

वस्तु के सत् स्वभाव की समझ प्रामाणिक समझ को सत्य कहा जा सकता है। वचन से सत्य एवं प्रियकारी बोलना तो सत्यांश है। विज्ञान के अनुसन्धान एवं आविष्कार सत्य की खोज एवं सत्य के उपयोग पर आधारित होते हैं। बैलगाड़ी का आविष्कार भी पहिये की सत्य पर आधारित था। वैज्ञानिक एवं इंजीनियर आज यह मानते हैं कि पहिये की सत्य समझ एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी। किन्तु बैलगाड़ी की सत्य समझ की तुलना में हवाई जहाज एवं मोबाइल फोन से संबन्धित सत्य समझ एवं तकनीकी कई गुना जटिल है। वैज्ञानिक विकास ही नहीं अपितु मानव समाज का विकास एवं प्राणियों की रक्षा भी सत्य समझ पर आधारित है। अतएव ज्ञानीजन यह समझाते हैं कि अपने एवं समाज के विकास के लिए सत्य की समझ का भी विकास करते रहो। कहा जाता है कि चोरों का नगर नहीं हो सकता है। ऐसा कोई नगर आज तक दुनियाँ में बन नहीं पाया है। इस तथ्य से भी यही सिद्ध होता है कि झूठ के बल पर समाज की व्यवस्था नहीं चल सकती है। यह भी कहा जाता है कि चोरी या ठगी का धन्धा भी परस्पर ईमानदारी के बिना नहीं चलता है। तात्पर्य यह है कि सत्य की आवश्यकता पग—पग पर होती है।

यहाँ कोई कह सकता है कि सत्य की महत्ता मैं मानता हूँ। मैं स्वीकार करता हूँ कि इसके बिना न तो विज्ञान आगे बढ़ सकता है और न ही समाज चल सकता है किन्तु यदि सत्य को अन्य सभी समझ लें व अन्य सभी अपनालें व मैं नहीं समझूँ व मैं नहीं अपनाऊँ तो मुझे इससे हानि न होकर लाभ ही लाभ है। इसके विपरीत मैं समझूँ व मैं अपनाऊँ तथा अन्य नहीं अपनाएं तो मुझे हानि ही हानि है। अतः सत्य के उपदेश देने वाले का समर्थन तो मुझे करना चाहिये ताकि अन्य व्यक्ति सत्य की खोज के अनुसार सत्य की परवाह न करते हुए मनवाहा जीवन जीऊँ। मैं तो ऐसा जीवन चाहता हूँ जिससे धन, यश, भोग सामग्री, स्वास्थ्य, मौज—मस्ती आदि सभी मिलते हैं? मुझे सत्य से क्या प्रयोजन?

जब तक उक्त प्रश्न या मनोदशा का उत्तर आज का व्यक्ति नहीं समझेगा तब तक सत्य का प्रचार—प्रसार नहीं हो सकता है। पहली बात तो यह है कि हर व्यक्ति यदि कुण्ड में दूध के बदले पानी का लोटा डालेगा तो वह कुण्ड दूध न होकर पानी का कुण्ड ही बनेगा।

दूसरी बात यह है कि असत्य का आश्रय लेने से थोड़े समय के लिये थोड़े मामलों में चाहे लाभ हो जाये किन्तु लम्बे समय तक स्वास्थ्य एवं शान्ति संभव नहीं है। कोई व्यक्ति यदि अपने मकान के आसपास गंदगी करता है तो उस गंदगी से मक्खी—मच्छर जुड़ेंगे। वे ही मक्खी—मच्छर एवं बदबू उस व्यक्ति को बुरी तरह से जैसे प्रभावित करते हैं उसी तरह असत्य आचरण से व्यक्ति एक ऐसे वातावरण को प्राप्त करता है जो उसकी शान्ति एवं स्वास्थ्य को व आगे चलकर धन को भी प्रभावित

करते हैं। चाहे यह वातावरण उसके पुत्र—पुत्री, पति/पत्नी, नौकर/बॉस, आदि के साथ में हो।

बैलगाड़ी के सत्य या वायुयान के सत्य या अर्थशास्त्र के सत्य से परे एक साथ है अविनाशी आत्मा का अस्तित्व जिसकी समझ के अभाव में संसार का चाहा—मीठा भ्रमण चलता रहता है। इस परम सत्य पर अनुभवी सन्त की कलम से जो भी आता है वह कई व्यक्तियों के लिये अमृतरूप सिद्ध हो सकता है।

मुझे आशा है कि आचार्य श्री कनकनन्दी जी का इस विषय में लेखन भव्य जीवों के लिये मंगलमय सिद्ध होगा।

पुनश्च, सत्य विषय से संबन्धित पुस्तक पढ़ते हुए एक बात ध्यान रखना है कि विज्ञान में गुरुत्वाकर्षण के नियमों को समझने के लिए बार—बार सभी वैज्ञानिकों को पुराने प्रयोग दुहराने की आवश्यकता नहीं है। पूर्ववर्ती वैज्ञानिक प्रयोगों के निष्कर्षों को मानकर आगे बढ़ा जा सकता है यानि विज्ञान में आस्था से बहुत काम चल जाता है। किन्तु आत्मा के सत्य को समझने के लिए पूर्व तीर्थकरों एवं आचार्यों के अनुभव सुनने से ही काम नहीं चलता है। आस्था के अलावा स्वयं अनुभव करना होता है। इस अपेक्षा आत्मिक सत्य अधिक वैज्ञानिक, अधिक ताजा एवं स्वयं के अनुभव पर आधारित होता है।

पारसमल अग्रवाल
उदयपुर
दि. 18/11/07

परमात्मा की मोक्षावस्था

नित्यमपि निरूपलेपः, स्वरूप समवस्थितो निरूपधातः।
गगनमिव परमपुरुषः परम पदे स्फुरति विशदतमः ॥ 223

पु. सि. पृ. सं. 416

समस्त पुरुषार्थ सिद्धि को प्राप्त करने वाला परम पुरुष परम पद रूप सिद्ध पद में स्फुरायमान होती है। यह परम पुरुष सदा कर्मादि लेप से सहित, स्वस्थ रूप में स्थित, समस्त धात प्रतिघात बाधाओं से रहित गगन के समान लेप से रहित चिज्योति रूप से सिद्ध पद में अतिशय रूप से स्फुरायमान होता है।

परमात्मा का स्वरूप

कृतकृत्यः परमपदे, परमात्मासकल—विषयविरतात्मा ।
परमानन्द—निमन्तो, ज्ञानमयो नन्दति सदैव ॥ 224 पु.सि.पृ.सं. 417

परमपद स्वरूप प्रकृष्ट सिद्ध पद में वह परम पुरुष/परमात्मा/शुद्धात्मा कृतकार्य होकर, सकल विषय से विरक्त होकर परमानन्द में अर्थात् अनन्त सुख में लीन रहता है। वह परमात्मा पूर्णतया ज्ञानधन स्वरूप होकर मुक्त अवस्था में विराजमान होता है।

वैशिवक एकता व सत्य, समता, शान्ति, के उपासक आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव

साध्वी ऋद्धि श्री
भारत भूमि की यह विशेषता रही है कि जब इस देश के लिए समुज्ज्वल नक्षत्र व समर्पित व्यक्तित्व की अपेक्षा हुई तब—तब किसी न किसी महा मानव, दिव्यात्मा का आगमन इस वसुधा पर हुआ। वर्तमान परिवेश की इस आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए रत्नत्रय की साधना के समुज्ज्वल साधक, वैशिवक एकता के दिग्दर्शक, समुन्नत आदर्शों के उपासक आचार्य रत्न श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव इस भारत वसुधा पर अवतारित हुए हैं। वर्तमान परिवेश की परिस्थितियों का अवलोकन करने पर वैशिवक एकता, सत्य व समता की आवश्यकता सर्वत्र अनुभव की जा रही है। क्योंकि सम्भाव, सद्भाव, उदारता, संदेवनशीलता, सहिष्णुता, अनाग्रहवृत्ति, सहयोग, समन्वय, मैत्री, दया, करुणा, परोपकार, क्षमा, सहअरितत्व आदि तत्त्व मानवीय एकता के सबल सूत्र हैं। आज संपूर्ण विश्व में इन मानवीय मूल्यों का अभाव हो रहा है इन मानवीय मूल्यों के अभाव में सम्पूर्ण मानव जाति दुःखी, अस्त—व्यस्त, संत्रस्त, रोगी, भयभीत, आतंकित, विखण्डित है। ऐसे विषम अंधकारमय कष्ट कारक मार्ग से निकालने के लिए किसी महापुरुष की सहायता, मार्ग दर्शन, शिक्षा, शुभाशीष की परम आवश्यकता होती है। हम सभी को अंधकार से प्रकाश में लाने के लिए एवं दुःख से सुख प्राप्त कराने के लिए परम वन्दनीय पूज्य आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव का भाव व्यवहार एवं उनका जीवन दर्शन दृढ़ संबल—शुभाशीष प्रदायक है। अपने सत्य, समता, सम्भाव, सद्भाव, सहयोग, समन्वय, संगठन, दया, करुणा, मैत्री, क्षमा, परोपकार आदि नैतिक मानवीय मूल्यों को पहले अपने जीवन में साकार किया और बाद में इन आदर्श मूल्यों के बोधपाठ की शिक्षा दूसरों को प्रदान की। क्योंकि प्रभाव उनका प्रभावशाली होता है जो स्वयं आचरण शील हो। विश्व एकता का संगठित रूप स्व से क्रियान्वित हो इस के लिए आपने अपने जीवन में शैशवकाल से ही “मिती मे सब भूदेसु वैरं मज्जं ण केणवि” “वसुर्दैव स्वकुटुम्बकम्” “सर्वंवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया, बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय इत्यादि आदर्शों का अनुकरण—अनुसरण—क्रियान्वयन किया है। बिना किसी भेद—भाव के प्राणी मात्र का हित विकास, कल्याण हो यह आपका जीवन्त स्वप्न है। धर्म, गुरु, ग्रन्थ, जाति, पंथ, मत, संप्रदाय, वर्ण, वर्ग, भाषा, क्षेत्र, रहन—सहन आदि के आधार पर मानव—मानव के बीच भेद की दीवारें खड़ी करना आपका जन्मजात स्वभाव नहीं है। आपकी सशक्त उद्घोषणा रही है कि विश्व एकता, विश्व शान्ति, व्यापक उदार—उदात्त दृष्टिकोण से ही संभव है। हम सभी सीमाओं से सीमातीत होकर ही व्यापक—उदात्त दृष्टि प्राप्त कर सकते हैं।

पृथ्वी, आकाश, प्रकृति, हवा आदि में कोई सीमायें नहीं हैं। ये सीमायें बनाना, भेद रेखायें खीचना हमारे ही दिल—दिमाग की उपज है। वर्तमान की विषम

सामाजिकों को मिटाने के लिए हम भेद में अभेद देखना प्रारम्भ करें तो अनेक अनेक समस्याएं तिरोहित हो जायेगी। वैशिवक एकता व शान्ति की मशाल को संपूर्ण विश्व में प्रकाशित करने के लिए पूरा आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव ने अपने जीवन में ऐसी प्रकाशित दीप जलाये हैं जिन दीपों से निश्चित ही विश्व एकता व शान्ति की मशाल संपूर्ण भूमण्डल को प्रकाशित करेगी। उन उज्ज्वलित दीपों का प्रकाश संक्षिप्त ही जिज्ञोका प्रकार है—

सान्म्र सत्यान्वेषी—सत्य ही शिव है और शिव ही सत्य है। जो सत्य शिव लक्षण है या जो शिव सत्य रूप है वही विश्व के लिए सुन्दर होता है। यही कारण है कि जो व्यक्ति सत्य की शोध यात्रा पूरी कर लेता है संसार में उसकी विजय के बिंगल जहाँ हैं फिर उस सत्यान्वेषी को व्यक्ति की संज्ञा से अभिहित नहीं किया जाता है। अपितु उसका व्यक्तित्व व्यक्ति की सीमा से ऊपर उठकर महात्मा, परमात्मा, विष्वात्मा बन जाता है। वंदनीय पूज्य आ. श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव सन्म्र सत्य दृष्टि का जीवन्त रूप हैं। इसलिए उनकी सत्य शोध यात्रा का सर्वोत्कृष्ट प्रतिफल यह है कि यो फीसदी उपलब्धियाँ उनकी आरती उत्तारती हैं। उन्होंने अपने जीवन में जो यो आदर्श लक्ष्य निर्धारित किये वे सभी लक्ष्य सत्य के बल पर पूर्ण हुए हैं। इसलिए आप बड़े ही आत्मविश्वास के साथ कहते हैं कि सत्य ही मेरा परमेश्वर है, सत्य ही मेरा परम साध्य—साधन—लक्ष्य है। इस सत्यरूपी परम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए योगी समता, शांति, ध्यान, अध्ययन, संयम, तप, त्याग आदि की साधना करता हूँ। सत्य के बिना ये सभी होते हुए भी सार्थक फल प्रदायक नहीं होते हैं। अगर इन सभी को साथ सत्य जुड़ा हुआ नहीं है तो संयम, तप, त्याग, ध्यान, अध्ययन से भी आत्म प्राप्तिनाम ही हाथ लगती है। हमारा यह जीवन संशय व मिथ्या कल्पनाओं के आकाश में नहीं अपितु सत्य के धरातल पर टिका होना चाहिए। वस्तुतः सत्य के विराट स्वरूप का अनुभवन, अनुकरण करना इसकी चमचमाती रोशनी में अपने आपको संतुलित बनाये रखना यह किसी विराट व्यक्तित्व व स्वस्थ सुदृढ़ चेतना का ही कार्य होता है। सत्य को आत्मसात करना, उसे अनेकान्तात्मक दृष्टि से अभिव्यक्त करना किसी आधारण व्यक्ति के वश की बात नहीं। यह तो असाधारण व्यक्तित्व का धनी अनेकान्त की दृष्टि रखने वाला ही कर सकता है। सत्य को अनेकान्तात्मक दृष्टिकोण से जगाने—समझाने में पूज्य गुरुदेव का कौशल विलक्षण है जो अन्यत्र देखने में दुर्लभ है। आपका सत्यशोधक भाव—व्यवहार विशाल, निष्पक्ष व उदार है। आप सत्य को सन्म्र सत्यपाठी जिज्ञासु बनकर स्वीकारते हैं। एक सत्यान्वेषी का यही लक्षण होता है कि उस में सत्य को ग्रहण करने व असत्य को छोड़ने का साहस, दृढ़ आत्मबल होता है। सत्य तो सत्य होता है। उसमें मत—पंथ—परम्परा, रीति—रिवाज, प्रतिस्पर्धा, राग—द्वेष, इत्यादि की भेद रेखायें जोड़ना अज्ञान व मोह है। सच्चा जिज्ञासु सम्यक् साधक वाला को तत्काल स्वीकार कर लेता है। परम्परा में मतभेद—मनभेद करने कराने वाला सत्त्वीण स्वार्थान्ध, रुद्धिवादी, ऐकान्तिक मान्यता वाला व्यक्ति यथार्थ सत्य स्वरूप को नहीं समझ सकता है। वह अपनी समय—शक्ति सत्य को प्राप्त करने में नहीं प्रत्युत

जाति, मत, पंथ, परम्पराओं को सुरक्षित रखने में लगाता है। एतदर्थं वह अपनी मान्य परम्पराओं के मण्डन में ही लगा रहता है। एकांकी खण्डन—मण्डन दोनों ही सत्य से दूर रहने वाले बौद्धिक द्वन्द्व हैं जबकि सत्य को पाने के लिए खण्डन—मण्डन की कोई आवश्यकता नहीं है। पूज्य गुरुदेव का मानना है कि सत्य को प्राप्त करने का पथ खड़ान—मण्डन से अति परे है एवं सत्य समता परक अनुभवात्मक है। आज हम दूसरों का खड़ान एवं अपने द्वारा बनाई गई मान्य परम्पराओं का मण्डन करने में लगे हुए हैं। इस लिए दुरिस्थिति यह बन गई है कि आपसी लड़ाई—झगड़े—फूट—कलह—तनाव, ईर्ष्या—द्वेष, मनभेद, मतभेद, अस्वरूप प्रतिस्पर्धा के कारण शक्ति हीन होकर परतन्त्र एवं गुलाम बने हुए हैं। पूज्य गुरुदेव सनम्र सत्यग्राहिता के बल पर वैशिक एकता व शान्ति का दीप प्रज्ज्वलित करने के लिए पुरुषार्थरत हैं। इस सतपुरुषार्थ के सत् प्रतिफल फलितार्थ हो रहे हैं। जैसे कि वर्ष 2007 में पूरे वर्ष वैशिक एकता व शान्ति के अनेक कार्यक्रम हो रहे हैं। गुरुदेव की सनम्र सत्यग्राहिता व उदार—उदात्तभाव व्यवहार से प्रभावित होकर अनेक जैन, श्वेताम्बर, हिन्दू, व्यक्ति व अनेक संस्थायें मिलकर वैशिक एकता, शान्ति के लिए सहयोग—सहकार समन्वय करके कार्यरत हैं।

2. समता के साधक—पूज्य आचार्य भगवन् अपने जीवन की सफलता और ऊँचाइयों का सारा श्रेय अपनी स्वस्थ समता को देते हुए कहते हैं कि जीवन में समता की साधना ही साधुत्व की पहचान होती है। महासाधक को कैसा जीवन जीना चाहिए, किस प्रकार अनुकूल—प्रतिकूल परिस्थितियों में सम्भाव रखना चाहिए। इस जीवन सूत्र को जो साधक अपने जीवन में ठीक तरह से क्रियान्वित करना जानता है वही समदर्शी महासाधक होता है। जीवन में हर मोड पर द्वन्द्व आते हैं। जब थोड़ा सा मान—सम्मान, सत्कार—पुरस्कार, यश—प्रसिद्धि मिल जाती है तब अहंभाव जागृत हो जाता है। जब अपमान—तिरस्कार मिल जाता है तब दीनता—हीनता, कायरता, संक्लेश, विद्वेष, विघ्नंश के महासागर में डूब जाता है। वस्तुतः इन द्वन्द्वात्मक स्थितियों में साधारण इंसान उलझ जाता है लेकिन महासाधक, धर्मनेता, आध्यत्मवेत्ता इन द्वन्द्वों में सम्भाव रखता है। समता का साधक सर्वथा निर्विकार और शुद्ध बनने की साधना करता है। वह हर अनुकूल—प्रतिकूल परिस्थितियों से समझौता करके अपने महानतन लक्ष्य को प्राप्त करने का पुरुषार्थ करता है। पूज्य आचार्य भगवन् की साधना सम्भाव स्वरूप तो ही ही लेकिन शिष्य समुदाय के लिए भी आपकी सदैव यही शिक्षा व प्रेरणा होती है कि सम्मान—अपमान में, इष्टानिष्ट में, प्रतिकूल—अनुकूल सभी स्थितियों में, दीन—हीन—अहंकारी न बनकर उन स्थितियों का यथार्थ सदुपयोग करना चाहिए न कि दुरुपयोग। यदि अनुकूल वस्तुओं की प्राप्ति हुई है तो उन्हें पाकर गर्व नहीं करना चाहिए अपितु उनका उपयोग दूसरों की सेवा परोपकार, स्व—पर हितार्थ करना चाहिए तथा प्रतिकूल संयोगों में हीन—दीन—कायर—दब्बू न होकर पुरुषार्थ करते रहना चाहिए और समता, धैर्य, शान्ति रखकर उन्नति की डगर पर बढ़ते रहना चाहिए। यह संसार तो विषमताओं में आकंठ डब्बा हुआ है लेकिन समता की साधना इन्हीं विषम परिस्थितियों के बीच की जाती है। पूज्य गुरुदेव की यह उद्घोषणा, कार्यप्रणाली, प्रयत्न—पुरुषार्थ

परिस्थितियों को पलटने का नहीं अपितु स्वयं की मनःस्थिति व भावस्थिति को पलटने का है। इसलिए आप हर परिस्थिति की उपस्थिति को समता, शान्ति, धैर्य, उत्साह से छोड़करते हैं। संपत्ति—विपत्ति, इष्ट—अनिष्ट, सत्कार—तिरस्कार, सम्मान—अपमान, ऊँचाई—इन्कार, हानि—लाभ जैसी सुखद—दुःखद स्थितियों में समत्वदर्शी बनकर नूणों से शिक्षा ग्रहण कर व दुर्गुणों को त्याग कर समुन्नत आदर्श जीवन शैली का व्यवहार हर प्राणी करने लगे तो फिर परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व में अन्याय, अशान्ति, विप्र, दूट—फूट, निन्दा—ईर्ष्या, दोषारोपण इत्यादि असंगठनकारी, विखण्डनकारी गुणीतियों की जड़ें क्या फैलकर मजबूत बन सकती हैं? अर्थात् सर्वथा नहीं।

3. मैत्रीमय करुणा के जनक—मैत्री करुणा एक ऐसा जादुई चमत्कार है जो हर संसार को एक सूत्र में बाँधता है। मैत्री ही वह आधार है जो एक और एक को आपस में जोड़ता है। मैत्री, प्रसन्नता, करुणा, कृज्ञयता चार बिन्दु स्वयं के भावों को विशुद्ध एवं वैशिक एकता व शान्ति को स्थापित कर सकते हैं। पूरा विश्व ही मेरा परिवार है, इसका प्रत्यक्ष दर्शन भाव व्यवहार में आचार्य श्री करते हैं। आपके व्यक्तित्व में अपना—पराया तेरा—मेरा का स्थान नहीं है। आपकी मान्यता है कि अतीत में विश्व के सभी प्राणी अनेक बार मेरे पिता, भ्राता, चाचा, माता, बहिन, पुत्र—पुत्री—पुत्रवधु बन चुके हैं इसलिए यह सम्पूर्ण जगत् मेरा परिवार रह चुका है। अभी वर्तमान में भी सम्पूर्ण जगत् के समस्त प्राणी मेरे परिवार के हैं क्योंकि “उदार पुरुषाणाम् वसुधैव स्वकुटुम्बकम्”। मैत्री का यह विशारद दर्शन जब व्यक्ति के जीवन में घटित हो जाये तो वह फिर किसके साथ अन्याय, अत्याचार, वैर—विरोध, शत्रुता, लड़ाई—झगड़ा करेगा? मैत्री का यह विशारद दर्शन केवल व्यवहारिक जगत् पर आधरित नहीं है बल्कि आध्यात्मिक जगत् से भी इसके सम्बन्ध हैं। वैसे नीति शास्त्र तो यह कहता है कि दुश्मन से ही नहीं मित्र से भी हमेशा सावधान रहो न मालुम कौनसा मित्र हमारा दुश्मन हो जाये लेकिन पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि मित्र से तो मैत्री ही लेकिन दुश्मन के साथ भी हमारी मैत्री होनी चाहिए।

“मित्री मे सब भूदेसु वैरं मज्जां ण केण वि” इस महानतम् अन्तर दशा अन्तर भाव का प्रत्यक्ष दर्शन मैंने गुरुदेव की जीवन शैली में किया है। आपकी सदैव ही हम सभी शिष्य समुदाय के लिए यही शिक्षा होती है कि अपने साथ बुरा व्यवहार करने वालों के प्रति भी बुरा मत सोचो, बुरा मत करो। अगर हम भी शत्रु के साथ शत्रुवत् क्षुद्रव्यवहार करके अपने मन को अपवित्र, कलुषित करते हैं तो फिर हमें व उसमें क्या अन्तर रहा। अपने भाव—व्यवहार को दूषित बनाकर हमने पापाश्रव करके क्षुद्र व्यवहार का परिचय दिया। इसलिए शत्रु के साथ भी माध्यस्थ व करुणा भाव रखो। आज के वैज्ञानिकों ने भी यह सिद्ध कर दिया है कि सकारात्मक प्रशस्त भावों से हमारी ग्रंथियों से अमृत स्राव निकलते हैं। जिससे अनेक प्रकार के धातक रोग जैसे हृदयरोग, कैन्सर, ब्लड प्रेशर, एलर्जी, अस्थमा, हाइपर टेंशन, हाइपर ऐसिडीटि एवं नशे की आदतों से छुटकारा मिल जाता है। हमारे शुभ मंगलकारी विचारों से शुभ आभामण्डल बनता है। उस आभामण्डल के प्रभाव से शत्रु भी शत्रुता का भाव विसर्जित कर देता है। इस सत्य सिद्धान्त का प्रायोगीकरण पूज्य गुरुदेव अपने जीवन में करते हैं तथा सभी को ऐसा करने की सुशिक्षा देते हैं।

प्रखर साहित्यकार- प्राणवान् साहित्य पाठक के मन को बाँध देता है एवं चिंतन में नई चेतना व समस्याओं को समाहित करता है तथा आदर्श / समुन्नत जीवन जीने की प्रेरणा देता है। पूज्य आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव का साहित्य इन्हीं गुणों का संवाहक है। आपकी परिपक्व, प्रौढ़ लेखनी अनुभूत सत्यों को उजागर करने वाली है। उसमें समुन्नत चिंतन, प्रखर वर्कर्ट्ट्व, मेधावी प्रज्ञाशीलता, सत्यान्वेषी दार्शनिकता, जिज्ञासु कार्य प्रणाली, तार्किकता से युक्त गणितीय प्रणाली, अनुभव अनुस्थूत शक्ति, ज्योतिष, प्राजंल भाषा शैली का अद्भूत—अनूठा संगम है। आपके साहित्य में जीवन की मौलिकतायें हैं तथा समस्याओं का समाधान है। पाठक को ऐसा लगता है कि मानो आप उसके चेतन, अवचेतन मन की बात कर रहे हैं। आपका साहित्य शीर्षस्थ स्थानीय बहुमूल्य साहित्य है। 171 ग्रन्थों की 6 भाषाओं में रचना करके माँ सरस्वती के विराट भण्डार को भरने वाले आप दूसरे वीरसेन स्वामी हैं। सामान्य जन से लेकर देश के सुप्रसिद्ध साहित्यकार, पत्रकार, शिक्षाविद्, वैज्ञानिक, प्रोफेसर, दार्शनिक, आचार्य, साधु—संत, समाज सुधारक, अनुसंधानकर्ता विद्यार्थी आदि आपके साहित्य से अभिभूत / गौरवाच्चित हैं। आपके शोधपूर्ण लेख व साहित्य को पढ़कर दूर—दूर से प्रौढ़ जिज्ञासु, वैज्ञानिक, प्रोफेसर, न्यायविद्, शिक्षाविद्, आपके पास आते हैं एवं चर्चा, वार्ता, अध्ययन, समाधान प्राप्त करते हैं। आपके साहित्य में वह चुम्बकीय बल है जो पाठक को आपके पास खीचकर ले आता है। आपकी सृजनचेतना से प्रभावित होकर कई यूनीवर्सिटी के प्रोफेसर, डीन यह कहते हैं कि गुरुदेव आपका साहित्य विश्वस्तरीय है तथा महाविद्यालय के पाठ्यक्रम से काफी श्रेष्ठतम है। इसमें ऐसे दुरुह, अनुसंधानात्मक, गूढ़ रहस्य हैं जिनका हमें भी परिज्ञान नहीं है। हम किस प्रकार विद्यार्थियों को अनुसंधान कराने के लिए मार्ग दर्शन प्रदान करें? सचमुच आपके ग्रन्थों में अनमोल रत्न छिपे हुए हैं। आपके ज्ञानरूपी दीपक ने अनेक—अनेक दीपों को जलाकर ज्ञान का दिव्य—भव्य, जगमगाता प्रकाश प्रकाशित किया है। वर्तमान की, आने वाली भावी अनेक पीढ़ियाँ व शताब्दियाँ आपके ज्ञानरूपी आलोक में अपना पथ प्रशस्त करती रहेगी।

श्रमण संघ व श्रावक संघ के बहुमुखी विकास में आपके साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आपने अपनी स्वप्रज्ञा, अनुभव विवेक से न केवल जैन समाज को विकास के नव आयाम दिये हैं बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति के लिए आपने महत्वपूर्ण महानतम अवदान दिये हैं। आज पूरा विश्व अशांति, दुःख, तनाव से परेशान है। कुंठा, निराशा, दीनता, अहंकार ममकार, से संत्रस्त है। हिंसा, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, अत्याचार बेरोजगारी से ग्रसित है। ऐसी विषम भीषण, जटिल परिस्थितियों से उबरने के लिए आपे अपने जीवन के माध्यम से, साहित्य के माध्यम से, अन्यान्य अनेक कार्यों के माध्यम से पुरुषार्थ—प्रयत्नरत हैं। आपका साहित्य सुसंस्कार सुशिक्षा व चेतना के उद्धरणोहण की पद्धति है। आप पहले अनेक ग्रन्थों का गहन अध्ययन—अनुसंधान किया और किर अपने तन—मन—अनुभव को प्रयोगशाला बनाकर बिलुप्त जैनागम परम्पराओं को न केवल पुनरुज्जीवित किया है अपितु पूर्ण वैज्ञानिक, गणितीय दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, आध्यात्मिक, शैक्षिक विद्याओं से समन्वय करके

जूनी साराहनीय परोपकारी विलक्षण कार्य किया है। इसलिए आपको शीर्षस्थ आचार्यों ने तथा गुरु, पू. ग. श्री कुम्हुसागर जी गुरुदेव ने तथा जैन श्रावक समाज ने आपको शिरोनाम चक्रवर्ती, ज्ञान—विज्ञान दिवाकर, विश्वधर्म प्रभाकर, अभिष्ठानाप्रयोगी, ज्ञानायरल, आचार्यरत्न, आदि—आदि महानतम उच्चतम् उपाधियों से अलंकृत किया है। आपके मौलिक—अन्वेषणात्मक अनुभवात्मक चिंतन ने आगमिक गहन गत्तीर्ण—तलस्पर्शी, वैज्ञानिक, गणितीय, दार्शनिक, नैतिक अध्ययन ने, साधना से प्राप्त गत्तीर्णिक अनुभवों ने, सत्य, समता, त्याग, तपस्य जीवन शैली ने वैशिक एकता व जैनता के लिए नये सुदृढ़ रास्ते खोले हैं। बनी बनाई परम्पराओं का अंधानुकरण न करके आपने जो नवीन उपयोगिता की दृष्टि सभी में जागृत की है यह आपके अनाग्रही जैन, सत्यान्वेषी प्रज्ञा, स्वरथ समतामय जीवनशैली का ही प्रतीक है। आपने व्यक्ति, भवित्व, समाज, राष्ट्र, विश्व में बढ़ रही बुराईयों का प्रवेश रोकने के लिए नये—2 अनुभावात्मक आयाम प्रदान किये हैं। आपकी आध्यात्मिक चेतना ने धर्म से जुड़ी रुढ़ि गत्तीर्णाओं, मान्यताओं से जनमानस को मुक्ति दिलाई है। यही कारण है कि आज सभी जाति, पंथ, मत, भाषा, संम्प्रदाय की रुदिवादी—हठाग्रही, एकान्तिक, मिथ्या पकड़ को छोड़कर सर्वधर्म समन्वय व विश्व एकता की दिशा में अग्रसर हो रहे हैं। आपकी अनगृहीत पद्धति ने धर्म का जीवंत रूप विश्व के सामने प्रकट किया है। सचमुच पूज्य गुरुदेव कनकनन्दी जी गुरुदेव तनावों की भीड़ में शान्ति का संदेश देते हैं, चंचल चिंता के लिए एकाग्रता की प्रेरणा है, विचारों के द्वन्द्व में सापेक्ष दृष्टिकोण हैं, प्रतिकूलताओं में संतुलन का दर्पण है, जीवन से हारे मनुष्य के लिए जीत का विश्वास है। सत्य शिव और सुन्दर की त्रिवेणी का नाम है आ. कनकनन्दी गुरुदेव। आपका साध्य सत्य है, आपकी साधना समता है, आपका लक्ष्य सुख—शान्ति—शिव स्वरूप है।

सत्य, समता, शान्ति रूपी रत्नत्रयों ने आपके मोक्षमार्ग का पथ सुनिश्चित कर दिया है। हम सभी के लिए यह स्वर्णिम सुअवसर है कि हम इनकी पावन सन्निधी में स्वयं की पहिचान करके अपने दोष—दुर्गणों को दूर करके मोक्षपथ सुनिश्चित करें। आपके जीवन का हर क्षण हम सभी के लिए उपयोगी बन जाये और हम सभी दुःखी, संवरत प्राणी अनंत सुख, ज्ञान, वीर्यादि के मालिक बन जायें ऐसी मेरी आपके श्री चरण सामन्ती में बैठकर शुभ प्रार्थना है सनम्र अभिवदना है, मंगल—भावना है।

- कठिन चवन मत बोल, पर निंदा अरु झूठ तज।
- सांच जवाहर खोल, सतवादी जग में सुखी ॥
- उत्तम सत्य वरत पालीजै, पर विश्वासधात नहीं कीजे।
- साँचे झूठे मानुष देखो, आपन पूत स्वपास न पेखो ॥
- पेखो तिहाय पुरुष साँचे को दरब सब दीजिये।
- मुनिराज श्रावक की प्रतिष्ठा सांच गुण लख लीजिये।
- ऊँचे सिंहासन बैठि बसु नृप, धरम का भूपति भया।
- वच झूठ सेती नरक पहुँचा, सुरग में नारद गया।
- ओम हीं सत्यधर्मागाय पूर्णार्थी निर्वपामीति स्वाहा।

सत्य धर्म की पूजा

असत्य—दूरगं सत्य वाचा सर्व—हितावहम् ।

पूजया परया भक्तया पूजयामि तदाप्तये ॥ 11

ओम ह्रीं सत्यधर्मागाय नमः जलाद्यर्थं निर्वपामीति स्वाहा ।

असत्य से रहित और सबका हित करने वाले सत्य वचन की मैं उसकी प्राप्ति के लिए भक्ति पूर्वक बड़ी विभूति के साथ पूजा करता हूँ ।

दय—धम्महु कारणु दोस—णिवरणु इह—भवि पर—भवि सुक्खयरु ।

सच्चु जि वयणुल्लउ भुवणि अतुल्लउ बोलिज्जइ वीसासधरु ॥

सत्य धर्म दया धर्म का कारण है, दोषों का निवारण करने वाला है तथा इस लोक में और परलोक में सुख को देने वाला है । विश्व में सत्य वचन तुलना रहित है, अर्थात् इसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता । इसे विश्वास के साथ बोलना चाहिए ।

सच्चु जि सव्वहं धम्महं पहाणु, सच्चु जि महियलि गरुउ विहाणु ।

सच्चु जि संसार समुद्र—सेउ, सच्चु जि सव्वहं मण—सुक्ख—हेउ ॥ 13

सत्य सब धर्मों में प्रधान है, सत्य महीतल पर सबसे बड़ा विधान है, सत्य नियम से संसार—समुद्र से तारने के लिए पुल के समान है और सत्य सब जीवों के मन में संसार सुख उत्पन्न करने का सेतु है ।

सच्चेण जि सोहइ मणुव—जम्मु, सच्चेण पवत्तउ पुण्ण—कम्मु ।

सच्चेण सयल गुण—गण महति, सच्चेण तियस सेवा वहंति ॥ 14

सत्य से मनुष्य जन्म शोभा पाता है, सत्य से ही पुण्यकर्म प्रवृत्त होता है, सत्य से सब गुणों का समुदाय महानता को प्राप्त होता है और सत्य के कारण ही देव सेवा व्रत स्वीकार करते हैं ।

सच्चेण अणुव्य—महवपाइं, सच्चेण विणासइ आवपाइं ।

हिय—मिय भासिंज्जइ णिच्च भास, ण वि भासिंज्जइ पर—दुहप्यास ॥ 15

सत्य से अणुव्रत और महाव्रत प्राप्त होते हैं और सत्य से आपदाएँ नष्ट हो जाती हैं । सदा हित और मित वचन बोलना चाहिए । जिनसे दूसरों को दुःख हो ऐसे वचन कभी नहीं बोलें ।

पर—बहा—यरु भासहु म भवु, सच्चु जि तं छंडहु विग्य—गव्यु ।

सच्चु जि परमप्पउ अथिं इकु, सो भावहु भव—तम दलण—अक्कु ॥ 16

हे भव्य! दूसरों को बाधा करने वाला वचन कभी मल बोलो । यदि सत्य भी हो तो गर्व रहित होकर उसे त्याग दो । सत्य ही एक मात्र परमात्मा है । वह भवरूपी अन्धकार का दलन करने के लिए सूर्य के समान है । उसका निरन्तर आराधन करो ।

संधिज्जइ मुणिणा वयण—गुति, जं खणि फिट्टइ संसार अति ॥ 17

मुनि वचन गुप्ति का निरोध करते हैं । वह क्षणमात्र में संसारकी पीड़ा का अन्त कर देती है ।

सच्चु जि धम्म—फलेण केवलणाणु लहेइ जणु ।

तं पालहु भो भव्य भणहुम अलियउ इह वयणु ॥ 18

ओम ह्रीं सत्यधर्मागाय पूर्णार्थं निर्वपामीति स्वाहा ।

मनुष्य सत्य धर्म के फलस्वरूप केवलज्ञान को नियम से प्राप्त करता है । हे भव्य! उसका पालन करो और लोक में अलीक वचन मत बोलो ।

आशीर्वाद

अभी आपके हाथ में आचार्य कनकनन्दी महाराज की 'सत्य परमेश्वर' नामक पुस्तक आ रही है । इसमें कनकनन्दी जी ने सत्य के बारे में अच्छा खुलासा किया है । केवल वाचनिक सत्य ही पर्याप्त नहीं है । उसके साथ—साथ मानसिक एवं कृतित्व सत्य भी चाहिए । आज हर क्षेत्र में असत्य का ही बोल—बाला है । गले ही न्यायालय, विद्यालय या गृहालय हो । इस पुस्तक को पढ़कर सत्य को जाने, माने, पहिचाने एवं अन्य को त्याग करें ।

अभी तक महाराज की विभिन्न भाषाओं में 55—60 पुस्तकों अनेक संस्करण में छप चुकी हैं । पुस्तकों पढ़कर जैन—जैनेत्तर बुद्धिजीवी वर्ग इतना प्रभावित हो रहे हैं, जिसके कारण महाराज के बिना बोले ही वे स्वेच्छा से ही स्व रूपया खर्च करके छपा रहे हैं । इस क्षेत्र में बच्चों का योगदान महत्वपूर्ण है । बच्चे महाराज के लेखन कार्य में तो सहायता करते ही हैं तथा स्वहाथ खर्च के रूपया से महाराज की पुस्तक भी छपवाते हैं । अभी तक 4 पुस्तकों बच्चों ने छपवायी हैं । लेखक, सहायक धर्म दर्शन विज्ञान शोध प्रकाशन के कार्यकर्ताओं को भी मेरा बहुत—बहुत आशीर्वाद है ।

गणधराचार्य कुन्थुसागर
प्रथम संस्करण से 1991

भिद्यत हृदयग्रन्थिश्छद्यन्ते सर्वसंशया: ।

क्षीयन्त चास्य कर्मणि तस्मिन्दृटे परावरे ॥ 18 मुण्डकोपनिषद्

उस परम सत्य को / परमात्मा को यथार्थरूप से जान लेने पर जीव के हृदयस्थ समस्त बन्ध, गांठ, संक्लेश, द्वन्द्व नष्ट हो जाते हैं, सम्पूर्ण संशय भ्रम कट जाते हैं, समस्त कर्म नष्ट हो जाते हैं ।

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्योष आत्मा, सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्यण नित्यम् ।

अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो, यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥ 15

जीव के अन्तःकरण / अन्तःचेतना में ही 'सच्चिदानन्द स्वरूप' 'सत्यम् शिवम् मंगलं' भूत ज्ञान—ज्योतिर्मय परम विशुद्ध परमात्मा विराजमान है । उसकी प्राप्ति समस्त एवं आध्यात्मिक दोष स्वरूप काम, कोध, मद, ईर्ष्या, लोभ, घृणा, अधंविश्वास, संकीर्णता आदि से रहित प्रयत्न शील साधकों को होती है ।

मंगल—आशीर्वाद

सत् का विनाश नहीं होता एवं असत् का प्रादुर्भाव नहीं होता है परन्तु सत्य में परिवर्तन होता रहता है। जो भाव स्वरूप है— वह सत् है / अस्तित्ववान् है / उपलब्धवान् है अविनाशी है जो अभाव स्वरूप है वह असत्य है, अनुपलब्धवान् है / असत्तावान् है। इसी दृष्टि से प्रत्येक चेतन—अचेतन द्रव्य सत् स्वरूप है। अतः विश्व के 1. जीव 2. पुद्गल (भौतिक द्रव्य), 3. धर्म (गति माध्यम), 4. अधर्म (स्थिति माध्यम), 5. आकाश, 6. काल सत् स्वरूप हैं। छहों द्रव्य सत् स्वरूप होते हुए भी जीव एवं पुद्गल परसंयोगावस्था में वैभाविक भाव रूप में परिणमन कारण के कारण पूर्ण शुद्ध सत् स्वरूप में नहीं रहते हैं। अतः अशुद्धावस्था / वैभाविक भाव / संयोगावस्था में असत्य का आरोप होता है। कर्मसंयोगज वैभाविक भाव युक्त जीव मोह, अज्ञान / अविद्या के कारण सत् में असत्, असत् में सत् या अपूर्ण सत्य में पूर्ण सत्य का आरोप करता है। जैसे शुद्ध दूध में पानी को मिलाने पर दूध तथा शुद्ध पानी दोनों अशुद्ध हो जाते हैं। वह मिश्रित दूध हो जाते हैं। वह मिश्रित दूध तथा पानी न तो पूर्ण रूप से सत् दूध है, न पूर्ण रूप से पानी, अथवा न पूर्ण रूप से असत् दूध है और न पूर्ण रूप से असत् पानी। उस मिश्रावस्था को शुद्ध दूध मानना असत्य है तथा पानी मानना भी असत्य है। उस मिश्रावस्था में सर्वथा दूध नहीं है— यह मानना भी असत्य है परन्तु उस अवस्था को दूध एवं पानी की मिश्रावस्था मानना सत्य है। इससे सिद्ध होता है कि जो द्रव्य, गुण पर्याय, कार्य, अवस्था आदि जैसे हैं, उसको वैसा ही जानना—मानना सत्य है तथा अन्यथा जानना असत्य है। इससे सिद्ध होता है कि अशुद्ध अवस्था पूर्ण सत्य अवस्था नहीं है तथा सत्य के अनुसार यदि जानना, मानना, आचरण करना नहीं है, तो भी असत्य है। अतः केवल वाचनिक सत्य या असत्य यथार्थ से सत्य या असत्य नहीं है, भले इस वचन में कुछ सत्य या असत्य हो। वाचनिक सत्य को आंशिक सत्य कह सकते हैं।

सत् स्वरूप द्रव्य होने के कारण एवं द्रव्य में अनन्त गुण—पर्याय होने के कारण, द्रव्य का पूर्ण ज्ञान केवल ज्ञानी को हो जाता है तो भी वे केवल वचन के माध्यम से उन अनन्त गुण—पर्यायों को अभिव्यक्त नहीं कर सकते हैं, क्योंकि जिन वचन के माध्यम से सत् का प्रतिपादन करते हैं उस वचन में ही अभिव्यक्त करने की सीमित शक्ति होती है। इसलिए केवल ज्ञानी भी सत्य का प्रतिपादन अनेकान्त, स्याद्वाद / सापेक्ष / नयवाद से करते हैं।

जब तक जीव अशुद्धावस्था / मिश्रावस्था / वैभाविकावस्था / पर संयोगावस्था को सम्यक् पुरुषार्थ से त्याग नहीं करता है, तब तक संपूर्ण सत्यावस्था / सत्यस्वरूप / शुद्ध स्वरूप को उपलब्ध नहीं कर पाता है। जब सम्यक् पुरुषार्थ से स्वशुद्ध पूर्ण सत्य स्वरूप को प्राप्त कर लेता है, तब वह विश्व के सम्पूर्ण सत्य को जान लेता है। अतः स्व को जानना, मानना, पाना ही सत्य को जानना, मानना, पाना है। अतः सत्य को जानना, मानना, पाना ही स्व को जानना, मानना, पाना है। शुद्ध स्व स्वरूप ही भगवत् स्वरूप है। अतः स्वयं को जानना, मानना, पाना ही भगवान् को जानना, मानना, पाना

है। अतएव स्वयं या सत्य की उपलब्धि ही विश्व की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है। इसलिए जिसने सब कुछ खोकर भी सत्य को पा लिया उसने सब कुछ पा लिया एवं जिसने सब कुछ पाकर भी सत्य को खो दिया, उसने सब कुछ खो दिया।

जब तक जीव के भाव में सत्य के प्रति श्रद्धा / आस्था / विश्वास / सर्वप्रण मात्र के साथ—साथ सत्य का परिज्ञान एवं सत्यानुकूल आचरण नहीं होगा, तब तक जीव सत्य के स्वरूप को एवं सुख—शान्ति को प्राप्त नहीं कर सकता है। वर्तमान युग में विश्व में जो अशान्ति फैली हुई है, उसका मुख्य कारक सत्य के प्रति विकर्षण एवं असत्य के प्रति आकर्षण है। पूर्ण सत्य के बारे में जो ऊपर में ही वर्णन हो चुका है, उसका ज्ञान या आचरण प्रायः साधारण व्यक्ति में नहीं है, परन्तु साधारण व्यक्ति में वाचनिक सत्य भी देखने में नहीं आता है। वर्तमान युग में न्यायालयों में निहित स्वार्थों पर प्रेरित होकर कागजी न्याय की आड़ में केवल असत्य का ही बोलबाला है। इसलिए आज न्यायालय अन्यायालय एवं न्यायाधीश अन्यायाधीश बन रहे हैं। इतना ही नहीं अन्यथा का एवं असत्य का बोलबाला शैक्षणिक संस्थाओं में, व्यापारिक क्षेत्र में, पारिवारिक जीवन में, व्यक्तिगत जीवन में, राजनीति में, धार्मिक क्षेत्र में, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं धार्मिक संस्थाओं में भी पाया जाता है। इसके कारण ही आज यत्र—तत्र अशान्ति, कलह, तनाव, आतंकवाद, उग्रवाद, गृहयुद्ध, विश्वयुद्ध व्याप्त हैं। अशान्ति आदि को मिटाकर विश्व में शान्ति की स्थापना किसी भी भौतिक साधन से, राजनैतिक कारण से, वैज्ञानिक उपकरणों से नहीं हो सकती है। शान्ति की स्थापना केवल सत्य के माध्यम से ही हो सकती है। अतः शान्ति इच्छुक प्राणी सत्य शोध—बोध के साथ—साथ सत्य का अनुकरण करें, जिससे शाश्वतिक शान्ति मिल सके।

उपर्युक्त महान् उद्देश्य को लेकर हमने रोहतक चातुर्मास के दौसान दशलक्षण पर्व में उत्तम सत्य के बारे में जो उपदेश दिया था, उसके संकलन के साथ—साथ जैन, बौद्ध, हिन्दू धर्म में वर्णित सत्य का भी संकलन किया गया है।

०१—०२ सत्य—जिज्ञासु इस 'सत्य परेश्वर' पुस्तक का अध्ययन, मनन करके सत्य को स्वीकार करें एवं सत्य की उपलब्धि के लिए आगे बढ़ें। सत्य की छत्र छाया में अखिल जीव जगत् सुखी रहे इस महती शुभ कामना के साथ।

०३—०४ विनाश, तनाव, आतंक, उद्देश, तन, प्रमाण, आचार्य कनकनन्दी
०५—०६ विनाश, कर्माण्डल, कर्माण्डलजिज्ञासु प्रथम संस्करण से १९९१
०७—०८ विनाश, तनाव, आतंक, उद्देश, तन, प्रमाण, आचार्य कनकनन्दी
०९—१० विनाश, तनाव, आतंक, उद्देश, तन, प्रमाण, आचार्य कनकनन्दी

अविद्याभिदुरं ज्योतिः परं ज्ञानमयं महत्।

तत्प्रष्टयंतदेष्ट्व्यं तददृष्ट्व्यं मुकुष्मिः। | १४९ इष्टोपदेश

हे मोक्ष को चाहने वाले! अविद्यारूपी अन्धकार को दूर करने वाली स्वरूप ज्याति जो महान् है उसके बारे में जिज्ञासा करो, उसकी कामना करो, उसका दर्शन करो।

अध्याय—१

सत्य का आध्यात्मिक—द्रव्यगत—वैज्ञानिक व्यावहारिक स्वरूप

विषय—सूची	पृष्ठ संख्या
अध्याय	
1. सत्य का आध्यात्मिक—द्रव्यगत—वैज्ञानिक व्यावहारिक स्वरूप	17—24
2. उत्तम सत्य धर्म	25—42
विविध दार्शनिकों की दृष्टि में सत्य, महात्मागांधी की दृष्टि में सत्य, महात्मागांधी की दृष्टि में सत्याग्रह	
3. परमात्मा परमेश्वर (शुद्ध जीव) परमात्म बनने का उपाय	43—54
4. सत्य के सार्वभौम स्वरूप	55—65
असत्य का लक्षण, सत्यागुवत के अतिचार, सत्यव्रत की भावनाएँ, सत्य का सैद्धान्तिक स्वरूप, सत्ता प्रतिपक्ष सहित	
5. नास्ति भी है सत्य एवं सुख प्राप्ति के उपाय	66—71
सापेक्ष नास्ति (वर्तु स्वरूपात्मक सैद्धान्ति), 'नास्ति' नकारात्मक विचार, 'नास्ति' नास्तिक धर्म, 'नास्ति' अयोग्य भोजन—पानी, 'नास्ति' कुसंगति, 'नास्तिक' अयोग्य वचन स्वीकार तथा वचन बद्धता,	
6. सत्य में भी होता है सतत परिणमन (ऊर्जा का वैश्विक रूप : वैज्ञानिक व आध्यात्म दृष्टि से)	72—77
7. सत्य—वचन	78—86
सत्यवचन के दस भेद, सत्य भाषणम्, मधुर भाषणम्, सत्य का अनुभव, वर्य भाषण, वाक्—पटुता,	
8. असत्य रूपी हिसा का लक्षण	87—91
सत्य का निषेध करना हिंसा, अप्रिय वचन रूपी हिंसा, झूठ वचन से हिंसा	
9. सत्य का वैश्विक—रूप	92—98
बिना पूछे भी कहने योग्य, असत्य से विभिन्न रोग,	
10. सत्य महाव्रत	99—109
सत्य कहने योग्य भी है—नहीं भी, सत्य का सुफल, असत्य से उत्पन्न दोष, असत्य से पौँच पाप	
11. भाषा समिति	110—113
12. सत्य व्रत एवं भाषा समिति सम्बन्धी दोष संशोधन	114—116
13. सत्य का स्वरूप एवं महिमा	117—119
14. महाभारत में वर्णित सत्य	120—122
15. विभिन्न धर्मों में वर्णित सत्य	123—130
वैदिक धर्म, बौद्ध धर्म, यहूदी धर्म, पारसी धर्म, में वर्णित सत्य, हिंसा एवं असत्य का भयावह परिणाम	

। परम सत्य : आध्यात्मिक—सत्य

जिस प्रकार आकाश अकृतिम एवं शाश्वतिक होने से अनादि अनन्त है, सर्व जागी होने से अनन्त विस्तार वाला है; अभौतिक होने के कारण स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, वजन आदि से रहित है तथा खण्ड—विखण्डित से रहित है, उसी प्रकार परम सत्य भी अकृतिम, शाश्वतिक, अनादि—अनन्त, सर्वव्यापी, अनन्त विस्तार वाला तथा खण्ड—विखण्डित से रहित है। तथापि जिस प्रकार धूलीकण, बादल, सूर्य, रश्मि आदि के संयोग के कारण और ज्ञान तथा दृष्टि शक्ति की मन्दता से आकाश विभिन्न रूप—रूप, आकार—प्रकार से प्रतिभासित होता है उसी प्रकार परम सत्य के बारे में भी जान लेना चाहिए। उदाहरण स्वरूप प्रत्येक जीव परमशुद्धावस्था (मोक्ष) में एक नहीं होते हुए भी एक समान है और इस अवस्था में प्रत्येक जीव अनन्त ज्ञान—दर्शन—सुख—वीर्य—अस्तित्व—वस्तुत्व आदि अनन्त गुण धर्म से संयुक्त होता है। जीव की अपेक्षा यह अवस्था परम—सत्य होने से इस अवस्था में प्रत्येक जीव परमेश्वर है। इस अवस्था को ही सच्चिदानन्द, सत्यं—शिव—सुन्दरम्, अनल—हक (मैं ही वह हूँ) कहते हैं। आध्यात्म पुरुष इस अवस्था की उपलब्धि के लिए ही इस का अध्ययन, मनन, चिन्तन, अनुसन्धान, ध्यान करते रहते हैं। इन की दृष्टि में अन्य सब भौतिक—अभौतिक सत्य गौण/अलक्ष्य हो जाता है किन्तु उनका सर्वथा अभाव या लोप नहीं हो जाता है। इस परम आध्यात्मिक सत्य की अपेक्षा से विचार करने पर जो भाव, उद्देश्य, कथन, लेखन व्यवहार, लेन—देन, आचरण, ध्यान, अध्ययन आदि यदि इस परम—सत्य से विपरीत या न्यूनाधिक अथवा संदेहात्मक हो वह सब असत्य है। इसलिए ऐसा असत्य /मिथ्या/ असम्यक्/ अयथार्थ विश्वास—ज्ञान—आचरण कथन आदि सब असत्य है। इसी प्रकार मोह, अज्ञान क्रोध, मान, माया, लोभ, काम, ईर्ष्या, आसक्ति, शोक, दुःख, चिन्ता, तनाव, आशंका, उद्वेग, द्वन्द्व, प्रमाद हिंसा, अक्षमा, असहिष्णुता, विद्वेष, भेद—भाव, पक्षपात, असमानता, भ्रष्टाचार, मिलावट, चोरी, परिग्रह, अब्रह्मचर्य, संकीर्णता, हठग्राहिता, उद्धण्डता, उत्श्रृंखलता, फैशन—व्यसन, दिखावा, निन्दा शोषण, कलह, युद्ध, हत्या आदि सब असत्य है, विभाव है, परभाव है, अशुद्धभाव है। यथा—

त्यजतु जगदिदानीं मोहमाजन्मलीढं,

रसयतु रसिकानां रोचनं ज्ञानमुद्यत् ।

इह कथमपि नात्मानात्मना साकमेः,

किल कलयति काले क्वापि तादात्प्यवृत्तिम् ॥२२

हे जगत्! हे संसार के प्राणियों! आजन्म से व्याप्त जो मोह है उसे अब तो त्यागो और मोक्ष मार्ग के रसिकजनों को रोचक तथा उदय को प्राप्त जो ज्ञान है

उसका रसास्वादन करने में उद्यत होओ। इस लोक में किसी प्रकार काल में आत्मा अनात्मा के साथ एक होकर तादात्म्य भाव को प्राप्त नहीं होता है।

अथि कथमपि मृत्वा तत्त्वकौतूहली सन् ॥

अनुभव भव मूर्त्तः पाश्वर्वर्ती मुहूर्तम् ।

पृथगथ विलसन्त्वं स्वं समालोक्य येन,

त्यजसि ज्ञगिति मूर्त्या साकमेकत्वमोहम् ॥ 123

हे भाई ! तू किसी प्रकार महान् कष्ट से मरण पर्यन्त का भी कष्ट उठाना पड़े तो उठाकर तत्त्वों का कौतूहली होता हुआ शरीर का एक मुहूर्त पर्यन्त पड़ोसी होकर आत्मा का अनुभव कर, जिससे पर पदार्थों से भिन्न हुए अपने आपको अवलोकन कर तू शीघ्र ही शरीर के साथ एकपन के मोह को छोड़ सके।

विरम किमपरेणाकार्यकोलाहलेन

स्वयमपि निगृतः सन् पश्य षण्मासमेकम् ।

हृदय सरसि पुंसः पुद्गलाद् भिन्नधाम्नो

ननु किमनुपलब्धिर्भाति किंचोपलब्धिः ॥ 134

रुको, व्यर्थ के विभिन्न कोलाहल से क्या साध्य है ? तू स्वयं ही निश्चल होकर छ हाथ तक एक आत्म तत्त्व का अवलोकन कर—उसी का अभ्यास कर। फिर देख कि पुद्गल से भिन्न तेज वाले आत्मतत्त्व की हृदयरूपी सरोवर में उपलब्धि होती है या नहीं।

अनाद्यनन्तमचलं स्वसंवेद्यमिदं स्फुटम् ।

जीवः स्वयं तु चैतन्यमुच्चैश्चकचकायते ॥ 141

जो स्वसंवेद्य है, अनादि है, अनन्त है, अचल है अर्थात् जिसका कभी विनाश नहीं होता, प्रकट है और चैतन्य स्वरूप है, ऐसा जीव नामक पदार्थ स्वयं अतिशयकर प्रदीपवत् प्रकाशमान हो रहा है।

अस्मिन्ननादिनि महत्यविवेकनाट्ये,

वर्णादिमान्नाटति पुद्गल एव नान्यः ।

रागादिपुद् गलविकारविरुद्धशुद्धः,

चैतन्यधातुमयमुर्तिरयं च जीवः ॥ 144

यह जो अनादिकाल से बहुत बड़ा अविवेक का नाट्य हो रहा है उसमें वर्णादिमान् पुद्गल ही नृत्य करता है, अन्य नहीं, क्योंकि यह जीव, रागादिक पुद्गल के विकारों से विरुद्ध, शुद्ध, चैतन्य धातुमय मूर्ति से संयुक्त है अर्थात् वीतराग विज्ञान इसका स्वरूप है।

परपरिणतिमुज्ज्ञात् खण्डद्वेदवादा—

निदमुदितमखण्डं ज्ञानमुच्चण्डमुच्चैः ।

ननु कथमवकाशः कर्तृकर्मप्रवृत्ते—

रिह भवति कथं वा पौद्गलः कर्मबन्धः ॥ 147

जो पर परिणति को छोड़ रहा है, भेदवाद का खण्डन कर रहा है, स्वयं

भृत्यण्ड रूप है तथा अतिशय तेज पूर्ण है ऐसा यह उत्कृष्ट ज्ञान उदित हुआ है। इसके उदित होने पर कर्ता—कर्म अवकाश कैसे मिल सकता है और पौद्गलिक कर्मबन्ध किस प्रकार हो सकता है।

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत् करोति किम्!

परभावस्य कर्तात्मा मोहाऽयं व्यवहारिणाम् ॥ 162

आत्मा ज्ञान है, जब आत्मा स्वयं ज्ञानरूप है तब ज्ञान से भिन्न अन्य किसको करे ? आत्मा परभाव का कर्ता है, यह कहना व्यवहारी जनों का मोह है—अज्ञान है। ज्ञानिनो ज्ञाननिर्वृत्ताः सर्वे भावा भवन्ति हि ।

सर्वेऽप्यज्ञाननिवृत्ता भवन्त्यज्ञानिनस्तु ते ॥ 167

ज्ञानी जीव के सब भाव ज्ञान से ही निष्पत्र होते हैं और अज्ञानी जीव के सब भाव अज्ञान से ही रचे जाते हैं।

य एव मुक्त्वा नयपक्षपातं स्वरूपगुप्ता निवसन्ति नित्यम् ।

विकल्पजालच्युतशान्तचित्तास्त एव साक्षादमृतं पिबन्ति ॥ 169

जो पुरुष नयपक्ष को छोड़कर स्वरूप में लीन होते हुए निरन्तर अपने आप निवास करते हैं वे ही विकल्प जाल से च्युत होकर शान्त होते हुए साक्षात् अमृत का पान करते हैं।

विकल्पः परं कर्ता विकल्पः कर्म केवलम् ।

न जातु कर्तृकर्मत्वं सविकल्पस्य नश्यति ॥ 195

विकल्प करने वाला केवल कर्ता है, और विकल्प केवल कर्म है। विकल्प राहित मनुष्य का कर्तृकर्म भाव कभी नष्ट नहीं होता।

यः करोति स करोति केवलं यस्तु वेति य तु वेति केवलम् ।

यः करोति न हि वेति स क्वचिद् यस्तु वेति न करोतिस क्वचित् ॥ 196

जो करता है यह केवल करता ही है, और जो जानता है वह केवल जानता ही है। जो करता है वह कुछ जानता नहीं है और जो जानता है वह कभी करता नहीं है।

न पृथ्वी न जलं नाम्निर्वायुद्यौर्ण वा भवान् ।

एषां साक्षिणमात्मानं चिन्द्रूपं विद्धिः मुक्तये ॥ अष्टा. गीता

मुक्त अवस्था में जीव न पृथ्वी, न जल, न अग्नि, न वायु, न आकाश स्वरूप होता है। मुक्ति के लिए इन सब का केवल साक्षी/ समता/ निर्लिप्त स्वरूप ज्ञान विधेय है तथा मुक्ति में भी इन सब का ज्ञान भी पूर्णतः होता है परन्तु साक्षी रूप में होता है। अर्थात् मुक्तावस्था में केवल पर की अधीनता ही अंसभव नहीं है परन्तु व्यशरीर, इन्द्रियाँ, मन, अज्ञान, राग-द्वेष, दुःख, संक्लेश, जन्म, मृत्यु, रोग, शत्रु, मित्रादि भाव से भी सर्वथा अनन्त काल तक मुक्त होकर सच्चिदानन्द, सत्य-शिव-गुनरं, परम-सत्य- सुख-शक्ति स्वरूप हो जाता है।

इस परम आध्यात्मिक-सत्य को वैचारिक एवं तार्किक-दृष्टिकोण से जानने की पद्धति को हम दार्शनिक-सत्य कह सकते हैं। सत्य-तथ्यपरक, निष्पक्ष,

सहिष्णु उदारवादी, दार्शनिक—सत्य आध्यात्मिक—सत्य के बाद महान्—सत्य है क्योंकि इससे आध्यात्मिक—सत्य, तार्किक—सत्य, वैज्ञानिक—सत्य, व्यावहारिक—सत्य, राजनैतिक—सत्य, कानूनी—सत्य, सामाजिक—सत्य आदि का विकास होता है।

2. द्रव्यगत—सत्य—

द्रव्यस्वभावो द्रव्यत्वम्, निजनिजप्रदेशसमूहैरखण्डवृत्था स्वभावविभावपर्यायान् द्रवति द्रोष्टिअदुद्रुवदितिद्रव्यम् ॥१९६ आला. प. पृ. १०८

जो अपने—अपने प्रदेश समूह के द्वारा अखण्डपने से अपने स्वभाव—विभाव पर्यायों को प्राप्त होता है, होवेगा, हो चुका है, वह द्रव्य है। उस द्रव्य का जो भाव है, वह द्रव्यत्व है।

वस्तु के सामान्य अंश को द्रव्यत्व कहते हैं, क्योंकि वह सामान्य ही विशेषों (पर्यायों) को प्राप्त होता है। जैसे—पिंड और घट पर्यायों को मिट्टी प्राप्त होती है। सामान्य के बिना विशेष नहीं हो सकता और विशेष के बिना सामान्य नहीं रह सकता।

द्रवति गच्छति सामान्यरूपेण स्वरूपेण व्याप्तोति तांस्तान् क्रमभुवः सहभुवश्च सद्भावपर्यायान् स्वभावविशेषानित्यनुगतार्थया निरुक्त्या द्रव्यं व्याख्यातम् ।

पंचास्तिकाय गाथा 9 की टीका में

उन—उन क्रमभावी, सहभावी पर्यायों को अर्थात् स्वभावविशेषों को जो द्रवित करता है, प्राप्त होता है, सामान्यरूप स्वरूप से व्याप्त होता है, वह द्रव्य है। इस प्रकार निरुक्ति से द्रव्य की व्याख्या की गई।

सद्द्रव्यलक्षणम्, सीदति स्वकीयान् गुणपर्यायान् व्याप्तोतीति सत्; उत्पादद्रव्य धोव्ययुक्तं सत् ॥१९७

द्रव्य का लक्षण सत् है। अपने गुण और पर्यायों को व्याप्त होने वाला सत् है। अथवा जो उत्पाद—व्यय—धौव्य से युक्त है, वह सत् है।

अस्तीत्येतस्य भावोऽस्तित्वं सदरूपत्वम् ॥१९४ आला. प. पृ. १०७
‘अस्ति’ इसके भाव को अर्थात् सतरूपपने को अस्तित्व कहते हैं।

अस्त्वस्य भावोऽस्तित्वं। सीदति स्वकीयान् गुणपर्यायान् व्याप्तोतीतिसत् ।

संस्कृत नयचक्र पृ. 57

अस्ति का भाव अस्तित्व है। अपने गुण और पर्याय में व्याप्त होने वाला सत् है।

वस्तुनोभावो वस्तुत्वम्, सामान्यविशेषात्मकं वस्तु ॥१९५

सामान्य—विशेषात्मक वस्तु होती है। उस वस्तु का जो भाव वह वस्तुत्व है। नानास्वभवसंयुक्तं द्रव्यं ज्ञात्वा प्रमाणतः।

तत्त्वं सापेक्षसिद्ध्यर्थं स्यान्नयमिश्रितं कुरु ॥११० आला. प. पृ. १२७

प्रमाण से नाना स्वभाव वाले द्रव्य को जान करके, सापेक्षसिद्धि के लिए उसको कथंचित् नयों से मिश्रित अर्थात् युक्त करना चाहिए।

स्वद्रव्यादिग्राहकेणास्तिस्वभावः ॥११५०

स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव, अर्थात् स्वचतुष्टय को ग्रहण करने

साले द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से अस्तिस्वभाव है क्योंकि स्वचतुष्टय की अपेक्षा अस्तिस्वभाव है।

परद्रव्यादिग्राहकेण नास्तिस्वभावः ॥११५१

परद्रव्य, प्रक्षेत्र, परकाल, परभाव अर्थात् परचतुष्टय को ग्रहण करने वाले द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा नास्तिस्वभाव है, क्योंकि परचतुष्टय की अपेक्षा नास्तिस्वभाव है।

तथासदरूपस्य सकल शून्यताप्रसंगात् ॥१२८ आला. प. पृ. १२०

यदि सर्वथा एकान्त से असदरूप माना जाये तो सकल शून्यता का प्रसंग ना जायेगा। सर्वथा असदरूप मानने पर सम्पूर्ण पदार्थ असदात्मक हो जायेंगे, क्योंकि सदरूप से भी अभाव मानना पड़ेगा। अतः कोई भी वस्तु सदरूप न रहने में सकल—शून्यता हो जायगी।

विश्व के समस्त चेतन—अचेतन, मूर्तिक—अमूर्तिक मूल तत्त्व अर्थात् 1. जीव 2. पुदगल (भौतिक तत्त्व) 3. धर्म द्रव्य (गति माध्यम द्रव्य) 4. अधर्म द्रव्य (स्थिति माध्यम द्रव्य) 5. आकाश 6. काल यह सब द्रव्यगत—सत्य है जो कि संक्षिप्ततः उपरोक्त 1. विशेष जिज्ञासु स्वतंत्रता के सूत्र, विश्वद्रव्य—विज्ञान आदि का अध्ययन करें।

३. वैज्ञानिक—सत्य—

वस्तुतः आध्यात्मिक—सत्य एवं द्रव्यगत—सत्य ही यथार्थ से वैज्ञानिक—सत्य है। क्योंकि उपर्युक्त दोनों में ब्रह्माण्ड के समस्त तत्त्वों का समग्रता से पूर्णतः समावेश हो जाता है और उसका परिज्ञान हो जाता है। तथापि आधुनिक वैज्ञानिकों के द्वारा यत्किंचित् सत्य को मैंने सन्दर्भ के अनुसार यहाँ वैज्ञानिक—सत्य के रूप में गर्भित किया है भले वर्तमान तक वैज्ञानिकों ने मुख्यतः भौतिक तत्त्व का ही यत्किंचित् थोध—थोध—आविष्कार आदि के द्वारा थोड़ा ही अपूर्ण सत्य को जाना है तथापि इस वैज्ञानिक सत्य के कारण अनेक अन्धविश्वास (असत्य का विश्वास) मिथ्या परम्परा, लृष्टिवादिता, संकीर्णता, अज्ञानता, अनुदारता कम हो रही है तथा सत्य—तथ्य को जानने की एक उत्तम प्रणाली का विकास हो रहा है। सापेक्ष सिद्धान्त, कार्य—कारण सिद्धान्त, अणु सिद्धान्त, ऊर्जा सिद्धान्त, जीनोम सिद्धान्त (D. N. A.-R. N. A.), जीव विज्ञान, शरीर विज्ञान, औषध विज्ञान (यिकिट्सा विज्ञान), अन्तरिक्ष विज्ञान, भौतिक—रसायन विज्ञान, मनोविज्ञान, पर्यावरण सुरक्षा, पारिस्थितिकी, क्वाट्रम सिद्धान्त, गति सिद्धान्त, प्रकाश सिद्धान्त, सूक्ष्म दर्शक यंत्र, दूरदर्शक यंत्र आदि के कारण प्रकृति के कुछ सत्य—तथ्यों का ज्ञान नवीन पद्धति से हो रहा है। विशेष जिज्ञासु मेरी 1. विश्व विज्ञान गहर्य 2. ब्रह्माण्डीय जैविक रसायन विज्ञान 3. अनन्त शक्ति सम्पन्न परमाणु से लेकर परमात्मा 4. ब्रह्माण्ड—आकाश काल—जीव : अनन्त आदि कृतियों का अध्ययन करें।

४. व्यावहारिक सत्य—

उपर्युक्त आध्यात्मिक द्रव्यगत—वैज्ञानिक—सत्य को तो प्रत्येक जीव न जान सकते हैं न ही कथन तथा प्रयोग में ला सकते हैं तथापि उन्हें भी ऐसी कथनी—करनी चाहिए जिससे दूसरों को कष्ट न पहुँचे और अव्यवस्था न फैले। यथा—

जिण—वयणमेव भासदि तं पालेदु असककमाणो वि ।

ववहारेण वि अलियं ण वददि जो सच्चवाई सो ॥ 398 स्वा.का.पृ.96

जैन शास्त्रों में कहे हुए आचार को पालन में असमर्थ होते हुए भी जो जिन वचन का ही कथन करता है, उससे विपरीत कथन नहीं करता तथा जो व्यवहार में भी झूठ नहीं बोलता, वह सत्यवादी हैं

जैन सिद्धान्त में आचार आदि का जैसा स्वरूप कहा वैसा ही कहना, ऐसा नहीं कि जो अपने से न पाला जाये, लोक निन्दा के भय से उसका अन्यथा कथन करे, तथा लोक व्यवहार में भी सदा ठीक-ठीक वरतना सत्य धर्म है।

हिंसा—वयणं ण वयदि कक्कस—वयणं पि जो ण भासेदि ।

णिट्ठुर—वयणं पि तहा ण भासदे गुज्जा—वयणं पि ॥ 333 स्वा. का. पृ.239

हिद—मिद—वयणं भासदि संतोस—करं तु सत्व—जीवाणं ।

धर्म—पयासण—वयणं अणुव्वदी होदि सो विदिओ ॥ 334

जो हिंसा का वचन नहीं कहता, कठोर वचन नहीं कहता, निष्ठुर वचन नहीं कहता और न दूसरों की गुप्त बात को प्रकट करता तथा हित-मित वचन बोलता है, सब जीवों को सन्तोषकारक वचन बोलता है और धर्म का प्रकाश करने वाला वचन बोलता है, वह दूसरे सत्याणुव्रत का धारी है।

जिस वचन से अन्य जीवों का घात हो ऐसे वचन सत्याणुव्रती नहीं बोलता। जो वचन दूसरे को कड़ुआ लगे, जिसके सुनते ही क्रोध आ जाये ऐसे कठोर वचन भी नहीं बोलना, जैस तू मूर्ख है, तू बैल है, कुछ भी नहीं समझता, इस प्रकार कर्णकटु शब्द नहीं बोलता। जिसको सुनकर दूसरों को उद्वेग हो, जैसे तू कुजात है, शराबी है, कामी है, तुझ में अनेक दोष हैं, मैं तुझे मार डालूँगा, तेरे हाथ पैर काट डालूँगा, इस प्रकार के निष्ठुर वचन नहीं बोलता। किन्तु हितकारी वचन बोलता है और ज्यादा बक बक नहीं करता, ऐसे वचन बोलता है जिससे सब जीवों को सन्तोष हो तथा धर्म का प्रकाश हो।

लाभलोभम्यद्वेषवर्यतीकं वचनं पुनः ।

सर्वथा तन्न वक्तव्यं द्वितीयं तदणुव्रतम् ॥

लोभ से, डर से, द्वेष से, असत्य वचन नहीं बोलना दूसरा अणुव्रत है।

स्वामी समन्तभद्र ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में सत्याणुव्रत का स्वरूप इस प्रकार बताया है 'जो स्थूल झूठ न तो स्वयं बोलता है और न दूसरों से बुलवाता है, तथा सत्य बोलने से यदि किसी के जीवन पर संकट आता हो तो ऐसे समय में सत्यवचन भी नहीं बोलता उसे सत्याणुव्रती कहते हैं, बात यह है कि मूल व्रत अहिंसा है शेष चारों व्रत तो उसी की रक्षा के लिए हैं। अतः यदि सत्य बोलने से अहिंसा घात हो तो ऐसे समय अणुव्रती श्रावक सत्य नहीं बोलता। असत्य बोलने के उपायों का विचार करना भी असत्य में ही सम्मिलित है। इस व्रत के भी पाँच अतिचार होते हैं—मिथ्योपदेश, रहोभ्याख्यान, कूटलेख क्रिया, न्यासापहार और साकार मंत्र भेद। मूर्ख लोगों के सामने र्वर्ग और मोक्ष की कारण रूप क्रिया का वर्णन अन्यथा करना और उन्हें सुमार्ग से कुमार्ग में डाल देना मिथ्योपदेश नाम का अतिचार है। दूसरों की गुप्त

विचार को गुप्तरूप से जानकर दूसरों को प्रकट कर देना रहोभ्याख्यान नामका अतिचार है। किसी पुरुष ने जो काम नहीं किया, न किसी को करते सुना, द्वेष वश उसी पीड़ा पहुँचाने के लिए ऐसा लिख देना कि इसने ऐसा किया है या कहा है, कूट लेख क्रिया नामक अतिचार है। किसी पुरुष ने किसी के पास कुछ द्रव्य धरोहर रूप ही रखा। लेते समय वह उसकी संख्या भूल गया और जितना द्रव्य रख गया था उससे कम उससे मांगा तो जिसके पास धरोहर रख गया था उसे उतना द्रव्य दे देता है जितना वह मांगता है और जानते हुए भी उससे यह नहीं कहता कि धरोहर अधिक है, तू कम क्यों मांगता है? यह न्यासापहार नामक अतिचार है। मुख की आकृति वगैरह दूसरों के मन का अभिप्राय जानकर उसको दूसरों पर प्रकट कर देना, जिससे उनकी निन्दा हो, यह साकार मंत्रभेद नामक अतिचार है। इस प्रकार के जिन कामों में व्रत में दूषण लगता हो उन्हें नहीं करना चाहिए। सत्याणुव्रत में धनदेव का नाम प्रसिद्ध है। उसकी कथा इस प्रकार है।

सत्य से विजय एवं अर्थ लाभ

पुण्डरीकीणी नगरी में जिनदेव और धनदेव नामके दो गरीब व्यापारी रहते थे। धनदेव सत्यवादी था। दोनों ने बिना किसी तीसरे की साक्षी के आपस में यह तय किया कि व्यापार से जो लाभ होगा उसमें दोनों का आधा भाग होगा और वे व्यापार के लिये विदेश चले गये तथा बहुत सा द्रव्य कमाकर लौट आये। जिनदेव ने धनदेव को लाभ का आधा भाग न देकर कुछ भाग देना चाहा। इस पर दोनों में झगड़ा हुआ और दोनों न्यायालय में उपस्थित हुए। साक्षी कोई था नहीं, अतः जिनदेव ने यही कहा कि मैंने धनदेव को उचित द्रव्य देने का वादा किया था, आधा भाग देने का वायदा नहीं किया था। धनदेव का कहना था कि आधा भाग देना तय हुआ था। राजा ने धनदेव को सब द्रव्य देना चाहा, किन्तु वह बोला कि मैं तो आधे का हकदार हूँ, सबका नहीं। इसपर से उसे सच्चा और जिनदेव को झूठा जानकर राजा ने सब द्रव्य धनदेव को ही दिया तथा उसकी प्रशंसा की।

पैशून्य-हास, गर्भ, कर्कशमसमंजसं प्रलापितं च ।

अन्यदपि यदुत्सूत्रं, तत्सर्वं गर्हितं गदितम् ॥पु.सि.96पु. सि

जो वचन पैशून्य अर्थात् चुगलखोरी/अदृहास्य से भरा है उसे गर्हित वचन कहते हैं। पुनः जो कर्कश, कठोर, असमंजस, सन्देहात्मक, असभ्य, अयोग्य वचन है वे भी गर्हित वचन हैं। इसी प्रकार जो बकवास से भरा, गप्पेबाज, अधिक बोलना, उत्श्रृंखल बोलना, भगवान के प्रामाणिक वचन से बाह्य वचन बोलना ये सब वचन कृत्स्नित, गर्हित वचन हैं।

अरतिकरं भीतिकरं खेदकरं वैरशोक-कलहकरम् ।

यदपरमपि तापकरं परस्य तत्सर्वमप्रियं ज्ञेयम् ॥198

जो वचन अरतिकर अर्थात् द्रेषकारक है तथा भीतिकर अर्थात् भयकारक है और भी खेद को करने वाला वैर को करने वाला, शोक को करने वाला, कलह को

करने वाला है ये सब वचन अप्रिय वचन हैं। क्योंकि इन वचनों से दूसरे जीवों को ताप पहुँचता है, कष्ट पहुँचता है।

व्यावहारिक—सत्य के अतर्गत व्यक्ति—समाज—राष्ट्र—सह अस्तित्व आदि के लिए जो नियम, न्याय—संविधान—व्यवस्था (स्थानीय कानून—राजनीति से लेकर वैशिक कानून—राजनीति) है वह सब व्यावहारिक—सत्य है। पूर्वचार्यों ने कहा भी है—

णाणा जीव णाणा कर्म णाणाविह हवे लद्दी ।

तेण वचन विवाद सग—पर समयमी वज्जिदो ॥

संसार में नाना जीव (84 लाख योनियों के अनन्तानन्त जीव) नाना कर्म (8 कर्म या 148 कर्म या संख्यात—असंख्यात—अनन्त कर्म), नाना लब्धि (उपर्युक्त कर्मनुसार लभियाँ) होने से सब के भाव एवं व्यवहार भी तदनुरूप होते हैं जिससे सबमें सदा—सर्वथा एक समान होना संभव नहीं है। इस कारण शरीर—भाव—व्यवहार—कथन—खान—पान—वेश—भूषा—धर्म—मत—पथ—उद्देश्य—राजनीति—भाषा—रंग—रूप आदि में जो प्राकृतिक भिन्नता है उसके कारण भी स्वधर्मावलम्बी या परधर्मावलम्बी के मध्य में वचन—विवाद (वाद—विवाद, रागद्वेषात्मक वचन) भी नहीं करना चाहिए। अपरंच परस्पर में सम्बाद, समन्वय, सहअस्तित्व शान्ति हो ऐसा वचन, व्यवहार करना चाहिए। जैसा कि तीर्थकर, केवली, गणधर से लेकर महात्माबुद्ध, ईसा—मसीह, महात्मा गांधी आदि ने पशु—पक्षी से लेकर स्वयं के विरोधियों के साथ भी हित—मित—प्रिय वचनों का ही प्रयोग किया। कहा भी है—

ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोय।

औरन को शीतल करें आप हूँ शीतल होय।

जग सुहितकर सब अहितहर श्रुति सुखद सब संशय हरैं।

भ्रमरोगहर जिनके वचन मुख चन्द्रतैं अमृत झरैं ॥

अध्याय—2

उत्तम सत्य धर्म

श्रीमत्परमगंभीरस्याद्वादामोघलाभ्यन्तम् ।

जीयात्तैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

समस्त धर्मात्मा बन्धुओं ! आज दश—लक्षण पर्व में, मैं सत्य—धर्म के बारे में

शब्द आप लोगों के सामने प्रस्तुत करूँगा। उत्तम सत्यधर्म मैं पहले भी आप

लोगों को पर्युषण—पर्व और धर्म की परिभाषा बताई थी। इसलिए मैं आज केवल सत्य

के बारे में बताऊँगा। पहले मैं दार्शनिक और तार्किक दृष्टिकोण से कुछ शब्द

बताऊँगा। उसके बाद साधारण भाषा में बताऊँगा। क्योंकि जैसे बिना बीज से वृक्ष नहीं

हो सकता है, उसी प्रकार बिना सत्य, बिना रहस्यपूर्ण तथ्य, धर्म भी टिक नहीं सकता

है। साधारणजन जिसे सत्य बोलते हैं वह लौकिक सत्य है। यथार्थ सत्य क्या है?

उसके बारे में दो शब्द बताऊँगा क्योंकि अभी कम व्यक्ति भी आए हैं और जो ज्यादा

Interested (रुचि) है वो पहले आ जाते हैं और सुनने वाले भी। इसलिए सुनने वालों

के लिए कुछ अच्छा विषय बताऊँगा। बाद में आने वाले “केवल मैं जैन हूँ, दश—लक्षण

पर्व है, जाना ही चाहिए, नहीं तो साधु लोग क्या बोलेंगे” इसलिए आ जाते हैं। इसलिए

उन लोगों के लिए कथा कहूँगा—हाँ, सत्य, इसको हम यदि दार्शनिक और वैज्ञानिक

भाषा में कहेंगे तो Reality, Truth, As it is, Substance कहेंगे। सत्य, Existence

जिसका अस्तित्व हो, जो सत्तावान हो उसको सत्य कहते हैं। जिसका अस्तित्व नहीं

हो, जिसका Existence (अस्तित्व) नहीं हो, जो Reality नहीं हो उसको असत्य कहते

है। वस्तुतः मनुष्य जिसे सत्य या असत्य कहते हैं वे वास्तविक सत्य या असत्य की

परिभाषा में उसको गर्भित कर लेते हैं परन्तु जो Real सत्य धर्म है, वो हुआ अस्तित्व

धर्म। जिसका अस्तित्व हो जिसका अवस्थान हो who have Existence इसलिए जो

सत्तावान हो (Existence हो) उसको सत्य कहते हैं।

सद्द्रव्यलक्षणम् ।

उत्पादव्ययद्वैव्ययुक्तं सत् ॥

द्रव्य का लक्षण ही सत्य स्वरूप है। इसलिए विश्व में जो कुछ सत्यस्वरूप

है Existence (अस्तित्व) स्वरूप है वो सब सत्य हैं। जैसे—जीव, आकाश, धर्म। धर्म माने

Medium of Motion. अधर्म माने Medium of rest. काल (Time) ये अस्तित्वान हैं।

इसलिए सत्य है परन्तु इसके बारे में यहाँ विशेष नहीं बताऊँगा, क्योंकि श्रोता के

अनुकूल वक्ता होता है इसलिए इसको छोड़कर मैं आज लौकिक सत्य के बारे में

बताऊँगा। पहले मैं एक उदाहरण देता हूँ, जैसे बच्चों को खिलौने और मिठाई प्रिय

होते हैं ना, इसी प्रकार ज्यादा व्यक्ति कथाप्रिय होते हैं। मनोरंजन प्रिय होते हैं। मैंने

जो अध्ययन किया है। कर्नाटक से लेकर यहाँ तक 99 % व्यक्ति मनोरंजन प्रिय होते हैं,

सत्य को, तथ्य को, रहस्य को जानने वाले व्यक्ति बहुत ही कम होते हैं। बहुत ही

कम। जो कि अत्यन्त दुर्लभ है जैसे— मिट्टी, पत्थर आदि जहाँ—तहाँ सरल साध्य,

उपलब्धि होती है, परन्तु रत्न की उपलब्धि बहुत ही कष्ट साध्य है, इसी प्रकार केवल यहाँ नहीं जहाँ भी जाओ, श्रोता विशेष करके मनोरंजन प्रिय होते हैं। ज्यादा ही कथा—कहानी में Interested (रुचि) लेते हैं। इसलिए हमारे तीर्थकरों ने भी श्रोता के अनुकूल उपदेश दिए हैं। जैसे आदिनाथ भगवान् और महावीर भगवान् का उपदेश अलग है और बीच के 22 तीर्थकर का उपदेश अलग है परन्तु तथ्य, सत्य तथा निष्कर्ष एक है क्योंकि आदिनाथ भगवान् के जो शिष्य थे भोग—प्रधान शिष्य थे और भोग—भूमि के शिष्य थे, सरल थे और कम बुद्धि वाले थे और पंचम काल में जो आप लोग, हम लोग के जैसे शिष्य हैं, ज्यादा टेढ़े, जानेंगे नहीं, मानेंगे नहीं, तानेंगे। आप लोग न जानते हो, न मानते हो और तानते हो परन्तु आदिनाथ भगवान् के शिष्य जानते नहीं थे, मानते थे और स्वीकार करते थे। इसलिए आदिनाथ भगवान् का उपदेश अलग हुआ और महावीर भगवान् का उपदेश अलग हुआ। 22 तीर्थकर भगवान् का उपदेश अलग हुआ। इसलिए आचार्य ने कहा, कुन्दकुन्द देव ने कहा— म्लेच्छ देश में जाकर म्लेच्छ भाषा में उपदेश करो, आर्य देश में जाकर के आर्य भाषा में उपदेश करो। शिष्य जैसे हो उसी प्रकार उपदेश करो। इसलिए आप जैसे शिष्य हो उसी प्रकार मैं उपदेश करूँगा—क्या हुआ, एक चाण्डाल एक गाय के पीछे भाग रहा था गाय को पकड़कर मारने के लिए। गाय आगे भाग गई और ये पीछे—पीछे जा रहा था और दिखाई नहीं दी कि गाय कहाँ गई। जाते वक्त चौराहे पर एक मुनिराज थे और मुनिराज देख रहे हैं कि गाय इधर से भागी है और अभी यो चाण्डाल नंगी तलवार लेकर के पीछे—पीछे आ रहा है और निश्चित रूप से पूछेगा कि गाय किधर गई? एक धार्मिक संकट है, इधर यदि मैं पूछने पर झूठ बोलूँगा तो सत्यव्रत में दोष लगेगा और मैं जो सही बोलूँगा तो गाय की हत्या हो जायेगी। इसी प्रकार विचार करके इस धार्मिक संकट से स्वयं को पार करने के लिए जो पहले खड़े हुए थे बैठ गये क्योंकि जो ज्ञानी होते हैं, बुद्धिमान होते, आगे—पीछे देखकर के चलते हैं। जैसे बोलते हैं ना 'देखभाल करके चलना।' इसी प्रकार जो बुद्धिमान व्यक्ति होते हैं, ज्ञानी होते हैं, एक शब्द भी बोलेंगे, एक क्रिया भी करेंगे, एक पैर भी उठायेंगे तो देखभाल करके ही करेंगे। जो निर्बुद्धि होते हैं, विवेकहीन होते हैं वो यद्वा—तद्वा बोल सकते हैं, परन्तु एक—एक शब्द भी तोल करके बोलना चाहिए। वो बैठ गए, उसके बाद चाण्डाल आया। पूछता है कि महाराज, गाय किधर गई है? महाराज बोले जबसे मैं बैठा हूँ तब से इधर से कोई गाय नहीं गई है। देखो, जबसे महाराज बैठे तब से गाय गई क्या? जब खड़े हुए थे तब गाय गई है। तब झूठ भी नहीं और इधर चाण्डाल क्या विचार करता है कि अरे, मुनि महाराज तो कभी झूठ नहीं बोलेंगे। भले अजैन लोग दिगम्बर साधु को मानते नहीं, परन्तु जानते हैं कि दिगम्बर साधु असत्य—झूठ नहीं बोलते हैं, सत्य ही बोलते हैं, प्रमाणिक होते हैं। जैसे कोई रत्न खरीद नहीं सकता है तो भी वह जानता है कि रत्न का मूल्य बहुत है। इसी प्रकार जब तक पापकर्म का उदय होता है सत्य धर्म स्वीकार नहीं करते हैं। तो उस चाण्डाल ने विचार किया कि दिगम्बर जैन साधु कभी झूठ नहीं बोल सकते हैं। इसलिए इधर से गाय नहीं गई तो वापिस हो गया। देखो, महाराज एक अपेक्षा बोल सकते हैं कि झूठ बोले, क्योंकि महाराज ने देखा था गाय

इधर से गुजरी है, गई है, परन्तु महाराज बोले कि जब से मैं बैठा हूँ तब से गाय नहीं गई। तो ये झूठ या सच। समस्या है। क्योंकि गाय तो गई है। इस अपेक्षा झूठ है, क्योंकि सत्य किसको बोलते हैं? मालूम है क्या? जो देखा हुआ है जो सुना हुआ है वो सत्य है क्या? नहीं है। जैसे साधारण बच्चों को साधारण Teacher (शिक्षक) लोग बता देते हैं। जो देखा हुआ, जो सुना हुआ जैसे देखा हुआ है, जैसे सुना हुआ है वैसा बोलना चाहिए। वो ही सत्य है। नहीं है। जो जैसा देखा हुआ, जैसा सुना हुआ बोलना सच यदि होता तो मुनि महाराज बोल देते कि इधर से गाय गई है। वो सच हो जाता, नहीं, देखा हुआ, सुना हुआ बोलना सत्य नहीं है। हम जिसे सत्य बोलते हैं वो सत्य नहीं है क्योंकि जैसे एक अन्धा है उसे ऐ अन्धा इधर आओ। बोल करके पुकारना सच है क्या? नहीं, सच नहीं है। क्यों सच नहीं है? वो तो अन्धा है। सत्य नहीं है, क्योंकि "सद्भ्यो हितं सत्यं" जो मनुष्यों के लिए, जीवन के लिए, प्राणी मात्र के लिए, सत्ताओं के लिए हितकर है वो सत्य है यदि हितकर नहीं हैं, घातक हो, वो सत्य नहीं है। जैसे कोई धीवर, शिकारी पूछेगा कि इस तालाब में मछली है क्या? इस जंगल में प्राणी हैं क्या? हिरण है क्या? तो आप बोलेंगे कि हाँ, यहाँ पर तालाब में मछलियाँ हैं, जंगल में हिरण है, ये सच है, नहीं। ये सच क्या? जिस बचन से स्वयं और दूसरों का उपकार हो वो सच है। भले सामान्य व्यक्ति उसको बोलते होंगे। परन्तु बोलने से कुछ नहीं होता, मानने से कुछ नहीं होता। मैं पहले इसलिए बोला— मुनि महाराज की भावना क्या थी? गाय की रक्षा हो। इसलिए गाय की रक्षा के लिए बैठ गए। जब से बैठे तब से गाय इधर से गई नहीं है, इसलिए झूठ नहीं है। इसलिए सच किसे कहते हैं? "सद्भ्यो हितं सत्यं" प्राणियों के लिए जो हितकर बचन हो वो सत्य है। जैसे कभी—कभी गुरुजन शिष्य को डांटते हैं, फटकारते हैं तो क्या वो असत्य है? नहीं। वैश्या फुसलाती है। क्या वो सत्य है? नहीं। क्यों वहाँ भावना दूषित है और गुरुजन फटकारते हैं वहाँ भावना पवित्र होती है। इसलिए जो कुछ आप देखें, जो कुछ आप सुनें वह बोलना सत्य नहीं है, वो झूठ भी हो सकता है। जैसे मैंने आपको उदाहरण दिया, हाँ तालाब में मछलियाँ हैं जाओ धीवर मछली पकड़ों, ये सच है क्या? जंगल में हिरण है जाओ बाधिक मारो। ये सच है क्या? नहीं, ये सच नहीं है। इसलिए हिन्दू धर्म में एक शास्त्र है, मनुस्मृति, उसमें कहा है—

सत्यं बूयात्प्रियं बूयात् न बूयात्सत्यमपिअप्रियम् ।

प्रियं च नानृतं बूयाद् एषः धर्मः सनातनः ॥

सत्य भी अप्रिय मत बोलो और प्रिय असत्य भी न बोलो। इसलिए सत्य बोलने के लिए जो कुछ आप देखे हो, सुने हो वो पर्याप्त नहीं है। इसके साथ—साथ हृदय चाहिए, विवेक चाहिए। जब आप विवेक सहित, हृदय सहित नहीं बोलते हो, तब सत्य भी असत्य है और विवेक सहित, दया सहित, करुणा सहित, दूसरों के उपकार की भावना सहित यदि आप असत्य बोलते हो तो वो भी सत्य है। इसलिए सत्य मौखिक नहीं है। सत्य केवल मौखिक नहीं है। मौखिक सत्य बहुत ही छोटा सा सत्य है। विशाल सत्य के सामने विशाल सत्य सुमेरु है तो मौखिक सत्य जैसे सुमेरु के सामने चारसों के समान है। अब आप लोग विशेष करके मौखिक सत्य बोलते ही सन्तोष हो

जाते हैं। नहीं, इसलिए एक कवि ने कहा है कि वाचनिक सत्य भी कैसे होना चाहिए? वाचनिक सत्य का महत्व बहुत कम है। तो भी आप लोग वाचनिक सत्य भी नहीं बोल पाते हो और हृदय का सत्य तो बहुत विशाल है। उस सत्य को प्राप्त करना बहुत दुर्लभ है। तो भी वाचनिक सत्य कैसे बोलना चाहिए?

**ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोए।
औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होए॥**

ऐसी वाणी बोलिए—इसी प्रकार की वाणी बोलना चाहिए। ऐसी वाणी बोलिए, ये जो वाणी है ना जो कर्कश वाणी, बाण से भी अधिक तीक्ष्ण है। नीतिकार ने कहा—बाण से, तलवार से यदि हम जंगल के पेड़ को काट देते हैं, फिर वो पेड़ हरा—भरा हो जाता है, अंकुरित हो जाता है। परन्तु ये जो कर्कश वाणी रूपी बाण से यदि दूसरों के हृदय को भेदन कर लेते हैं काट देते हैं वो हृदय पुनः पल्लवित नहीं होता है, पुष्टित नहीं होता है। इसलिए 'ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोए' पहले तुम ऐसी वाणी बोलो, जिससे तुमको स्वयं को शीतलता प्राप्त हो। यदि असत्य, कठोर मर्मभेदी, पापकर वचन बोलते हों, पहले आपको स्वयं कष्ट होगा, आपको व्याकुलता हो जाएगी, आपको तनाव हो जाएगा। जैसे दूसरों को जलाने के लिए आप आग हाथ में लेते हों तो पहले अपना हाथ ही जलता है। दूसरे का मुख काला करने के लिए यदि आप काजल हाथ में लेते हो तो पहले अपना हाथ ही काला होता है। इसी प्रकार जो दूसरों के लिए कटु शब्द प्रयोग करते हैं पहले स्वयं का हनन करते हैं। इसलिए “ऐसी वाणी बोलिए जैसे मन का आपा खोए, औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होए।” दूसरों को तो वो वाणी शीतल करेगी ही और स्वयं को भी शीतल करेगी। इसलिए वचन बोलने से पहले वचन तोल करके बोलना चाहिए। देखो, बोलते हैं ना “वक्तं वक्ति ही मानसं” बोलते हैं Face is the index of the mind. मनोवैज्ञानिक बोलते हैं कि जो मुख है ना हृदय का Index है, दर्पण है परन्तु ये आंशिक सत्य है, पूर्ण सत्य नहीं है, क्योंकि मैं न विज्ञान को, न धर्म को, न तर्क को, न इतिहास को, न भूगोल को न मनोविज्ञान को आँख बन्द करके स्वीकार करता हूँ। ये जो बोलते हैं वो सत्य नहीं है, परन्तु आंशिक सत्य है। केवल Face is the index of the mind नहीं है परन्तु मैं मानता हूँ और मैं लिखता हूँ और मैं बोलता हूँ और सही भी है The Face, activity, walking all are the index of the mind. केवल मुख आकृति ये index नहीं है। परन्तु आपका वचन, आपकी कृति, आपकी गतिविधि सब index of the mind हैं।

जैसे मैं एक उदाहरण देता हूँ—राजा, मन्त्री, पुरोहित और सिपाही जंगल में गए थे और आते वक्त रास्ता भूल गए। रास्ते में एक अन्धे व्यक्ति की कुटी थी। पहले सिपाही आता है, रास्ता तो भूल गए थे, जंगल में भटक गए थे। इधर उधर हो गए थे। पहले सिपाही आता है, पूछता है कि ऐ अन्धा! इस राजधानी के लिए रास्ता कहाँ है? वो बोलता है कि ऐ सिपाही! मुझे मालूम नहीं जाओ। वो अवाक् हो गया, ये तो अन्धा है और मुझे कभी देखा भी नहीं और बोलता है कि ऐ सिपाही! मुझे मालूम नहीं जाओ। उसके बाद पुरोहित आया। पुरोहित पूछते हैं, ऐ सूरदास! रास्ता किधर है?

उस नगर के लिए। उसने कहा—पुरोहित जी इधर है जाइए। वो सोचता है कि अरे तो मुझे कभी नहीं देखा और मैं भी कभी नहीं देखा और आवाज से भी नहीं पहचानता हूँ ना वो पहचानता है। इसको कैसे मालूम पड़ा कि मैं पुरोहित हूँ। उसके बाद मन्त्री आया, बोला कि सूरदास जी, हम लोग रास्ता भूल गए हैं और नगर के लिए रास्ता जाहो से है? कैसे है, किधर से जाना पड़ेगा? सूरदास बोला कि मन्त्री साहब! ये रास्ता इधर से जा रहा है, इधर से जाइए। वो भी सोचता है कि अरे, मैं मन्त्री हूँ इसको कैसे मालूम पड़ा? फिर राजा आते हैं, आकर के नमस्कार करते हैं और पूछते हैं कि आपका रास्ता यो ठीक है। ऐसे सुख-दुःख की बात करते हैं उसके बाद बोलते हैं कि इस नगर के लिए रास्ता किधर से है? वो बोलते हैं कि राजा साहब! आपका रास्ता यो ठीक है क्या, प्रजा लोग ठीक है क्या? और रास्ता इधर से है, जाइए। चारों व्यक्तियों की भेट हो जाती है। नगर में फिर चर्चा करते हैं और विचार-विमर्श करते हैं कि आप हो सिपाही, आप हो पुरोहित, आप हो मन्त्री और आप हो राजा बोल करके सम्बोधन किया और इनको मालूम कैसे पड़ा, चलो, वापिस जाकर पूछेंगे। आकर के पूछते हैं, पूछने पर वो सूरदास जी बोलते हैं कि जो अन्दर मैं होता है ना वही निकलता है। जैसे आप एक बर्तन में पानी रखो, पानी रखे हो तो उससे आपका क्या मिलेगा? उससे क्या निकलेगा? पानी! धीर रखे हो। दूध रखे हो। विष रखे हो। इसी प्रकार जो व्यक्ति जैसा होगा ना उसका वचन भी उसी प्रकार मिलेगा। छोटा व्यक्ति का वचन छोटा ही होगा। महान् व्यक्ति का वचन महान् ही होगा। तो सूरदास बोलता है, अन्धा बोलता है कि वो आकर के मुझे बोलता है कि ऐ अन्धा! तो मैंने सोचा कि कोई नीच व्यक्ति होगा तो मैं बोला कि कोई सिपाही वगैरह होगा तो मैं बोल दिया कि ऐ सिपाही! उसके बाद वो जो पुरोहित आए, कुछ भद्र शब्द से सम्बोधन किए। मैं सोचा कि इस सिपाही से कोई बड़ा व्यक्ति होगा। इसी प्रकार मन्त्री उसी प्रकार राजा। तो आप लोग अपना व्यक्तित्व अपने वचन के माध्यम से व्यक्त करते हो। आप यदि नपे—तुले वचन नहीं बोलते हो तो आपका व्यक्तित्व गिर जाता है। आप सोचते हो कि दूसरों का अपमान करने के लिए व बदला लेने के लिए यद्वा—तद्वा बोल देना चाहिए। आप रख्य का अपमान कर देते हो, आपका व्यक्तित्व गिर जाता है। इसलिए कभी भी बोलते समय 'हाँ' “ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोए, औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होए।” जैसे आप लोगों को तो मालूम होगा भूदान—यज्ञ के जो पुरस्कर्ता विनोबाभावे। हमारे भारत में विभिन्न क्षेत्र में विभिन्न युग में बड़े—बड़े महापुरुष हुए हैं। जैसे अभी विनोबाभावे बहुत एक साधु, सन्त और दार्शनिक, राजनैतिक, समाज सेवी व्यक्ति हुए हैं। उनका व्यक्तित्व बहुत ही निष्कंलक है। वर्तमान जितने जो ऐतिहासिक युग में स्वाधीनता संग्राम को लेकर अभी तक जितने व्यक्ति हुए हैं ना सबसे Top (उच्च) व्यक्ति विनोबाभावे। जल्लर हृदय इस सत्य को स्वीकार करेगा। जिसका हृदय स्वीकार नहीं करता तो उसके हृदय में कुछ कलंक है तब जाकर वो स्वीकार नहीं करेगा। बहुत अच्छा व्यक्ति है, बहुत ही साधु, बहुत ही भोला, बहुत ही सीधा—सादा और वे कभी भी Newspaper (अखबार) में अपना Photo (फोटो) छपाने के लिए नहीं देते थे। ऐसे व्यक्ति थे, बहुत ही सादा जीवन और जो भूदान—यज्ञ का प्रारम्भ किए,

भूदान—यज्ञ तो मालूम है आप लोगों को। भूदान—यज्ञ का अर्थ है जर्मीन लेना। जो जमीदारी है उसे लेना जैसे लेनिन और कार्लमार्क्स जैसे? नहीं, लेनिन और कालमार्क्स में बहुत कुछ गुण था परन्तु कुछ दोष भी था। वो दोष मैंने अभी नहीं, आठ—दस वर्ष पहले बताया था और अभी आप लोगों को पता चल गया। लेनिन और कार्लमार्क्स का जो समाजवाद है ना, मार—मार करके धर्मात्मा बनाने वाला समाजवाद है और हमारे यहाँ का जो समाजवाद है हृदय का समाजवाद। इसलिए अभी Fail (फेल) होता जा रहा है। तो वो जो विनोबाभावे का समाजवाद था ना बड़ा उदार था। वो कैसे करते थे। जैसे डाकू लोग बन्दूक की नोक पर छीनते थे? इसी प्रकार क्या छीनते थे? नहीं! केवल हृदय से, केवल वचन से जमीन को ले लेते थे। एक परिवार में जाते थे, पूछते थे कि बाबू जी! आपके कितने बच्चे हैं? कितने लड़के हैं? मेरे चार लड़के हैं—घर मालिक ने कहा। विनोबाभावे बोले—तो मैं भी आपका एक लड़का हूँ और मेरा जो अधिकार है ना जमीन का अधिकार। मुझे दे दो। क्योंकि मैं एक आपका लड़का हूँ। तो आपके कितने लड़के हो गए? पाँच लड़के तो पाँचवें लड़के को आप जमीन दीजिएगा। है कि नहीं। मेरी जो सम्पत्ति है ना और जमीन है वो भी दे दो। उनके व्यवहार से, उनके वचन से, उनके अपनापन से दूसरे लोग गल जाते हैं। तो देखो, वो तो उनके लड़के भी नहीं हैं और जमीन के ऊपर उनका अधिकार भी नहीं है। तो भी जमीन कैसे मिलती? करोड़ बीघा जमीन वो प्राप्त कर लिए। हृदय से उनका वचन निकलता था? इसलिए दूसरे लोग प्रभावित होते थे। तो मैं क्या बोला था? केवल वचन से सत्य बोलना सत्य नहीं है। उसके साथ—साथ मानसिक सत्य भी होना चाहिए। तो तीन प्रकार के सत्य हो जाते हैं—वाचनिक और कायिक और मानसिक। तीन प्रकार के सत्य? जैसा आप लोगों को अब बताऊँगा, वाचनिक सत्य होते हुए भी कायिक असत्य से कैसा अनर्थ हो जाता है?

आप लोगों को मालूम होगा यमपाल चाण्डाल की कथा। एक राजा ने घोषणा (Announce) कर दिया था इस पर्व के समय में कोई हिंसा नहीं करे। परन्तु राजकुमार ने ही एक पशु को मारकर खा लिया। माली को मालूम था, वह आकर बोल दिया कि आपका लड़का ही ऐसे काम करता है। राजा बोलता है कि इसको फाँसी—दण्ड, सूली—दण्ड दो। इसका कत्तल करो। तो कौन दण्ड देगा? चाण्डाल/यमपाल चाण्डाल यमपाल चाण्डाल को राजकर्मचारी बुलाने आ रहे हैं और वह सोचता है मुझे लेकर जायेंगे और मेरा व्यवसाय है क्या? दूसरों को मारना ही है, परन्तु आज पर्व का दिन है और पर्व के दिन मैं उसका नियम था, व्रत था। मुनिमहाराज से उसने व्रत लिया था कि मैं पर्व के दिन मैं हिंसा नहीं करूँगा। तो बोल देता है कि, क्योंकि अपने व्रत की रक्षा करनी है। यदि घर में रहते अगर नहीं जाएगा तो नौकरी चली जाएगी। नहीं तो राजा क्रोधित होकर उसे ही प्राणदण्ड दे देगा। तो बोलता है कि देखो, चाण्डालिन यदि राजकर्मचारी आए तो बोल देना कि यमपाल चाण्डाल घर पर नहीं हैं, बाहर गए हैं। जब राजकर्मचारी आते हैं तो पूछते हैं कि कहाँ गए हैं? यमपाल चाण्डाल। वो बोल देती है कि बाहर गए हैं। राजकर्मचारी बोलते हैं कि अरे, इसका भाग्य फूटा। आज राजकुमार को दण्ड मिलने वाला है और यदि

यह राजकुमार को दण्ड देता तो राजकुमार के शरीर पर जो अलंकार है वो सब इसको ही मिल जाता। ये बात सुन चाण्डालिन के मुख में पानी आने लगा। क्योंकि महिलाएँ तो शृंगार—प्रिय होती ही हैं, साधारण रूप से और इधर से मूल्यवान् अलंकार मिलने वाले हैं। और भी ज्यादा लोभ चढ़ गया। 'हाँ' तो बोलती है कि मैं तो वचन से नहीं बोलूँगी, परन्तु उसने क्या किया? इशारे से अन्दर होने का बता दिया। यमपाल चाण्डाल बाहर गए हैं केवल वचन से बोल दिया। देखो, केवल वाचनिक सत्य या असत्य, सत्य व असत्य नहीं है। मानसिक और कायिक सत्य व असत्य भी है। वह भी आप लोगों को जानना चाहिए। तो इशारा क्या किया? घर के अन्दर है। फिर वो लोग गए और उसको पकड़ लिया। पकड़ के लाए और राजा बोले कि क्या रे? इसको फाँसी दण्ड दो। महाराजा! मैंने गुरु से नियम लिया है कि मैं पर्व के दिन दण्ड नहीं दे सकता। अरे, मेरा नौकर होकर के तुम्हारा इतना साहस, मेरे सामने बोलने का। राजा ने हुक्म दिया कि दोनों को बाँधों, राजकुमार और इसको तालाब में फेंक दो, जिस तालाब में घड़ियाल, शिशुमार आदि हिंसक जलधर प्राणी रहते हैं। वहाँ दोनों को फेंक दिया गया। राजकुमार को कुछ क्षणों में घड़ियाल व मछली आदि मिलकर के खा गए, परन्तु इधर क्या हुआ? देखो, चाण्डाल का। देवों का आसन कम्पायमान हुआ। देव वहाँ आते हैं, हाँ और आप लोगों को मालूम है सिंहासन बना देते हैं। उनकी पूजा करते हैं, जय—जयकार करते हैं। इसलिए सत्य माने क्या? महात्मा गांधी बोलते हैं Truth is God And God is Truth और हमारे यहाँ पर भी कहा गया 'सत्यं भगवम्' सत्य ही भगवान् है, सत्य ही धर्म है क्योंकि—

स्वस्तु सहावो धर्मो

वस्तु का जो स्वभाव है वो ही धर्म है। वस्तु का क्या स्वभाव है? सत्य व्यरूप। इसलिए सत्य ही धर्म है। इसलिए कवि ने कहा है—

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।

जाँके हृदये साँच है, वाँके हृदये आप।।

साँच बराबर तप नहीं।

केवल जैसे कुछ मिथ्यादृष्टि साधु पंचामितप करते हैं, पर व शरीर को जमीन में गाढ़ देते हैं। ये क्या? कोई तप है क्या? नहीं, ये तो केवल कुछ साधन हैं। सत्य के बराबर तप नहीं है। साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप और झूठ के बराबर पाप नहीं हैं। इसलिए 'जाँके हृदय में साँच'। नहीं बताया गया, मुख में तो साँच। बहुत व्यक्ति के हैं। क्योंकि वहजो चोर है ना वह भी सच बोल करके ही चोरी करता है। जैसे आप लोग व्यवसाय में करते हो। क्या बोलते हो? सच बोल रहा हूँ। पहले सच बोलकर उसके बाद झूठ बोलते हो। सच का लेवल लगाते हो, उसके बाद असत्य बोलते हो। इसी प्रकार जैसे न्यायालय में न्यायाधीश वकील प्रतिज्ञा करते हैं कि जो कुछ बोलूँगा सच बोलूँगा। उसके बाद कहते हैं कि छोड़कर कुछ नहीं बोलूँगा। क्या बोलूँगा। तो मैं क्या बोल रहा हूँ? मैंने सच कहा, मुख में नहीं है 'जाँके हृदय में साँच' जिसके हृदय में सत्य है "वाँके हृदये पाप" आप माने भगवान् क्योंकि भगवान् क्या है? सत्य व्यरूप ही भगवान् है। हम लोग मिश्रित व्यरूप हैं। सत्य ही भगवान् है। Truth is God 'सत्यं भगवम्' और हमारे

अन्दर झूठ भी है, जैसे—द्रव्य—कर्म, भावकर्म, नौ—कर्म, क्रोध, मान, काम—विकार और विषय—वासना। ये जो असत्य हमारे अन्दर मिला है, इसी कारण तो हम भगवान् नहीं बन पाते और असत्य अंशों को हटा दो तो हम भी भगवान् बन जायेंगे। इसलिए कहा गया है—“जाँके हृदय साँच है, वाँके हृदये आप”। देखो, आप लोगों को मालूम होगा मुसलमान लोगों का जो रमजान आदि का पर्व है उस समय दुकान बन्द कर देते हैं, मैं उन्हें पूछता हूँ कि तुम लोग दुकान क्यों बन्द कर देते हो? व्यापार क्यों नहीं करते हो? वे बोलते हैं कि यदि हम पर्व के दिन व्यापार करेंगे और व्यापार में झूठ बोलेंगे और झूठ बोलना ही पड़ेगा, जिसके कारण हमारे उपवास, हमारे रोजा, रमजान सब खत्म हो जायेंगे। इसलिए हम रमजान में व्यापार ही नहीं करते। मैंने स्कूल की किताब में एक कहानी पढ़ी थी—

एक बार एक विद्यार्थी था जो बगदाद पढ़ने के लिए जा रहा था। जब वह बगदाद पढ़ने के लिए जा रहा था तब उसकी माँ बोली कि तुम कभी भी झूठ मत बोलना, चाहे जो कुछ हो जाये परन्तु झूठ मत बोलना। उसकी मम्मी ने क्या किया कि बीस स्वर्ण दीनार एक कपड़े के अन्दर सिलाई करके रख दिए। जब वह बगदाद जाने लगा तो जाते वक्त कुछ व्यापारी के साथ उसकी भेंट हो गयी। वह व्यापारी के साथ जा रहा था। बगदाद में भी बहुत चोर, डाकू रहते थे क्योंकि आर्थिक परिस्थिति जहाँ सुदृढ़ नहीं होती वहाँ चोर व डाकू ज्यादा रहते हैं। अध्ययन से पता चलता है कि जहाँ कभी अधिक हो, आर्थिक परिस्थिति दुर्बल हो वहाँ चोर, डाकू ज्यादा होंगे अथवा जहाँ शोषण अधिक होता हो वहाँ चोर, डाकू, अधिक रहते हैं। जैसा कि वहाँ M.P.(मध्य प्रदेश) में, चम्बल धाटी में, अभी भी चोर अधिक हैं। हाँ तो वहाँ कुछ डाकू लोग आकर के व्यापारी—वर्ग को पकड़ लिए। पकड़ने के कारण एक लड़के को छोड़कर सब भाग गए और वे लड़के को पकड़ लिए। वो लड़के को पकड़ते हैं और लड़का भाग भी नहीं। निर्विकार रूप है। ना डर है, ना भय है, कुछ भी नहीं। वो डाकू पूछते हैं कि तुम्हारे पास रुपया है? हाँ, मेरे पास रुपया है। तो वे समझे कि झूठ बोल रहा है क्योंकि छोटा लड़का है। इसके पास रुपया कहाँ से आएगा? और वो बोला कि मेरे पास रुपया है। तो क्या कोई बोल सकता है कि मेरे पास रुपया है? वह झूठ बोल रहा है। इसके पास रुपया नहीं है। हाँ तो इसी प्रकार विचार करके उसको छोड़ने ही जा रहे थे कि दूसरे बोले कि नहीं—नहीं, देखो ना, देखो ना रुपया हो सकता है। बोले कि तुम्हारे पास रुपया है। हाँ—हाँ है। कितना रुपया है? बोला कि 20 स्वर्ण दीनार। पहले सोने के दीनार होते थे और अब कागज के हैं। डाकू लोग पूछे कि कहाँ हैं? लड़के ने खोलकर दिखा दिया कि यहाँ पर है। यह देखकर के उनको आश्चर्य हुआ और बोले कि 20 के 20 दीनार ही हैं। तो चोर का जो सरदार था वह पूछता है कि वो सब भाग गए और सब झूठ बोले। तुम ना भागे और ना झूठ बोले। ये सच तुम क्यों बोले? क्या कारण है? वह लड़का बोलता है कि मेरी माँ बोली थी चाहे जो कुछ हो जावे झूठ मत बोलना, सच ही बोलना, तो तुम्हारे सब संकट दूर हो जायेंगे, स्वयं ही दूर हो जायेंगे। इसलिए मैं ना भागा, ना झूठ बोला, क्योंकि मुझे विश्वास है कि मेरी मम्मी जो बोली है वो ठीक है। इसलिए मैं भागा भी नहीं, डरा भी नहीं और

झूठ भी नहीं बोला। ये बात सुनकर के वो लोग पानी—पानी हो गए। वह जो डाकू का सरदार था बोला कि तुमको कहाँ जाना है? मुझे बगदाद विश्वविद्यालय जाना है, वहाँ पढ़ने के लिए। तो सबको Order (आज्ञा) दे दिए इसको वहाँ बगदाद पहुँचा दो और इसकी व्यवस्था के लिए जितना सम्पत्ति चाहिए, दे दो। ये सत्य के अन्दर सत्य होते हैं। यदि सत्य हम हृदय से बोलते हैं तो बहुत कुछ संकट, स्वयं ही निकल जाते हैं। यदि असत्य बोलते हैं प्रकृति भी विरोध करती है।

जैसे आप लोग को मालूम होगा नारद, वसु और पर्वत की कथा। नारद, वसु और पर्वत क्षीरकदम्ब के शिष्य थे। नारद, वसु और पर्वत क्षीरकदम्ब के पास अध्ययन कर रहे थे। चारों बैठे थे। उस समय में चारण ऋद्धिधारी मुनि आकाश में जा रहे थे। वह चारणऋद्धि धारी मुनि बोले कि चारों में दो अधोगामी हैं और दो उद्दगामी हैं अर्थात् दो नरकगामी हैं और दो स्वर्गगामी हैं। मतलब है कि दो स्वर्ग जायेंगे और दो नरक जायेंगे। क्षीरकदम्ब मुनि महाराज की बात सुनकर विचार किए कि मुनि महाराज कभी भी झूठ नहीं बोलते हैं और ये चारण ऋद्धिधारी मुनिमहाराज तो कभी झूठ बोल ही नहीं सकते हैं। क्षीरकदम्ब ने सोचा कि इनमें से कौन दो नरक जायेंगे और कौन दो स्वर्ग जायेंगे। परीक्षण करने के लिए उनको आटे का मुर्गा दे दिए और बोले कि उसके कान काटकर ले आओ। दो काटकर ले आए और नारद कान काटकर नहीं लाया क्योंकि शून्य जगह नहीं है और क्योंकि वे ये भी सोचे कि स्वयं की अन्तरात्मा देखती है और भगवान् भी देखते हैं। उसके बाद विचार कर लिए कि ये दो नरकगामी हैं और दो स्वर्गगामी हैं और इसी प्रकार विचार करके वह वैराग्य सम्पन्न हो गए और वह क्षीरकदम्ब जाकर के मुनि बन गए। इधर क्या हुआ? ये जो पर्वत था वो आगे जाकर उपाध्याय बनकर अपने शिष्यों को पढ़ा रहा था और पढ़ाते समय बोल रहा था कि यज्ञ में बकरे की बलि चढानी चाहिए। इसमें हिंसा आदि का दोष नहीं लगता है। नारद सुन लिया, बोला कि नहीं—नहीं। अज माने अ + ज = अज। जिसका जन्म नहीं हो, इस प्रकार अनाज। इससे यज्ञ करना चाहिए। तीन वर्ष पुराना अनाज से आहुति देना चाहिए परन्तु वह क्या बोला? नहीं—नहीं अज माने बकरा। बकरा की बलि देना चाहिए। बाद—विवाद चला, फिर दोनों बोलते हैं कि राजा को पूछना चाहिए, वसु को और वो दोनों क्या निर्णय किए? जो झूठ बोलेगा, जिसका पक्ष झूठा होगा उसकी जीभ काट दिया जाएगा, निकाल दिया जाएगा। पर्वत अपनी माता को जाकर के बता देता है कि ऐसी—ऐसी घटना है। उसकी माँ को मालूम था कि अज माने पुराना धान आहुति करना चाहिए। वह बोली कि तुमने जो बोला झूठ बोला और तुम्हारी जीभ निकल जाएगी। इधर पति दीक्षा ले लिए और इधर लड़के की जीभ निकल जाएगी। उसको बहुत दुःख हुआ और वह सोचती है कि एक धरोहर है, किसके पास? राजा के पास और राजा कौन बन गया? वसु। वसु के पास जाकर के धरोहर ले लेना चाहिए। क्या धरोहर है? कि मेरा लड़का जो कुछ बोला है सच है। इस प्रकार राजा के पास जाकर के बोलती है कि नारद जो कुछ बोल रहा है वह सत्य है। ऐसी धरोहर है जैसे पहले धरोहर था ही। राजा राजी हो गया व दूसरे दिन राजसभा

में सब कोई आए। वाद—विवाद चला, पर्वत बोलता है कि यज्ञ में क्या चढ़ाना चाहिए? बकरा। नारद बोलता है कि नहीं, पुराना धान। तो सभासदस्य पूछे कि महाराज! बताओ इन दोनों में सत्य कौन बोल रहा है? और तुम्हारे उपाध्याय ने क्या पढ़ाया था? और जो राजा वसु है ना वो स्फटिक के सिंहासन पर बैठता था। इसलिए सब लोग क्या विचार करते थे? ये सत्य के बल पर राजा आकाश में बैठता है, क्योंकि सत्य में इतनी शक्ति है कि आकाश में व्यक्ति बैठ सकता है। राजा बोलता है कि नारद जो बोले हैं युक्तियुक्त बोले हैं, परन्तु उपाध्याय ने बताया था कि यज्ञ में बकरा या बकरी को चढ़ाना चाहिए। हमारे उपाध्याय ने ये बताया। इस प्रकार बोलते ही, वसु का सिंहासन था वह एकदम टूट गया और वह नीचे गिर गए। नारद बोलता है कि अभी भी तुम सच बोलो नहीं तो नरकगामी हो जाओगे। वसु जो बचनबद्ध था, जो एकबार झूठ बोल दिया फिर सच कैसे बोलेगा? नाक कट जाएगी। अपमान हो जाएगा, तो बोला कि नहीं—नहीं, यज्ञ में बकरा ही चढ़ाना चाहिए। ऐसे बोलते ही एकदम धरती फट गयी, उसमें राजा समा गया और नरक गया। देखो, उसने यज्ञ में बल नहीं चढ़ाया, हिंसा नहीं किया, तो भी मरकर के नरक गया। क्यों? देखो, एक बार झूठ बोलने से करोड़ों व अरबों वर्षों से ये ही परम्परा चल रही है। अभी तक यज्ञ में हिंसा कर रहे हैं। देखो एक झूठ से कितना पाप होता है? इसलिए कभी भी झूठ नहीं बोलना चाहिए क्योंकि झूठ बोलने से देखो, कोई तो हिंसा करता है, मारता है, कल्प करता है; एक बकरा को, दो बकरों को, दस बकरों को व विभिन्न बकरों को परन्तु उसने राज्यसभा में बोल दिया कि यज्ञ में बकरा चढ़ाना चाहिए। वह परम्परा अभी तक चली कि नहीं? करोड़ों, असंख्यात जीवों की हिंसा हुई कि नहीं? इसलिए हमारे आचार्य ने कहा कि “सचवं भगवम्” सत्य ही भगवान है। इसलिए कभी भी झूठ नहीं बोलना चाहिए। परन्तु आप लोग श्रावक हो, श्रावक पूर्ण सत्य नहीं बोल सकता है। मुनि के लिए पूर्ण सत्य है और आप लोगों के लिए आंशिक सत्य। आंशिक सत्य माने क्या? जैसे महिलाएँ बोलती हैं कि शक्कर खत्म हो गई, अनाज खत्म हो गया, धी खत्म हो गया, भले ही एक या दो दिन के लिए हो। ये जो बोलती हैं ना ये पूर्ण सत्य भी नहीं है और पूर्ण असत्य भी नहीं है। क्यों? अभी अनाज, धी ये सब है और बोलती है कि सब खत्म हो गया। ये तो असत्य है क्योंकि अभी तो सब है परन्तु पहले बोलने से व्यवस्था हो जाएगी इसलिए ये सत्य भी है। ऐसा बोलना तुम लोगों के लिए प्रायः क्षम्य है। तो भी थोड़ा बहुत दोष लग जाता है। इसलिए पूर्ण सत्य नहीं है। ये क्षम्य है, पूर्ण सत्य नहीं है किर भी थोड़ा बहुत पाप लगता है। जैसे चार प्रकार की हिंसा है— आरम्भिक, औद्योगिक, विरोधी और संकल्पी। आरम्भिक, औद्योगिक और विरोधी हिंसा आप लोगों से हो जाती है, परन्तु संकल्पी हिंसा नहीं करनी चाहिए परन्तु ये तीन हिंसा से क्या पाप बन्ध नहीं होता है? यदि पापबन्ध नहीं होता है तो श्रावक लोग को ही भोग भेगते हुए मोक्ष मिल जाएगा। नहीं, परन्तु जिस Stage (अवस्था) में तुम लोगों के लिए क्षम्य है इतना ही नहीं, जैसे आप लोग व्यापार में झूठ बोलते हो। कितना झूठ बोल सकते हो? वो भी है, ऐसे झूठ बोलना चाहिए जिससे राजदण्ड नहीं मिले और लोक विरुद्ध नहीं हो। क्योंकि पूर्णतः झूठ नहीं बोलना चाहिए, परन्तु बिना झूठ

बोले चलता नहीं। विशेष कर के दो जगह में— न्याय और व्यापार में। इन दों जगहों में बिना झूठ बोले चलेगा ही नहीं। प्रायः करके झूठ बोलना तो वहाँ अनिवार्य मानते हैं। इसका मतलब ये नहीं कि झूठ बोलना ही चाहिए। परन्तु प्रायः झूठ बोलते ही हैं ऐसा वर्तमान में हो गया है। एक दिन मैंने तुम सब लोगों को बताया था कि कर्नाटक में एक जैन हाईकोर्ट का Judge (जज) है। वो आए और उनसे चर्चा चली। उसके बारे में मुझे पता चल गया कि ये Judge (जज) है। ये जरूर झूठ बोलता होगा। ‘हाँ’ तो मैंने उनसे बोला कि कुछ नियम लेकर के जाइए। महाराज! मुझे Time (समय) नहीं है व Busy life (व्यस्त जीवन) है। मैं बोला कि मैं मन्दिर जाने के लिए नहीं बोल रहा हूँ, दान देने व स्वाध्याय करने के लिए नहीं बोल रहा हूँ, फिर क्या? मैं ये भी नहीं बोल रहा हूँ कि तुम जैन धर्म के अनुसार सच बोलो। मैं ये भी ब्रत नहीं दे रहा कि तुम श्रावक योग्य सच बोलो। ये तो बहुत उच्च श्रेणी की बात है कि श्रावक योग्य सच बोलना आ जावे। परन्तु एक नागरिक के योग्य, एक भद्र व्यक्ति के योग्य एक प्रमाणिक व्यक्ति के योग्य बोलना है। वो जज पानी—पानी हो गया व रंग काला पड़ गया। सांस रुक गई। बोला कि महाराज! ऐसा तब तक नहीं हो सकता जब तक कि मैं जज हूँ। ये कोई Storical नहीं है एकदम Practical है। सही घटना है। मैं बोला कि क्यों? क्योंकि महाराज! हम लोग जकड़े हुए हैं, बँधे हुए हैं। Written Theory से हम लोग बँधे हुए हैं। सबसे पराधीन हैं। कैसे? स्वाधीन देश में तुम लोग पराधीन कैसे हो? जज ने कहा मैंने खुद आँख से देखा कि एक व्यक्ति की कल्प कर दिया परन्तु यदि कोई साक्षी (Evidence) नहीं मिला तो न्यायालय में निर्णय नहीं दे सकता हूँ कि ये न्याय है या अन्याय है। साक्षी पक्ष में ही judgement (निर्णय) देना पड़ेगा। इसका पक्ष सत्य है क्योंकि इसके पक्ष में साक्षी बोल रहा है। देखो, यहाँ क्या विवेक है? यहाँ क्या Real, Truth (वास्तविक, सत्य) है। यहाँ क्या सत्य बोल रहे हैं? इसी प्रकार न्यायालय में असत्य चलता है। मैं एक दिन वकील साहब से पूछा था। वे बोले कि इसलिए न्यायालय में एक मूर्ति रहती है, जिसकी आँख बन्द रहती है। हाथ में तुला यन्त्र रहता है। ‘हाँ’ तो वर्तमान न्याय की आँख बन्द है। विवेकरूपी आँख खुली हुई नहीं है। विवेक रूपी आँख एकदम बन्द है। देखो, मैं निन्दा नहीं कर रहा हूँ, परन्तु समीक्षा (Criticize) करने में किसी को छोड़ँगा नहीं। कुछ भी हो जावे— सूर्य टरै, चन्द्र टरै, टरै जगत् व्यवहार।

पंग न टरै कनकनन्दी का टरै ना सत्य—विचार॥

मैं अभी तक किसी के भी साथ Criticize करने में घबराया नहीं। कुछ हो जावे, मैं समीक्षा करूँगा ही क्योंकि साधु होकर भी यदि निडर होकर के समीक्षा नहीं करेंगे तो फिर कौन करेगा? यदि सूर्य प्रकाश नहीं देगा तो प्रकाश कौन देगा? मैं मानता हूँ क्योंकि आज मैं सत्य धर्म के बारे में बोल रहा हूँ। मैं मानता हूँ यदि आप निष्पक्ष भाव से, हृदय से बहुत से वकील और जज बहुत धर्मात्मा रहते हैं और आन्तरिक से जानते हैं और बहुत दुःखी रहते हैं। वे जानते हैं कि हम सत्य नहीं बोल रहे हैं क्योंकि मेरे पास ऐसे बुद्धिजीवी प्राणी ज्यादा आते हैं। वे सब लोग जानते हैं कि हम झूठ बोल रहे हैं और झूठ बोलने से, बेर्इमानी करने से, दगाबाजी करने से

कभी भी हृदय से मानसिक शान्ति मिल ही नहीं सकती। भले करोड़पति हों, अरबपति हों। क्योंकि शान्ति और सुख हृदय से मिलता है, भौतिक साधन से नहीं। मैं बोलता हूँ ये जो हमारे देश में भ्रष्टाचार है, ये जो न्यायपालिका है ना ये न्यायालय नहीं है, जहाँ अन्याय का बोलबाला है। मैं एक दिन वकील साहब से पूछा था कि वकील साहब एक केस चलता है जो एकवर्ष नहीं, दो वर्ष नहीं, अनेक वर्ष तक चलता है। मैंने एकबार पढ़ा था कि England में एक केस 527 वर्ष तक चला। 527 वर्ष चलता है कि नहीं। विचार करो और दस, बीस रुपये के लिए एक लाख, दो लाख रुपये खर्च होते हैं। इतने वर्ष केस चलता है और दस, बीस रुपये के लिए करोड़ों, अरबों रुपया खर्च होता है। कितना Time Waste होता है? कितना तनाव होता है? न्याय क्यों नहीं होता है? क्योंकि वहाँ हृदय पूर्वक मानसिक सत्य नहीं है। वहाँ कागजात सत्य है। वहाँ ज्यादा से ज्यादा मौखिक सत्य है। वहाँ real सत्य हृदय का सत्य नहीं है। इसलिए न्यायालय में अन्धी—मूर्ति रखी जाती है। माने हम लोग अन्धे हैं, हम लोग हृदय से नहीं बोले हैं। हमारे हृदय की आँख बन्द है। इसलिए कभी—कभी मैं व्यंग करके माने कभी एक जोकर जैसे मैं बोलता हूँ। वकील लोग काला कोट पहनते हैं। टाई पहनते हैं। क्यों? यहाँ बहुत वकील हैं परन्तु मुझे डर नहीं क्योंकि मैं किसी की निन्दा नहीं कर रहा हूँ। मैं Criticize कर रहा हूँ, समीक्षा कर रहा हूँ। और वर्तमान युग समीक्षा का युग है और जब तक हम समीक्षा नहीं करेंगे, आगे नहीं बढ़ सकते। जैसे हमारा देश कुछ दशक में पीछे हो गया क्योंकि हम लोग डरे दूसरों की समीक्षा करने के लिए। अरे, ये तो हमारे गुरु हैं, ये हमारी संस्कृति है, हमारा धर्म है, हम कैसे करेंगे। तो हम अन्धे होते गए और हम आगे नहीं बढ़ पाए देखो, वकील लोग और जज काला कोट पहनते हैं, टाई पहने हैं क्यों? मैंने एक शोध—बोध किया है कि काला किसका प्रतीक है? काला असत्य का प्रतीक है। पाप का, Danger का प्रतीक है। माने जैसे नेता लोग को काला झण्डा दिखाते हैं। काला अन्धेरा (Dakness) को कहते हैं। माने हम केवल असत्य ही बोल रहे हैं, असत्य में जी रहे हैं। टाई क्यों पहने हुए हैं? इसलिए पहने हुए हैं जैसे कोई पाप करता है उसको क्या मिलता है? फौसी दण्ड। वकील लोग अन्दर से सफेद कपड़े पहनते हैं वह लोग जानते हैं कि हम लोग झूठ बोल रहे हैं। क्योंकि सब लोग आकर के बोलते हैं कि महाराज, हम लोग झूठ बोलते हैं क्या किया जाए? उन लोगों में क्या गुण हैं? वह क्या कहते हैं? देखो हम काले हैं, हम झूठ बोलते हैं, इसलिए हम जीवनभर फौसी दण्ड में लटके हुए हैं। माने यह प्रतीक हो गया, समझ में आया ना। तो कहने का मतलब जो सही बात है आज भी यदि हमारे जज व वकील साहब न्यायालय में हृदय पूर्वक सत्य बोलेंगे, तो इतना अन्याय, अत्याचार और भ्रष्टाचार नहीं होगा और केस अधिक दिन नहीं चलेगा, दस रुपये के केस में करोड़ खर्च नहीं होगा। आज न्यायालय भी अन्यायालय है और न्यायपालिका है अन्यायपालिका। कुछ वकील लोग बोलते हैं, महाराज वकील और न्यायाधीश को दारु पिला दो, सुरा और सुन्दरी दे दो। बस, असत्य भी सत्य है और दारु की बोतल लेकर नहीं जाओ तो सत्य भी असत्य हो जाता है। विचार करो, जब न्यायालय में ही ऐसा है फिर व्यापारी वर्ग कितना असत्य बोलते होंगे? जहाँ सूर्य में

अन्धकार है फिर घने अन्धकार में, नरक में कितना अन्धकार नहीं होगा? 'हाँ' इसलिए हमारे देश में भ्रष्टाचार होने के कारण देश अवनति की ओर बढ़ रहा है। मैं विदेश में जाने वाले लोगों से पूछता हूँ कि विदेश में क्या है और क्या नहीं है? विदेश में बहुत कुछ भ्रष्टाचार भी है जैसे मुक्तजौनाचार। वहाँ कुछ शील नहीं है, परन्तु उधर कुछ अच्छा भी है। उधर के लोग हमारे देश के लोगों के जैसे बात—बात में झूठ नहीं बोलते। जैसे हमारे देश में मिलावट करते हैं ना, विदेश में मिलावट भी नहीं करते हैं।

एक भारतीय व्यक्ति जापान में गया था। उसको दूध चाहिए था, दूध लेने के लिए गया। वहाँ एक लड़की बैठी हुई थी उससे वह बोला कि I want pure milk. वह लड़की देखती रहती है। क्या है? I want pure milk. Pure माने शुद्ध। Inpure माने अशुद्ध हो जाएगा। वह लड़की बोलती है—अशुद्ध दूध भी कुछ होता है क्या? आदमी बोला कि देखो, दूध में पानी मिलाया जाता है। लड़की बोलती है यहाँ पर दूध में पानी मिलाकर व मिलावट करके कोई चीज नहीं बेचते हैं। क्यों? हम यदि मिलावट किए तो कौन खाएगा। हमारे देशवासी व हमारे भाई खायेंगे। और वो रोगी होंगे तो किसकी क्षति होगी? हमारी क्षति होगी। देखो, ये हमारे देश में हैं क्या? वहाँ तो Newspaper रख देते हैं और एक पेटी रख देते हैं, पैसा डालो और लेजाओ Newspaper। यदि हमारे देश में ऐसा करेंगे तो वो पेटी भी चली जायेगी। Newspaper के साथ पेटी भी। कितना भ्रष्टाचार है? हमारा देश सबसे अधिक धार्मिक देश है और हमारे देश में ही सबसे अधिक भ्रष्टाचार है। भ्रष्टाचार का कारण, क्योंकि हमने धर्म और सत्य को छोड़ दिया। इसलिए धर्म माने कोई मन्दिर या मस्जिद नहीं है, हमारे व्यवहार में है। 'हाँ' तो इसलिए जीवन में सत्य का बहुत महत्व है। सत्य तीन होने चाहिये—वाचनिक, कायिक और मानसिक। यदि हम केवल वाचनिक सत्य बोल रहे हैं तो वो सत्य नहीं होगा। उसके साथ हृदय का सत्य भी चाहिए। देखो, हमारे यहाँ पर एक कथा आती है—

एक राजा था। वो मिथ्यादृष्टि था। चारण ऋद्धिधारी मुनि आए। आने के बाद उन मुनि ने उपदेश दिया। उपदेश सुनने के बाद राजा सम्यक्दृष्टि बन गया व धर्मात्मा बन गया। कुछ दिनों के बाद उनका मन्त्री मिथ्यादृष्टि साधु के कारण वह फिर से मिथ्यादृष्टि बन गया। एक दिन राजसभा में राजा बोलता है कि दो चारण ऋद्धिधारी आकाश मार्ग से हमारे राज भवन में आए थे। मुझे उपदेश दिए और ऐसी—ऐसी घटना हुई। आप लोगों को यदि विश्वास नहीं है तो ये हमारे मन्त्री साक्षी हैं। परन्तु मंत्री तो बाद में जाकर के मिथ्यादृष्टि बन गया था तो मंत्री बोला कि ये राजा जो भी बोल रहे हैं सब झूठ बोल रहे हैं। झूठ बोलते ही मन्त्री की दोनों आँखें फूट गयीं क्योंकि उनने स्वयं देखा था और उनको मालूम था कि चारण ऋद्धि धारी मुनि आकाश मार्ग में जाते हुए ऊपर से नीचे उतरे थे परन्तु उसने क्या बोल दिया? कि मैंने नहीं देखा तो आँख एकदम फूट गई। तो क्या है? जब आप सब बोलेंगे कि ये सब कपोल—कल्पित है, नहीं है। मैं कुछ वैज्ञानिक भाषा में बोलता हूँ। जिस समय में आप कुछ विचार करते हो, अच्छा बोलता हो। यदि सत्य बोलता हो और सत्य विचार करते हो तो उस समय में अलग प्रकम्पन होगा। मन में, वचन में और काया में। और जिस समय आप असत्य

विचार करते हो और असत्य बोलते हो उस समय अलग प्रकार प्रकम्पन होगा। जिस समय आप सच बोलिएगा वो भावतरंग समान होगा। जैसे लयबद्ध संगीत। जैसे ध्वनि तरंग, जैसे बाजा बजाने से, सुर से सुनने में वो ध्वनि अच्छी लगती है। और यद्वा—तद्वा बजाते हो तो ध्वनि अच्छी नहीं लगती है। क्यों? वहाँ लयबद्ध नहीं है। वहाँ Sound जो निकलती है वह ठीक नहीं है, अव्यवस्थित है। इसी प्रकार मैंने अपी—अभी Delhi में Green Park में D. C. Jain के घर पर जाकर मैंने परीक्षण किया। हमारे जो ब्रह्मचारी हैं उनको लिटा दिया गया और परीक्षण किया गया। एक यन्त्र है, आप जो कुछ भी विचार करते हो वो Print हो जाता है। मैंने अभी स्वयं डेढ़, दो महीने पहले परीक्षण किया है। यदि आप अच्छा विचार करते हो तो वो लिपि एकदम सीधी होगी। यदि जटिल विचार करते हो तो लिपि भी जटिल हो जाएगी और यदि अच्छा विचार करते हो तो ऐसे लिपि सीधी होगी। यदि जटिल भाव है तो अव्यवस्थित (वक्र) होगी। तो ऐसे क्यों होता है? जिस समय में आप विचार करते हो वो विचार यदि जटिल हो, असत्य हो तो जो (तरंग) निकलेगी तो वो भी तदनुकूल ही निकलेगी। जो सरल, सादा विचार है तो तरंग भी सरल ही निकलेगी। तो क्या है कि तरंग में भी शक्ति होती है, बहुत शक्ति होती है। ये आप लोगों को मालूम होगा कि विदेश में, हमारे देश में एक यन्त्र सोनार यन्त्र है। मैंने अपने मन्त्र—विज्ञान में ये लिखा भी है। सोनार यन्त्र को एक खेत में रख देते हैं और वहाँ रखवाली के लिए कोई नहीं रहता है। यदि वहाँ पशु—पक्षी खाने के लिए आयेंगे तो वह प्रवेश नहीं कर सकते हैं। क्यों? मालूम है क्या? उस यन्त्र से जो तरंग निकलती है और वो जाकर के टकराती है और सोनार यन्त्र में क्या किया जाता है? वो जो सूक्ष्म ध्वनि तरंग को Reserve (संचय) किया जाता है और वो जब Open (खोला) किया जाता है वह तरंग निकलती है। यदि वो यन्त्र यहाँ रखा है तो तरंग निकलकर के आप लोग पर attack करेगी और आप एकदम पागल हो जाओगे। यदि पेड़ के पास यन्त्र रखा जाएगा तो पेड़ मर जाएगा। यदि खेत में जो भी पशु—पक्षी खाने के लिए आयेंगे वो एकदम मर जायेंगे क्योंकि ध्वनि तरंग निकलती है। आप भी जिस समय विचार करते हो ना किसी भी प्रकार विचार उस समय कम्पन होता है। जैसे कोई झूठ बोलता है ना उसको वो यन्त्र पकड़ लेता है क्यों? कैसे पकड़ लेता है? क्या उसमें बुद्धि है क्या? नहीं, जैसे कोई चोरी किया व बदमाशी किया व झूठ बोला तो कभी भी आपकी अन्तरात्मा उसको स्वीकार नहीं करेगी। वो डरती रहेगी। देखो, मैं आपको एक उदाहरण देता हूँ शेर, चीता गाँव में नहीं आते क्यों? गाय, भैस गाँव में आ जाते हैं, क्यों? क्या गाय, भैस में अधिक शक्ति है क्या? क्यों? डाकू, गुण्डे लोग गुप्त देश में रहते हैं, एकान्त में रहते हैं, जंगल में रहते हैं क्यों? और हम लोग नंगे, पिछी लेकर के जहाँ—वहाँ चले जाते हैं। हम लोगों को डर नहीं लगता, क्यों? क्या कारण? शेर, चीता, डाकू प्रत्येक समय भय में रहते हैं, डरते रहते हैं क्योंकि जो पापी रहेगा वो भयालु रहेगा, उसकी अन्तरात्मा डरती रहेगी। इसलिए जिस समय में वो यन्त्र लगाया जाता है ना उस समय कम्पन होता है और कम्पन के बाद लिपि आ जाती है। वो लिपि से पढ़ा जाता है कि ये झूठ बोला कि सच बोला। मैं बोला था कि आँख फूट गयी। ये क्यों ऐसा होता है? ये कोई असत्य नहीं है। क्यों ऐसा होता है? क्योंकि

जिस समय में आप लोग झूठ बोलते हो, असत्य विचार करते हो, पाप करते हो। वो जो आप करते हो Conscious mind में करते हो माने चेतन मन में समझ में आया ना, चेतन मन में करने के बाद वो जो संस्कार है ना वो अचेतन व अवचेतन मन में जाकर कि छिप जाते हैं। जैसे मैं जो कुछ बोल रहा हूँ यहाँ टेप हो रहा है। इसी प्रकार आप जो कुछ विचार करते हो ना, अथवा बोलते हो वो सब टेप हो जाता है Brain में (भाव में)। मान लो मैंने जो हिन्दी में भाषण किया और जो Speed से भाषण किया तो आप लोग कुछ समय के बाद टेप रखकर के भाषण सुनोगे तो क्या वह Hindi में नहीं होकर English में सुनोगे? जिस में Frequency में मैं बोला उस Frequency में तो आप उनिएगा। है कि नहीं। इसी प्रकार जब आप विचार करते हो व बोलते हो भले आपको कोई नहीं। देखता हो। एक बात मैं बोलता हूँ कि भगवान् भी मानो नहीं देखता हो। भगवान् यहाँ करोड़ों, अरबों, मील नहीं है और भी दूर हैं अथवा देखने पर भी वह आप लोगों का कुछ नहीं करेंगे। एक पेड़ भी आपका विरोध करेगा परन्तु भगवान् नहीं, किन्तु आपकी अन्तरात्मा देखती है। जानती है। कर्म परमाणु खींच करके बंधते कि नहीं, संस्कार जमते हैं कि नहीं। जो संस्कार जमे हुए हैं जैसे मैं जो कुछ बोला, भाषण दिया वह सब आप इस टेप से सुन सकते हो। इसी प्रकार आप जो कुछ विचार करते हो, बोलते हो वह सब कर्म—परमाणु से टेप हो जाते हैं। वह टेप करने के लिए लेपने के लिए, पोतने के लिए, Joint करने के लिए कर्म—परमाणु आ जाते हैं। कर्म—परमाणु में कितनी शक्ति है? ये तो मालूम है आपको, Atombomb के समान। न्यूट्रोन बम्ब, हलेक्ट्रान ये सब क्या है? परमाणु है। कर्म परमाणु जब जाकर के विस्फोट होता है तो उसको बोलते हैं कर्म—उदय। तब जाकर के ये घटना घट जाती है। समझ में आया ना। इसलिए आप लोग ये मत सोचो कि मैंने झूठ बोला है और कोई नहीं देख रहा है। कोई बात नहीं है। नहीं आपको फल मिलेगा ही। इसलिए कहा है कि जो झूठ बोलते हैं तो उसका कोई विश्वास नहीं करते हैं, जीभ काट देते हैं व उसको राजदण्ड मिलता है। उसके साथ—साथ कहा गया है कि आगे जाकर के गूँगा होता है व उसकी जीभ कट जाती है और मुख में घाव होता है व शरीर में रोग होता है और मुख से दुर्गम्य आती है। देखो, आप लोग देखते होंगे कि हम लोग दातुन नहीं करते हैं तो भी हम लोगों के मुख से दुर्गम्य ज्यादा नहीं निकलती है मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है जो कुटिल होगा, झूठ बोलेगा, उसके मुख से दुर्गम्य आएगी। जिसके मुख से दुर्गम्य आती है उसके लिए मैं एक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त दे देता हूँ। मैं दूसरे व्यक्ति को देखकर ही पता लगा लूँगा कि ये व्यक्ति कैसे हैं? जिसके मुख के अन्दर से ज्यादा बदबू आती है वह अन्दर से कुटिल होगा, बदमाश होगा, अथवा पेट साफ नहीं होता होगा और झूठ बोलता होगा। भले ही वह मंजन करे—तीन बार, चार बार, दसबार तो भी बदबू आएगी, जिसके दो Reason हो सकते हैं। एक तो Physical हो सकता है और दूसरा Mental हो सकता है। Physical पेट साफ नहीं होता होगा और जिस व्यक्ति का पेट साफ नहीं होता है वह दस बार भी मंजन कर ले तो भी बदबू आती है क्यों? वो कुटिल व्यक्ति होगे। तो कहने का मतलब यह है कि झूठ बोलने से आगे जाकर के नरक तो मिलता ही है और तदभव में भी कष्ट मिलता है, तनाव बढ़ता है। इसलिए शारीरिक, मानसिक और वाचनिक झूठ छोड़ना चाहिए। ये ही धर्म है, ये ही सत्य—धर्म है।

विविध दार्शनिकों की दृष्टि में सत्य

सत्य प्रभु की आत्मा है और प्रकाश उसकी देह है। — पाइथागोरस
सत्य, चन्द्र—मंडल से भी अधिक सौम्य और सूर्य—मंडल से भी अधिक
तेजस्वी है। — महावीर स्वामी

सत्य के तीन भाग हैं, प्रथम जिज्ञासा, जो कि उसकी आराधना है, द्वितीय
ज्ञान, जो कि उसकी उपस्थिति है और विश्वास, जो कि उसका उपभोग है। — बेकन

सत्य किरणों की किरण, सूर्यों का सूर्य, चन्द्रमाओं का चन्द्रमा तथा नक्षत्रों
का नक्षत्र है—सत्य सबका सारभूत तत्त्व है। — डिकेन्स

सत्य एक जलते हुए दीप की भाँति है, जो अंधकार में छिपाया नहीं जा
सकता, क्योंकि वह अपना प्रकाश स्वयं ले चलता है। — एडवर्ड विल्सन

सत्य से बढ़कर धर्म नहीं है। सत्य स्वयं परंब्रह्म परमात्मा है। — वेदव्यास
सत्य ही समस्त पुण्यों की जड़ है। — गौस्वामी तुलसीदास

सत्य की ही विजय होती है, असत्य की नहीं। — मुंडकोपनिषद्

सत्य के लिए सब—कुछ त्यागा जा सकता है, पर सत्य को किसी भी चीज़
के लिए छोड़ा नहीं जा सकता, उसकी बलि नहीं दी जा सकती। — विवेकानंद

सत्य का स्थान हृदय में है, मुख में नहीं। केवल मुख से निकलने के कारण
कोई बात सत्य नहीं बन जाती। — शरचन्द्र

सत्य का ज्ञान धार्मिक विश्वास का परिणाम नहीं होता, वरन् गंभीर नैतिक
आचरण का अनुभव होता है। — डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

परमेश्वर सत्य है; यह कहने के बजाय 'सत्य ही परमेश्वर है, यह कहना
अधिक उपयुक्त है। — महात्मागांधी

जिस प्रकार सूर्य की किरणें किसी पदार्थ से अपवित्र नहीं की जा सकती,
उसी प्रकार सत्य को भी बाह्य स्पर्श से अपवित्र करना असंभव है। — मिल्टन

असत्य फूस के ढेर की तरह है। सत्य की एक चिनगारी भी उसे भस्म कर
देती है। — हरिभाऊ उपाध्याय

सत्य को कह देना ही मेरे मजाक करने का तरीका है। संसार में यह सबसे
विचित्र मजाक है। जार्ज बर्नार्ड शॉ

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।

जाके हिरदे साँच है, ता हिरदे गुरु आप॥ कबीर

महात्मागांधी की दृष्टि में सत्य

यदि सम्पूर्ण सत्य का पालन किया जाए तो क्या नहीं हो सकता।

सत्य के बिना जिन्दगी का कोई सिद्धान्त या नियम नहीं चल सकता। सत्य
की खोज करने वाले में अभय या निर्भयता का गुण होना ही चाहिए।

जैसे अहिंसा के सामने हिंसा शान्त हो जाती है, वैसे ही शुद्ध सत्य के आगे
असत्य शान्त हो जाना चाहिए। जो व्यक्ति पूर्ण सत्यमय होता है, उसके लिए निराशा
जैसी कोई चीज़ नहीं।

अगर हमारे जीवन में सचाई है, जो उसका असर अपने आप लोगों पर
पड़ेगा।

दुनियाँ में सबसे बड़ी शक्ति है लोकमत और वह सत्य और अहिंसा से पैदा
हो सकती है। बहुमत या तलवार के जोर से मिली हुई ताकत सच्ची ताकत नहीं है।

दर असल सचाई ही सच्ची ताकत है। सत्य और अहिंसा के बीच चुनाव
करना पड़े तो मैं अहिंसा को छोड़कर सत्य रखने में आगा—पीछा नहीं करूंगा। अगर
हमारे जीवन में सचाई है, तो उसका असर अपने आप लोगों पर पड़ेगा।

जिस काम को आप सच मानते हैं वही करें। बाद में जगत् भी उसको सच
ही कहेगा। सत्य के लिए कुछ भी गुप्त नहीं है।

सत्य ही ईश्वर है। सत्य सर्वदा स्वावलम्बी होता है और बल तो उसके
स्वभाव में ही होता है। सत्य में प्रेम मिलता है, मृदुता मिलती है।

सत्य कहना और करना मेरा स्वभाव हो गया है। पृथ्वी सत्य पर टिकी हुई
है। मेरा यह विश्वास दिन—दिन बढ़ता जाता है कि सृष्टि में एक मात्र सत्य की ही
सत्ता है और उसके सिवा दूसरा कोई नहीं है। सत्य एक विशाल वृक्ष है। उसकी
ज्यों—ज्यों सेवा की जाती है, त्यों—त्यों उसमें फल आते हुए दिखाई देते हैं।

अहिंसा को जितना मैं पहचान सका हूँ उसकी बनिस्बत सत्य को अधिक
पहचान सका हूँ, ऐसा मेरा ख्याल है। सत्य के पालन में ही शान्ति है। जहाँ सत्य नहीं
है, वहाँ शुद्ध ज्ञान नहीं हो सकता। सत्य की आराधना भक्ति है। यह मरकर जीने का
मत है। सत्य साध्य है, अहिंसा साधन है। सत्य ही एक धर्म की सच्ची प्रतिष्ठा है।

सत्य के सिवा और किसी चीज़ की हस्ती है ही नहीं। जो सत्य जानता है,
मन से वचन से और काया से सत्य का आचरण करता है, वह परमेश्वर को पहचानता
है। सत्य ही धर्म की सच्ची प्रतिष्ठा है। केवल सत्य ही मिथ्या की प्यास बुझाता है,
जैसे प्रेम क्रोध को शान्त करता है।

सत्य गोपनीयता से घृणा करता है। सत्य अगर सभी क्षेत्रों और सभी
व्यवहारों में नहीं चलता, तो फिर वह कोड़ी का नहीं है। सत्य न होता तो यह जगत्
भी न होता। कभी—कभी असत्य के व्यवहार से हानि होते न देख लोग कह बैठते
हैं—सत्य की विजय में देर होती है। पर मैं कह सकता हूँ कि देर भले हो, अधेर
नहीं होता। असत्य की विजय नहीं होती। अपने— आपको जान लेना सत्य को
पहचानना है। सत्य की कोई सीमा नहीं होती।

महात्मागांधी की दृष्टि में सत्याग्रह

सत्याग्रह या सविनय अवज्ञा के नियम इस प्रकार हैं:-

1. स्थानीय शिकायतें दूर करने के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है।
2. स्थानीय चेतना जाग्रत करने के लिए किसी खास बुराई के विरुद्ध या आत्मबलिदान के रूप में सत्याग्रह किया जा सकत है जैसा कि मैंने चम्पारन में किया था।
3. रचनात्मक कार्य की पूर्ति के लिए वह सन् 1941 की तरह भी किया जा सकता है। हालांकि वह सत्याग्रह हमारी आजादी की लड़ाई का एक अंग था, परन्तु उसे भाषण स्वातन्त्र्य तक ही सीमित रखा गया था।

सत्याग्रही में सत्य का आग्रह—सत्य का बल होना चाहिए। सत्याग्रह सत्ता प्राप्त करने के लिए नहीं, सत्ता को शुद्ध करने और उसका सदुपयोग कराने के लिए होता है। सत्याग्रही सबका मित्र होता है, शत्रु किसी का नहीं होता। सफल सत्याग्रही की यह पहली शर्त है। साधन—भाव में बुद्धि के थक जाने पर अपने शरीर को त्याग देने का अन्तिम कदम उठाना सत्याग्रह का नियम है। सत्याग्रह की जड़ मनुष्य—स्वभाव पर विश्वास रखने में है। हार गए तो हार मानने में सत्याग्रही को शर्म न होनी चाहिए। शक्ति और अधिकार छीनने के लिए जो सत्याग्रह किया जाए, वह सत्याग्रह नहीं दुराग्रह है। सत्याग्रह एक ऐसी तलवार है जिसकी सब ओर धार है। उसे चाहो जैसे काम में लाया जा सकता है। मेरे लिए सत्याग्रह का नियम प्रेम का नियम, एक शाश्वत नियम है। सत्याग्रह का अर्थ लिया गया कि विरोधी को पीड़ा देकर नहीं, बल्कि स्वयं कष्ट उठाकर सत्य की रक्षा करना.. सत्याग्रह कभी व्यर्थ जाता ही नहीं। सर्वसाधारण का सत्याग्रह मुख्यतः सविनय अवज्ञा या सविनय प्रतिरोध मालूम पड़ता है। यह सविनय (सिविल) इस अर्थ में है कि यह अपराधमूलक (क्रिमिनल) नहीं है। एक पूर्ण सत्याग्रही को यदि पूर्णतः नहीं तो लगभग एक पूर्ण मनुष्य होना चाहिए। सत्याग्रह अर्थात् सत्य का आग्रह एक कस्ती है। जगत् में किसी राष्ट्र ने आज तक केवल सत्य का दावा करके स्वन्त्रता नहीं प्राप्त की है। सत्याग्रह की यही खूबी है कि वह खुद हमारे पास चला आता है— हमें उसे खोजने नहीं जाना पड़ता। यह गुण उसके सिद्धान्त में समाया हुआ है। सत्याग्रही हमेशा बलवान होता है, उसमें भीरता की गन्ध तक नहीं आती। निर्भयता के हिसाब से सत्याग्रह की नप्रता भी बढ़नी चाहिए। विवेक शून्य की निर्भयता उसे घमण्डी और उद्घण्ड बनाती है। गर्व और सत्याग्रही के बीच तो समुद्र लहराता है। सत्याग्रही के लिए विनय सबसे कठिन अंश है। सत्याग्रही के लिए अविनय होना दूध में जहर के समान है। सत्याग्रह तो बल—प्रयोग के सर्वथा विपरीत होता है। हिंसा के सम्पूर्ण त्याग में ही सत्याग्रह की कल्पना की गई है। यह याद रखना चाहिए कि सत्याग्रह अगर संसार की सबसे बड़ी ताकत है, तो इसके लिए दिल में क्रोध और दुर्भाव रखे बगैर अधिक से अधिक कष्ट सहन की क्षमता भी आवश्यक है। सत्याग्रह करने से पहले मनुष्य को बहुत—सी तैयारियाँ करनी पड़ती हैं जिन्हें समझकर ही आगे बढ़ना चाहिए।

मेरा विश्वास है कि सत्याग्रह विश्व—शक्ति बन जायेगा। मैंने बहुत प्रयोग के बाद जिन दो अस्त्रों को प्राप्त किया वे हैं सत्याग्रह और असहयोग।

अध्याय—३

परमात्मा परमेश्वर (शुद्ध जीव)

स्वभावतः प्राकृतिक रूप से जीव का स्वरूप अमूर्तिक, अभौतिक एवं ज्ञान विज्ञानमय है परन्तु संसार अवस्था में संसारी जीव पर्याय अपेक्षा मूर्तिक एवं राग—द्वेष गल से कलुषित परिलक्षित होता है। इस प्रकार के विपरीत वैभाविक परिणमन का कारण क्या है? इस प्रकार की जिज्ञासा मन में पैदा होना स्वभाविक है। इसका प्रत्युत्तर देते हुए पूज्यपाद स्वामी ने सिद्ध भक्ति में बताया है— “अस्त्यात्मानादिबद्धः” संसारी आत्मा—अनादिकाल से कर्म बन्धन से बच्ना है। अतः पौद्गलिक कर्म सम्बन्ध से संसारिक जीव पर्याय दृष्टि से मूर्तिक है। इस बात को स्पष्ट करने के लिए श्रीमद्वेवसेन स्वामी ने आलाप पद्धति में कहा है कि

जीवस्याप्यसदतयवहारेण मूर्त्स्वभावः ॥164॥

असद् भूत व्यवहार नय से पुद्गल से संश्लेषित सांसारिक जीव मूर्त्स्वभाव वाला है। इसलिए कुन्दकुन्द स्वामी ने प्रवचनसार में संसार का कारण बताते हुए निम्न प्रकार से कहा है—

तमा दु—ण्ठिथ कोई सहावसवट्ठदोति संसारे ।

संसारो पुण किरिया संसारमाणस्स दव्वस्स ॥120॥

“In this world, therefore is nothing as such-absolutely established in its nature, after all mundane existence is (only) an activity of the soul-substance which is moving (in four grades of existence).”

वास्तव में जीव द्रव्यत्व से अवस्थित होने पर भी पर्यायों से अव्यवस्थित है, इससे यह प्रतीत होता है कि संसार में कोई भी (वस्तु) स्वभाव से अवस्थित नहीं है। (अर्थात् किसी का स्वभाव केवल अविचल एक रूप रहना नहीं है) और यहाँ (इस संसार में) जो अनवस्थितता है उसमें संसार ही हेतु है क्योंकि उसके (संसार के) मनुष्यादि—पर्यायात्मकपना है, कारण कि वह संसार रूप से वैसा (अनवस्थित) है। (अर्थात् संसार का स्वरूप ही ऐसा है) अब परिणमन करते हुए द्रव्य का जो पूर्व दशा का परित्याग तथा उत्तर दशा का ग्रहण रूप क्रिया नामक परिणाम है, वही संसार का स्वरूप है।

द्रव्य अपेक्षा स्वभाव एवं जाति अपेक्षा जीव समान होते हुए भी संसारिक जीव में जो विभिन्न विचित्रता परिलक्षित होती है उसका कारण बताते हुए कलिकाल सर्वज्ञ महाप्राज्ञ वीरसेन स्वामी ने ध्वला में बताया है—

“ए च कारणेणविणा कज्जाणमुप्ती अथिथ ।..... ततो कज्जमेत्ताणि ग्रेव कम्माणि वि अर्थितिणिच्छयो कायव्यो । जदि एवं तो भमर—महुवर.... कण्वादि सणिणदेहि वि णामकम्मेहि होदव्वभिदि । ए एस दोसो इच्छिज्जमाणादो ।”

कारण के बिना तो कार्य की उत्पत्ति होती नहीं है, इसलिए जितने (पृथ्वी, अप, तेजादि) कार्य हैं, उतने उनके कारण स्वरूप कर्म भी हैं, ऐसा निश्चय कर लेना चाहिए।

प्रश्न— यदि ऐसा है तो भ्रमर—मधुकर कदम्बादि नामों वाले भी नामकर्म होने चाहिए?

उत्तर— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि यह बात तो इष्ट है।

इसी कर्म सिद्धान्त को राजवार्तिक में तार्किक शिरोमणी अकलंक देव स्वामी निम्न प्रकार बतलाते हैं।

**लोके हरिशार्दूलवृकभुजगादयो निसर्गतः क्रौर्य
शौर्याहारादिसंप्रतिपत्तौ वर्तन्ते इत्युच्यन्ते न चासावाकस्मिकी कर्मनिमित्तत्वात्।**

लोक में भी शेर, भेड़िया, चीता, साँप आदि में शूरता—क्रूरता आदि परोपदेश के बिना होने से यद्यपि नैसर्गिक कहलाते हैं, परन्तु वे आकस्मिक नहीं हैं, क्योंकि कर्म उदय के निमित्त से उत्पन्न होते हैं।

उपरोक्त सिद्धान्त एवं दृष्टान्तों से सिद्ध होता है कि कर्म के निमित्त को प्राप्त करके यह जीव अनेक वैभाविक परिणामों को प्राप्त होकर नर नरकादि गतियों में विभिन्न दुःखों को भोगता है।

कम्मई दिद्ध-घण चिक्कणई गरुवई वज्ज समाई।

णाण—वियक्खणु जीवडउ उप्पहि पाडहिं ताई॥ १८

अनन्त ज्ञान वीर्यादि गुणों से युक्ति भगवान् आत्मा को कुपथ में पटकने वाला कर्म अत्यन्त बलवान् घनस्वरूप, दूसरों के द्वारा (जीव), सहज से नष्ट नहीं होने वाला अत्यन्त चिकने एवं वज्र के समान कठोर एवं भारी होने से अभेद्य एवं अच्छेद्य है। आचार्यप्रवर भट्टारकलंकदेव स्वामी संसार का मूल कारण बताते हुए 'राजवार्तिक' में बताते हैं कि—

तत्त्वात्मनोऽस्वतन्त्रीकरणे मूलकारणम्।

वह (कर्म आत्मा) को परतन्त्र करने में मूल कारण है।

आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने इष्टोपदेश में भी कहा है।

मोहने संवृतं ज्ञानं स्वभाव लभते न हि।

मत्तः पुमान्पदार्थानां यथा मदनकोद्रवैः॥ १७

जिस प्रकार नशीले कोदों के सेवन से जीव मदमत्त होकर हिताहित विवेक से रहित हो जाता है, उसी प्रकार मोह कर्मरूपी मद्य से पराभूत होकर—आच्छादित होकर स्वाभाविक अनन्त ज्ञान स्वरूप आत्मा अपने स्वशुद्ध स्वरूप को प्राप्त नहीं कर पाता है—जान नहीं पाता है।

अनादि काल से अनन्त ज्ञानादि सम्पन्न यह परमात्मा द्रव्य कर्म से पराभूत होकर संसार में दर—दर भिखारी होकर परिप्रेषण कर रहा है। वस्तुनिष्ठ दृष्टि से देखने पर जीव में अनन्त शक्ति होते हुए भी कर्म परवशतः अनन्त शक्ति, व्यक्त रूप में नहीं है परन्तु अव्यक्त होने के कारण केवल सम्भावना रूप में, सुप्तावस्था में, जीव

में अवरिष्ट है इसलिए पर्यायनिष्ठ दृष्टि से देखने एवं विचार करने पर अनादि काल से कर्म की परतंत्रता से संसारी जीव की शक्ति बहुत ही क्षीण है एवं कर्म की शक्ति बहुत ही दृढ़ है। इसलिए जीव अनादि काल से संसार में परिप्रेषण कर रहा है, संसार अवस्था में जीव एवं कर्म का द्वन्द्व युद्ध चलता है।

"कर्थवि वलिओ जीवो कर्थवि कम्माई हुंति वलियाइ।

जीवस्स य कम्मस य पुब्विरुद्धाई वद्दराई॥ १९ (उद्धृत इष्टोपदेश की टीका)

कभी जीव बलवान् हो जाता है और कभी कर्म बलवान् हो जाता है। इसी प्रकार जीव एवं कर्म का पूर्व कालीन अनादि से विरुद्ध एवं वैरत्व चल रहा है।

"णाणा जीवा णाणा कम्मं णाणाविहं हवे लद्धी।

अनेक जीव हैं, अनेक प्रकार के कर्म हैं और अनेक कर्म के अनुसार अनेक लक्षि हैं।

कम्मेण विणा उदयं जीवस्स ण विज्जदे उवसमं वा।

खइयं खओवसमियं तम्हा भावं तु कम्मकदं॥ ५८

कर्म के बिना जीव को, उदय—उपशम तथा क्षयक्षयोपशम नहीं होते (अर्थात् द्रव्य कर्म के बिना जीव को औदायिकादि चार भाव नहीं होते) इसलिए क्षायिक क्षयोपशमिक, औदायिक या औपशमिक भावों को कर्मकृत कहा जाता है।

संसार (ब्रह्माण्ड) के अनन्तानन्त जीवों के विभिन्न शरीर, इन्द्रियाँ, मन, प्राण, आयु, जन्म, मरण, सुख—दुःख, राग—द्वेष आदि के कारण भूत तथा एकन्द्रिय से लेकर पञ्चन्द्रिय मनुष्य, देव स्वरूप गति / शरीर सम्बन्धी क्रमविकास के साथ—साथ पुण्यानुबन्धी सातिशयपुण्य के फल स्वरूप तीर्थकरत्व को प्राप्त कर के मोक्ष प्राप्त करने में निमित्त सहायक स्वरूप कर्म का साप्राज्य तीनों लोक तीनों काल में है। यथा

पुण्य के फल

पुनात्यात्मानं पूर्यतेऽनेनेति वा पुण्यम्।

जो आत्मा को पवित्र करता है या जिससे आत्मा पवित्र होता है वह पुण्य है। ध्वल सिद्धान्त शास्त्र में वीरसेन स्वामी ने कहा है—

शंका—कानि पुण्य फलानी ? पुण्य के फल कौन—२ से है?

स.—तित्थ्यर—गणहर—रिसि—चक्रवट्ठि—बलदेव—वासुदेव—सूर—विजाहररिद्वीओ।

तीर्थकर, गणधर, ऋषि, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, देव और विद्याधरों की ऋद्धियाँ पुण्य के फल हैं।

पाप के फल

"पाति रक्षतिआत्मानं शुभादिति पापम्॥ सवार्थसिद्धिषठोऽध्याय

जो आत्मा को शुभ से हटाता है वह पाप है।

शंका—कानि पाप फलानि ? पाप के फल कौन—२ से है?

समाधान—णिरय—तिरय—कुमाणुसजोणीसु—

जाइ—जरा—मरण—वाहि—वेयणा—दालिदादीणी।

नारक, तिर्यच और कुमानुष की योनियों में जन्म, जरा, मरण, व्याधि, वेदना और दारिद्र्या आदि की प्राप्ति पाप के फल हैं। (धवला पु. 1, पृ. 105)

परमात्म बनने का उपाय

समस्त कर्मों से समग्रता से शाश्वतिक रूप से मुक्त होने का उपाय— भले जीव अपने स्वशुद्धस्वरूप से विपरीत भाव एवं व्यवहार के कारण कर्मबन्ध से बन्धा हुआ अनादि काल से चतुर्गति रूपी संसार में 84,00000 योनियों में परिव्रमण करता हुआ अनन्त शारीरिक—मानसिक—आध्यात्मिक दुःखों को सहन कर रहा है किन्तु यदि जीव योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव के आलम्बन से स्वशुद्ध स्वरूप अहिंसा, समता, वीतरागता आदि की साधना करेगा तो वह समस्त कर्म बन्धनों से मुक्त होकर सच्चिदानन्द स्वरूप मुक्त परमात्मा बन जायेगा। यथा—

शुभाशुभे पुण्यपापे सुखदुःखे च षट् त्रयम् ।

हितमाद्यमनुष्ठेयं शेष त्रयमथाहितम् ॥239

शुभ और अशुभ, पुण्य और पाप तथा सुख और दुःख, इस प्रकार यह छह हुए। इन छहों के तीन युगलों में से आदि के तीन-शुभ, पुण्य और सुख-आत्मा के लिए हितकारक होने से आचरण के योग्य हैं तथा शेष तीन अशुभ, पाप और दुःख अहित कारक होने से छोड़ने के योग्य हैं। अभिप्राय यह है कि जिन पूजनादि रूप शुभ क्रियाओं के द्वारा पुण्य कर्म का बन्ध होता है और उस पुण्य कर्म के उदय में प्राप्त होने पर उससे सुख की प्राप्ति होती है। इस के विपरीत हिंसा एवं असत्यसंभाषणादिरूप अशुभ क्रियाओं के द्वारा पाप का बन्ध होता है और उस पाप कर्म के उदय में प्राप्त होने पर उससे दुःख की प्राप्ति होती है। इसलिए उक्त छह में से शुभ, पुण्य और सुख ये तीन उपादेय तथा अशुभ, पाप और दुख ये तीन हेय हैं।

तत्राप्याद्यं परित्याज्यं शेषौ न स्तः स्वतः स्वयम् ।

शुभं च शुद्धे व्यक्तवत्वान्ते प्राप्नोति परमं पदम् ॥ 240

पूर्व श्लोक में जिन तीन को-शुभ, पुण्य और सुख को- हितकारक बतलाया है उनमें भी प्रथम का (शुभ का) परित्याग करना चाहिए। ऐसा करने से शेष रहे पुण्य और सुख ये दोनों स्वयं ही नहीं रहेंगे, इस प्रकार शुभ को छोड़कर और शुद्ध स्वभाव में स्थित होकर जीव अन्त में उत्कृष्ट पद (मोक्ष)को प्राप्त हो जाता है।

अस्मिन् नितान्त - वैराग्य व्यतिषंगतरंगिते ।

जायते देहिनां सौख्यं, स्वसंवेद्यमतीन्द्रियम् ॥ 17 पृ. 590

अत्यल्प वैराग्य भाव से परिपूर्ण धर्मध्यान में जब आत्मा एकाग्र हो जाता है तब जीव को इंद्रियों से अगम्य आत्मिक सुख का अनुभव होता है। कहा है कि— “विषयों में अनासक्ति, आरोग्य, अनिष्टुरता, कोमलता, करुणा, शुभगंध तथा मूर्त्र और पुरिष की अल्पता हो जाती है। शरीर की कांति, सुख की प्रसन्नता, स्वर में सौम्यता इत्यादि विशेषतायें योगी की प्रवृत्ति के प्रारंभिक फल का चिन्ह समझना चाहिए।

जब ध्याता धर्मध्यान के अध्यम से शुक्ल ध्यान को ध्याता हुआ उत्तरतर अध्यात्मिक सोपानों स्वरूप गुण श्रेणी में आरोहण करता है। तब उसकी ध्यान रूप अग्नि अधिक से अधिक प्रज्ज्वलित होती जाती है। उस ध्यान रूप अग्नि के माध्यम से शरीर-मन एवं आत्मा में भी परिवर्तन होता रहता है। उस ध्यानाग्नि से मानसिक रोग स्वरूप राग-द्वेष, संकल्प-विकल्प आदि रोग जितने-जितने अंश में नष्ट होते जाते हैं उतने-उतने अंश में आत्मा की विशुद्धता बढ़ती है। जिससे उत्तरोत्तर पाप कर्म क्षीण हो जाता है। इससे शरीर में भी एक रासायनिक परिवर्तन होता है। इस जैविक-रासायनिक परिवर्तन से शरीर में दूषित धातु, उपधातु, मल क्षीण होते जाते हैं, जिसके कारण शरीर उत्तरोत्तर शुद्ध से शुद्धतर हो जाता है। शरीर के दूषित मलांश जितने-जितने अंश में नष्ट हो जाते हैं एवं मानसिक, आध्यात्मिक विशुद्धियाँ बढ़ती हैं, उतने-उतने अंश में शरीराश्रित कृमि, सूक्ष्म जीव, निगोदिया जीव, रोगाणु आदि शरीर से विलय होते जाते हैं। गुण श्रेणी के अनुसार जब भाव की विशुद्धता असंख्यात गुणी बढ़ती है तब शरीर, मन, आत्मा के आश्रित बाह्य अशुद्ध तत्त्व (मल, सप्तधातु, निगोदिया जीव, कर्म आदि) भी असंख्यात गुनित रूप से जीव से पृथक् होते जाते हैं। जब ध्यान की परम सीमा पर ध्याता पहुँच जाता है तब जीव को अनेक प्रकार के दुःख देने वाले चार धातियाँ कर्म सम्पूर्ण रूप से विध्वंस हो जाते हैं। इनके साथ-साथ शरीर स्थित धातु-उपधातु-मल, निगोदिया जीव शरीर से पूर्ण रूप से पृथक् हो जाते हैं। जिससे उस ध्यानी का शरीर शुद्ध स्फटिक के समान हो जाता है। इस अवस्था को जीवनमुक्त केवली-अरिहंत आदि अनेक नामों से अभिहित किया जाता है। श्री हेमचंद्राचार्य योग शास्त्र में शुक्ल ध्यान का अलौकिक फल बताते हुए कहते हैं—

ज्ञानावरणीयं दृष्ट्यावरणीयं च मोहनीयं च ।

विलयं प्रयान्ति सहसा सहान्तरायेण कर्माणि ॥ 22 योगशास्त्र पृ.397

शुक्लध्यान के प्रभाव से अंतराय कर्म सहित ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और मोहनीय ये चारों कर्म एक साथ विनष्ट हो जाते हैं।

संप्राप्य केवलज्ञान-दर्शने दुर्लभे ततो योगी ।

जानाति पश्यन्ति तथा लोकलोकं यथावस्थं ॥ 23

धाति कर्मों का क्षय होने पर ध्यानन्तर योगी दुर्लभ केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त करके यथावस्थित रूप से समस्त लोक और अलोक को जानने तथा देखने लगता है।

देवस्तदा स भगवान् सर्वज्ञः सर्वदर्श्यन्तगुणः ।

विदहरत्यवनीवल्य सुरासुरनरेरगैः प्रणतः ॥ 24

वाग्योत्सन्धाखिवलान्यपि, विबोधयाति भव्यजन्तुकुमुदानि ।
 उन्मूलयति क्षणतो, मिथ्यात्वं द्रव्य-भावगतम् ॥ 25
 तत्रामग्रहमात्राद् अनादि-संसार-संभवं दुखम् ।
 भव्यात्मनामशेषं परिक्षयं याति सहसैव ॥ 26
 अपि कोटीशत संख्याः समुपासितमागताः सुरनराद्याः ।
 क्षेत्रे योजनमात्रे भान्ति तदाऽस्य प्रभावेण ॥ 27
 त्रिदिवौकसा मनुष्याः तिर्यश्चोऽन्येऽप्यमुष्य बुध्यन्ते ।
 निजनिजभाषानुगतं, वचन धर्माविबोधकरम् ॥ 28
 आयोजनशतमुग्राः रोग शाम्यन्ति तत्प्रभावेण ।
 उदयिनि शीतमरीचाविव तापरुजः क्षितेः परितः ॥ 29
 मारीति दुर्भिक्षाति वृष्ट्यनावृष्टिडामर-वैराणि ।
 न भवन्त्यस्मिन् विहरति, सहस्रश्मौ तमांसीव ॥ 30

केवल ज्ञान होने के बाद सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनंत गुणों के निधान देवाधिदेव अरहं भगवान् अनेक सुरासुर और नागकुमार आदि से वंदनीय होकर पृथ्वी मंडल पर विचरते हैं और विचरते हुए भगवान् अपनी वाणी रूप चंद्र ज्योत्सना (चांदी) द्वारा भव्यजीव रूपी चंद्रविकासी कमल (कुमुद) को प्रतिबोधित करते हैं और द्रव्य मिथ्यात्व और भाव मिथ्यात्व रूपी अंधकार को क्षणभर में समूलतः नष्ट कर देते हैं। उनका नाम उच्चारण करने मात्र से अनादि काल से संसार में उत्पन्न होने वाले भव्य जीवों के समग्र दुःख सदा के लिए नष्ट हो जाते हैं। तथा उन भगवान् की उपासना के लिए आये हुए शतकोटी देव, मनुष्य और तिर्यश्च आदि एक योजन मात्र क्षेत्र स्थान में ही समा जाते हैं। उनके धर्म-बोधक वचनों को देख मनुष्य, पशु तथा अन्य जीव अपनी भाषा में समझ लेते हैं। वे ऐसा समझते हैं कि भगवान् हमारी ही भाषा में बोल रहे हैं। भगवान् जिस क्षेत्र में विचरते हैं उस स्थल से चारों ओर सौ-सौ योजन प्रमाण क्षेत्र में उनके प्रभाव से महारोग वैसे ही शांत हो जाते हैं, जैसे सूर्य के उदय होते ही अंधकार नहीं रहता है वैसे ही भगवान् जहाँ विचरते हैं वहाँ महामारी, दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, युद्ध, वैर आदि उपद्रव नहीं रहते।

शारीरिक स्वास्थ, चमत्कारपूर्ण रीढ़ि-सिद्धि की उपलब्धियाँ वस्तुतः ध्यान का यथार्थ फल नहीं है। किंतु अनुषांगिक फल है। ध्यान का यथार्थ फल-मानसिक शांति, विशुद्ध-कर्मस्त्रव का निरोध, कर्म की निर्जरा, आध्यात्मिक शक्तियों का प्रगट होना, अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान की प्राप्ति, केवल ज्ञान की उपलब्धि, संपूर्ण कर्मों का क्षय तथा सिद्धत्व की उपलब्धि है। जब ध्याता कुध्यान को छोड़कर

कुध्यान से भावित होता हुआ राग-द्रेष से उपरत होकर साम्यावस्था को प्राप्त करता है वे निश्चल शुक्ल ध्यान को ध्याता है। तब उसके ध्यान रूपी अग्नि से धातिया कर्म जब भस्मसात् हो जाते हैं तब अनंत चतुःष्टय को, जीवनमुक्त केवली अर्थात् अरहं अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। अंत में संपूर्ण कर्मों को नष्ट करते हैं तब वे शुद्ध-बुद्ध-निरज्जन अविनाशी अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। यह सिद्धावस्था प्राप्त करना ही ध्यान का फल है। सिद्धावस्था में जो अनंत आध्यात्मिक गुणों की उपलब्धि होती है उसका अर्णन ध्यान की अनुपम कृति ज्ञानार्थव में निम्न प्रकार है।

निद्रातन्द्राभयभ्रान्ति रागद्वेषार्तिसंशयैः ।

शोकमोह जराजन्म मरणाद्यैशः विच्युतः ॥ 66

क्षुत्तदश्रममदोन्मादमूर्च्छामात्सर्य वर्जितः ।

वृद्धिहासव्यपेतात्मा कल्पनातीत वैभवः ॥ 67

निष्कलः करणातीतो निर्विकल्पो निरज्जनः ।

अनन्तवीर्यतापन्नो नित्यानन्दाभिनन्दितः ॥ 68

परमेष्ठी परंजयोतिः परिपूर्णः सनातनः ।

संसारसागरोतीर्णः कृतकृत्योचलस्थितिः ॥ 69

सुतृपः सर्वदैवास्ते देवस्त्रैलोक्यमूर्धनि ।

नोपमानं सुखादीनां विद्यते परमेष्ठि नः ॥ 70

चरस्थिरार्थसंकीर्णं मृग्यमाणं जगत्रये ।

उपमानोप मेयत्वं मन्ये स्वस्यैव स स्वयम् ॥ 71

निद्रा, आलस्य, भय, भ्रम, रोग, द्रेष, पीडा, संशय, शोक, मोह, जरा, जन्म और मरण आदि से रहित क्षुधा, तुष्णा, परिश्रम, मद, उन्माद (विषयासक्ति), मूर्च्छा और ईर्ष्याभाव से विहीन वृद्धि-हानि से रहित स्वरूप से संयुक्त अकल्पनीय (अचिन्त्य) वैभव से परिपूर्ण, शरीर से रहित, इंद्रियों से अतीत, विकल्पों से निष्क्रान्त, कलंक से मुक्त, अनंत वीर्य स्वरूप को प्राप्त, शाश्वतिक आनंद से प्रशासित, परम पद में स्थित, उत्कृष्ट ज्ञान ज्योति से सहित, परिपूर्ण, सनातन, संसार रूप समुद्र के पार को प्राप्त, कृतकृत्य और स्थिति से संयुक्त वह सिद्ध परमात्मा अतिशय संतुष्ट होकर मदा तीन लोक के शिखर पर (सिद्धालय) स्थित रहते हैं। उस सिद्ध परमेष्ठि के अनंत मुखादि गुणों के लिए अस्थिर और स्थिर पदार्थों से परिपूर्ण लोक में यदि किसी उपमान को खोजा जाय तो उपलब्ध नहीं हो सकता है। अर्थात् उनके अनंत ज्ञानादि की किसी अन्य के साथ तुलना नहीं की जा सकती है। वह स्वयं ही अपने उपमान और उपमेय स्वरूप को प्राप्त है ऐसा मैं मानता हूँ। सिद्ध परमात्मा के वे गुण उसी के समान हैं; अन्य किसी के भी समान नहीं है।

यदेवमनुजाः सर्वे सौख्यमक्षार्थं संभवम् ।

निर्विशान्ति निराबाधं सर्वक्षप्रीणनक्षमम् ॥ 61

सर्वेणातीतकालेन यच्चा भुक्तं महर्द्धिकम् ।

भाविनो यच्च भोक्षयन्ते स्वादिष्टं स्वान्तरञ्जकम् ॥ 62

अनन्तगुणितं तस्मादत्यक्षं स्वस्वभावजम् ।

एकस्मिन् समये भुइके तत्सुखं परमेश्वरः ॥ 63 पृ.694

सब देव और मनुष्य बाधा से रहित एवं सभी इंद्रियों को प्रसन्न करने वाले जिस इंद्रिय विषय जनित सुख को वर्तमान में भोग रहे हैं और समस्त अतीत काल में उन्होंने जिस महती ऋद्धि युक्त सुख को भोगा है तथा भविष्य में वे मन को अनुरंजित करने वाले जिस स्वादिष्ट सुख को भोगें उसके अनंत गुण अतीन्द्रिय व स्वाभाविक उस सुख को वह सिद्ध परमात्मा एक समय में भोगते हैं।

त्रैलोक्यतिलकीभूतं निःशेषविषयच्युतम् ।

निर्द्वन्द्व नित्यमत्यक्षं स्वादिष्टं स्वस्वभावजम् ॥ 77

निरौपम्यमविच्छिन्नं स देवः परमेश्वरः ।

तत्रैवास्ते स्थिरीभूतः पिवन् शाश्वत् सुखामृतम् ॥ 78

वह सिद्ध परमात्मा तीनों लोकों में श्रेष्ठभूत समस्त विषयों के संबंध से रहित, निराकुल, अविनश्वर इंद्रियों की अपेक्षा से रहित, सुस्वाद, आत्म स्वभाव से उत्पन्न (स्वाधीन) असाधारण और व्यवधान से वर्जित ऐसे सुख स्वरूप अमृत का सदा पान करता हुआ निरन्तर अनन्त सुख का अनुभव करता हुआ वहीं पर स्थिर होकर रहता है उसका फिर संसार में पुनरागमन नहीं होता है।

प्रशान्तमनसं ह्वेनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।

उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥ 27 गीता पृ.76

जिसका मन भली-भाँति शांत हुआ है, जिसके विकार शांत हो गये हैं। ऐसा ब्रह्मय हुआ निष्पाप योगी अवश्य उत्तम सुख प्राप्त करता है।

युज्जत्रेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।

सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥ 28

आत्मा के साथ निरंतर अनुसंधान करते हुए पाप रहित हुआ यह योगी सरलता से ब्रह्म प्राप्ति रूप अनंत सुख का अनुभव करता है।

सामग्री विशेष विश्लेशिताखिलावरणमतीन्द्रियमशेषतो मुख्यम् ॥ प्र.रत्न मा.

सामग्री की विशेषता से दूर हो गये हैं समस्त आवरण जिसके ऐसे अतिन्द्रिय और पूर्णतया विशद ज्ञान को मुख्य प्रत्यक्ष (केवलज्ञान) कहते हैं।

एश्वर्यमप्रतिहतं सहजो विरागस्तृप्तिर्निर्सर्गजनिता वशितेन्द्रियेषु ।

अत्यान्तिकं सुखमनावरणा च शक्तिर्जानं च सर्वविषयं भवस्तथैवा ॥

तथा सन्यासिओं के गुरु अवधूत के भी वचन उसके विषय में इस प्रकार हैं।

“हे भगवन् ! आपका ऐश्वर्य अप्रतिहत (अखंड) है। वैराग्य स्वाभाविक

। तुम नैर्गिक है। इंद्रियों में वशिता है अर्थात् आप जितेंद्रिय हैं। आपका सुख आयतिक अर्थात् चरम सीमा को प्राप्त है। शक्ति आवरण रहित है और सर्व विषयों को साक्षात् करने वाला ज्ञान भी आपका ही है।

केलशकर्मविपाकाशयैरपरमृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः । 34 पा.यो.दर्शन

अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष तथा अभिनिवेशरूप कलशों से शुभाशुभ इतियों से जन्य पुण्य-पाप रूप कर्मों से, पुण्य-पाप के फल - जाति, आयु तथा भोग अतिनिधि सुख-दुःख रूप विपाक से और सुख-दुःखात्मक भोग से जन्य विविध जानाओं से अस्पृष्ट; जीवरूप अन्य पुरुषों से विशिष्ट, चेतन ईश्वर है।

सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च । 49

पुरुष (आत्मा) एवं प्रकृति (कर्म) के भेदज्ञान से सम्पन्न योगी को सम्पूर्ण पदार्थों के अधिष्ठातृत्व का (अर्थात् सम्पूर्ण पदार्थों को नियंत्रित करने के सामर्थ्य का) और समस्त पदार्थों के ज्ञातृत्व का (अर्थात् सम्पूर्ण पदार्थों को ठीक-ठीक जानने की शक्ति का) लाभ होता है।

तद्वैराग्यदपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ॥ 50

विवेक ख्याति की निष्ठा द्वारा, विवेक ख्यातिजन्य सिद्धिविषयक परम वैराग्य की प्राप्ति हो जाने से पर-वैराग्य जन्य असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा, रागादि दोषों के मूल कारण अविद्या के समाप्त हो जाने पर योगी पुरुष को कैवल्य भी प्राप्त हो जाता है।

सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम् ॥ 55

बुद्धि एवं पुरुष की शुद्धि के समान रूप से हो जाने पर मोक्ष हो जाता है।

जिधच्छापरमारोगा, संखारा परमा दुखा ।

एवं ज्वाव यथाभूतं निव्वानं परमं सुखं ॥ धम्मपद भूख सबसे बड़ा रोग है, संस्कार सबसे बड़ा दुःख है, इसे यथार्थ रूपसे जानकर निर्वाण सब से बड़ा सुख है।

अनन्त दर्शन स्वरूपोऽहम् । - मैं अनन्त दर्शन स्वरूप हूँ।

अनन्त सुख स्वरूपोऽहम् । - मैं अनन्त सुख स्वरूप हूँ।

अनन्तशक्ति स्वरूपोऽहम् । - मैं अनन्त शक्ति स्वरूप हूँ।

गुबात्मस्वरूपोऽहम् । - मैं शुद्ध आत्म स्वरूप हूँ।

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान् विषवत्यज ।

क्षमार्ज्जवदयातोषं सत्यं पियूषवद् भज ॥ 102अ. गीता

अष्टावक्र ने कहा है “हे प्रिये ! यदि तू मुक्ति चाहता है तो विषयों को विष समान छोड़ दे और क्षमा, आर्जव (सरलता), दया, संतोष और सत्य को अमृत समान सेवन कर।”

न पृथिवी न जलं नाग्निं वायुर्दीर्घं वा भवान् ॥

एषां साक्षिणमात्मामं चिद्रूपं विद्धि मुक्तये ॥ 03

“तून पृथिवी है, न जल है, न अग्नि है, न वायु है, न आकाश है। मुक्ति के लिए अपने को इन सबका साक्षी चैतन्य रूप जान।” (यही आत्मज्ञान है जो मुक्ति का कारण है।

यदि देहं पृथकृत्य चिन्ति विश्राम्य तिष्ठसि ।

अधुनैव सुखी शान्तः बन्धनमुक्तो भविष्यसि ॥ 04

यदि तू देह को अपने से अलग कर और चैतन्य में विश्राम कर स्थित है तो अभी ही सुखी, शांत और बंध मुक्त हो जायेगा।

न त्वं विप्रादिको वर्णो नाश्रमी नाक्षणोचरः ।

असङ्गोऽसि निराकारो विश्वसाक्षी सुखी भव ॥ 05

“तू ब्राह्मण आदि वर्ण नहीं है और न तू किसी आश्रम वाला है। न आँख आदि इंद्रियों का विषय है ऐसा जानकर सुखी हो।”

धर्माद्धर्मो सुखं दुःखं मानसानि न ते विभो ।

न कर्ताऽसि न भोक्ताऽसि मुक्त एवासि सर्वदा ॥ 06

“हे विभो ! (व्यापक) धर्म और अधर्म, सुख और दुःख मन के हैं। तेरे लिए नहीं है। न तू कर्ता है, न भोक्ता है। तू तो सर्वदा मुक्त ही है।”

एको दृष्टाऽसि सर्वस्य मुक्तप्रायोऽसि सर्वदा ।

अयमेव हि ते बन्धो दृष्टारं पश्यसीतरम् ॥ 07

तू एक सबका दृष्टा है और सदा सचमूच मुक्त है। तेरा बंधन तो यही है कि तू अपने को छोड़कर दूसरे को दृष्टा देखता है।

अहं कर्त्तेत्यहमान महाकृष्णाहि दंशितः ।

नाहं कर्त्तेति विश्वासामृतं पीत्वा सुखी भव ॥ 08

मैं कर्ता हूँ ऐसे अहंकार रूपी विशाल काले सर्प से दंशित हुआ तू ‘मैं कर्ता नहीं हूँ’ ऐसे विश्वास रूपी अमृत को पीकर सुखी हो।

एको विशुद्ध बोधव्याऽहमिति निश्चयवहिना ।

प्रज्वाल्याज्ञनगहनं वीतशोकः सुखी भव ॥ 09

मैं एक विशुद्ध बोध हूँ ऐसी निश्चय रूपी अग्नि से गहन अज्ञान को जलाकर तू शोक रहित हुआ सुखी हो।

यत्र विश्वमिदं भाति कल्पितं रजुसर्पवत् ।

आनन्दपरमानन्दः स बोधस्त्वं सुखं चर ॥ 10

जहाँ यह विश्व रसी में सर्प के समान कल्पित भासता है वही आनंद, परमानंद बोध है। अतः तू सुख पूर्वक विचर।

मुक्ताभिमानी मुक्तो ही बद्धो बद्धाभिमान्यपि ।

किंवदन्तीह सत्येयं यां मतिः सा गतिर्भवेत् ॥ 11

मुक्ति का अभिमानी मुक्त है और बद्ध का अभिमानी बद्ध है। यहाँ यह किंवदन्ती सत्य है कि जैसी मति होती है वैसी ही गति होती है।

आत्मा साक्षी विभुः पूर्ण एको मुक्तशिदक्रियः ।

असङ्गो निस्पृहः शान्तो भ्रमात्संसारवानिव ॥ 12

आत्मा साक्षी है, व्यापक है, पूर्ण है, एक है, मुक्त है, चैतन्य स्वरूप है, क्रिया रहित है, असंग है, निस्पृह (इच्छा रहित) है, शांत है, यह भ्रम से संसारी जैसा (बंधन ग्रस्त) भासता है।

कूटस्थं बोधमद्वैतमात्मानं परिभावयः ।

आभासोऽहं भ्रमं मुक्त्वा भावं बाह्यमथान्तरम् ॥ 13

मैं आभास रूप (अहंकारी जीव) हूँ, ऐसे भ्रम को एवं बाहर-भीतर के भाव को छोड़कर तू कुटस्थं (अचल-स्थिर) बोध रूप एवं अद्वैत आत्मा का विचार कर।

देहाभिमानपाशेन चिरं बद्धोऽसि पुत्रक ।

बोधोऽहं ज्ञानखड़ेन तन्निष्कृत्य सुखी भव ॥ 14

हे पुत्र ! तू बहुत काल से देहाभिमान के पाश से बंधा हुआ है, उसी पाश का ‘मैं बोध हूँ’, इसे ज्ञान की तलवार से काटकर तू सुखी हो।

निःसंगो निष्क्रियोऽसि त्वं स्वप्रकाशो निरञ्जनः ।

अयमेव हि ते बन्धः समाधिमनुतिष्ठिसि ॥ 15

तू असंग है, क्रिया रहित है, स्वयं प्रकाश है और निरञ्जन (निर्दोष) है। तेरा बंधन यही है कि तू (उसकी प्राप्ति के लिए) समाधी का अनुष्ठान करता है।

त्वया व्याप्तमिदं विश्वं त्वयि प्रोतं यथार्थतः ।

शुद्धबुद्धस्वरूपस्त्वं मा गमः क्षुद्रचित्तताम् ॥ 16

यह संसार तुझमें व्याप है, तुझीमें पिरोया है। यथार्थतः तू चैतन्य स्वरूप है। अतः क्षुद्र चित्त को मत प्राप्त हो।

निरपेक्षो निर्विकारो निर्भरः शीतलाशयः ।

अगाधबुद्धिरक्षुद्धो भव चिन्मात्रवासनः ॥ 17

तू निरपेक्ष (अपेक्षा रहित) है, निर्विकार है, स्व निर्भर है, शांति और मुक्ति का स्थान है, अगाध बुद्धि रूप है, क्षोभ शून्य है अतः चैतन्य मात्र में निष्ठा वाला हो।

साकारमनृतं विद्धि निराकारं तु निश्लम् ।

एतत्तत्वोपदेशन न पुनर्भवसम्भवः ॥ 18

साकार को मिथ्या जान, निराकार को निश्चल (स्थिर) जान। इस तत्व के अपेक्षा से संसार में पुनः उत्पत्ति नहीं होती।

अध्याय-4

सत्य के सार्वभौम स्वरूप

असतो मा सत् गमय, तमसो मा ज्योर्ति गमयः मृत्यु मा अमृतगमयः ।

सत्य की महिमा

सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः ।

येनाक्रमन्त्यृष्यो ह्यामकामा यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम् ॥

6 उपनि. पृ 222

सत्य ही विजयी होता है। झूठ नहीं क्योंकि वह देवयान नामक मार्ग सत्य से परिपूर्ण है। जिससे पूर्ण काम ऋषि लोग वहाँ गमन करते हैं जहाँ वह सत्य स्वरूप परमात्मा का उत्कृष्ट धाम है।

बृहच्च तद् दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत् सूक्ष्मतरं विभाति ।

दूरात् सुदूरे तदिहान्तिके च पश्यत्स्वैव निहितं गुहायाम् ॥7

वह परमात्मा महान् दिव्य और अचिन्त्य स्वरूप है तथा वह सूक्ष्म से भी अत्यन्त रूप में प्रकाशित होता है तथा वह दूर भी अत्यन्त दूर है। और इस शरीर में एक अति समीप भी है। यहाँ देखने वालों के भीतर ही उनके हृदय रूपी गुफा में स्थित है।

न चक्षुषा गृह्णते नापि वाचा नान्यदेवैस्तपसा कर्मणा वा ।

ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वं - स्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ॥8

वह परमात्मा न तो नेत्रों से, न वाणी से और न दूसरी इन्द्रियों से ही ग्रहण करने में आता है तथा तप से अथवा कर्मों से भी वह ग्रहण नहीं किया जा सकता। उस अव्यय रहित परमात्मा को तो विशुद्ध अन्तःकरण वाला साधक उस विशुद्ध अन्तःकरण से निरन्तर उसका ध्यान करता हुआ ही ज्ञान की निर्मलता से देख पाता है।

सद्द्रव्य लक्षणम् ॥२९

The differentia of substance or reality is Sat. isness or being.

(स्वतंत्रता के सूत्र पृ.32)

इस का लक्षण सत् है। यह विश्व शाश्वतिक है क्योंकि इस विश्व में स्थित समस्त द्रव्य भी शाश्वतिक हैं। आधुनिक विज्ञान में भी सिद्ध हो गया है कि ऊर्जा या मात्रा कभी भी नहीं होती है परन्तु परिवर्तन होकर अन्य रूप हो जाती है। विज्ञान में कहा भी है-

Matter and energy neither be Created nor be destroyed. Each completely changed into another form or into one another.

अहो निरञ्जनः शान्तो बोधोऽहं प्रकृतेः परः ।

एतावन्तमहं कालं मोहेनैव विदं वितः ॥ 01

राजा जनक को अष्टावक्र का उपदेश सुनते ही आत्म ज्ञान हो गया। वे कहते हैं- “मैं निरञ्जन (निर्दोष) हूँ, शान्त हूँ, बोध हूँ, प्रकृति से परे हूँ आश्चर्य है कि मैं इतने काल तक मोह द्वारा ठगा गया हूँ।

अहीं अहं नमो महां विनाशी यस्य नास्ति मे ।

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं जगन्नाशऽपि तिष्ठतः ॥ 11

मैं आश्चर्यमय हूँ, मुझको नमस्कार है। ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त जगत् के नाश होने पर भी मेरा नाश नहीं है। (मैं नित्य हूँ)

द्वैतमूलमहो दुःखं नान्यत्स्यास्ति भेषजम् ।

दृश्यमेतन्मृषा सर्वमेकोऽहं चिद्रसोऽमलः ॥ 16

अहो ! दुःख का मूल द्वैत है, उसकी औषधि अन्य कोई नहीं यह सब दृश्य मिथ्या है। मैं एक शुद्ध चैतन्य रस हूँ।

बोधमात्रोऽहमज्ञानदुपाधिः कल्पितो मया ।

एवं विमृश्यतो नित्यं निर्विकल्पे स्थितिर्मम ॥ 17

मैं बोध मात्र हूँ किंतु मेरे द्वारा अज्ञान से उपाधि की कल्पना की गई है। इस प्रकार नित्य विचार करते हुए मैं निर्विकल्प में स्थित हूँ।

अहो मयि स्थितं विश्वं वस्तुतो न मयि स्थितम् ।

न मे बन्धोऽस्ति मोक्षो वा भ्रान्तिः शान्ताः निराश्रया ॥ 18

आश्चर्य है ! मुझमें स्थित हुआ विश्व वास्तव में मुझमें स्थित नहीं है, इसलिए न मेरा बंध है, न मोक्ष है। आश्रय रहित होकर मेरी भ्रान्ति शांत हो गई है।

शरीरं स्वर्गनरकौ बन्धमोक्षी भयं तथा ।

कल्पनामात्रमेवैतत्किमे कार्यं चिदात्मनः ॥ 20

यह शरीर स्वर्ग-नरक, बंध-मोक्ष व भय कल्पना मात्र ही है, उससे मुझ चैतन्य आत्मा का क्या प्रयोजन।

विज्ञान का मूलभूत सिद्धान्त है कि किसी नई वस्तु की सृष्टि नहीं होती है एवं कोई वस्तु सम्पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होती है। केवल उसके आकार और पर्याय में परिवर्तन होता है।

दवियदि गच्छति ताई ताई सद्भाव पञ्चयाइ जं ।

दवियं तं मण्णां ते अणण्ण भूदं तु सुत्तादो ॥१९ पंचास्तिकाय

What hows or maintains its identity through its several qualities and modifications, and what is not different from Satta or substance, that is called Dravya by the all knowing.

उन-उन सद्भाव पर्यायों को जो द्रवित होता है- प्राप्त होता है, उसे द्रव्य कहते हैं- जो कि सत्ता से अनन्य भूत है।

दब्वं सल्लक्षण्यं उप्पादव्ययधुवत्तसंजुतं ।

गुणपञ्चयासयं वा जं तं मण्णति सव्वण्हू ॥ १०

Whatever has substaniability has the jorus tried or birth death and permanence and is the substratum of qualities and modes is Dravya so Say the all knowing.

जो सत् लक्षण वाला है, जो उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य संयुक्त है अथवा जो गुण, पर्याय को आश्रय-आधार है, उसे सर्वज्ञ भगवान् द्रव्य कहते हैं।

गुणपर्ययवद् द्रव्यम् ॥३८

Substance is possessed of attributes and modifications.

गुण और पर्याय वाला द्रव्य है। द्रव्य, गुण और पर्यायों का एक अखंड पिण्ड स्वरूप है। गुण को सामान्य उत्सर्ग, अन्वय भी कहते हैं, पर्याय को विशेष, भेद भी कहते हैं। ऐसे सामान्य और विशेष से सहित द्रव्य होता है। पंचास्तिकाय में कहा भी है-

पञ्चयविजुदं दब्वं दब्वविजुतं य पञ्चया णस्थि ।

दोण्हं अणण्णभूदं भाव समणा परूविंति ॥ १२ (पंचास्तिकाय)

पर्याय से रहित द्रव्य और द्रव्य रहित पर्यायें नहीं होती हैं। दोनों का अनन्यभाव श्रमण प्ररूपित करते हैं।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।

उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥१६ गीता पृ. १८

असत् का अस्तित्व नहीं है और सत् का नाश नहीं है इन दोनों का निर्णय ज्ञानियों ने जाना है।

अविनाशी तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं तत्त्वम् ।

विनाशमव्यस्यास्य न कश्चित्कर्तृमर्हति ॥१७

जिससे यह अखिल जगत् व्याप्त है, उसे तू अविनाशी जान। इस अव्यय का नाश करने में कोई समर्थ नहीं है।

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।

न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥ १४ गीता पृ. ६६

जगत् का प्रभू न कर्त्तापन से रचता है, न कर्म रचता है, न कर्म और फल का मेल साधता है। प्रकृति ही सब करती है।

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।

अज्ञाननेनावृतं ज्ञानं तेन मुहूर्न्ति जन्तवः ॥१५

इश्वर किसी के पाप या पुण्य को नहीं ओढ़ता। अज्ञान द्वारा ज्ञान के ढक जाने से लोग मोह में फँसते हैं।

न जायते म्लियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चित् न बभूव कश्चित् ।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥१८ उपनि. पृ. ९५

नित्य ज्ञान स्वरूप जन्मता है और न मरता ही है, यह न तो स्वयं किसी से हुआ है न इससे कोई भी हुआ है अर्थात् यह न तो किसी का कार्य है और न कारण ही है। यह अजन्मा, नित्य सदा एक रस रहने वाला और पुरातन है अर्थात् क्षय और वृद्धि से रहित है। शरीर के नाश किये जाने पर भी इसका नाश नहीं किया जा सकता है।

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुहृत्शेन्मन्यते हतम् ।

उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥१९

यदि कोई मारने वाला व्यक्ति अपने को समर्थ मानता है और यदि कोई मारा जाने वाला व्यक्ति अपने को मारा गया समझता है तो वे दोनों ही आत्मस्वरूप को नहीं जानते क्योंकि यह आत्मा न तो किसी को मारता है और न मारा ही जाता है। अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।

तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः ॥२० उपनि. पृ. ९७

इस जीवात्मा के हृदय रूप गुफा में रहने वाला परमात्मा सूक्ष्म से अतिसूक्ष्म और महान् से भी महान् है। परमात्मा की उस महिमा को कामना रहित और चिन्ता रहित कोई विरला साधक सर्वाधार परब्रह्म परमेश्वर की कृपा से ही देख पाता है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।

यमेवैष वृषुपुते तेन लभ्यस्त्वयैष आत्मा विवृणुते तनूस्वाम् ॥२३ उपनि.

यह परंब्रह्म परमात्मा न तो प्रवचन से, न बुद्धि से और न बहुत सुनने से ही प्राप्त हो सकता है जिसको यह स्वीकार कर लेता है उसके द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि यह परमात्मा उसके लिये अपने यथार्थ स्वरूप को प्रकट कर देता है।

प्राचीन कुछ ऋषि विधाता की कल्पना को अनावश्यक समझते रहे हैं। ऋग्वेद का नासदीय सूक्त कहता है-

‘नासदासीन्नो सदासीत तदार्नी नासीद्रज्जो नो व्योमा परो यत् ।’

सृष्टि के आरम्भ में न असत्य था, न ही सत्य। उसी तरह न अंतरिक्ष ‘आकाश’ का कोई अस्तित्व था।

यह सृष्टि किससे उत्पन्न हुई, किस लिए उत्पन्न हुई इसे कौन जानता है?

‘को अदा वेद क इह प्रवोचत कुत अजाता कुत इयं विसृष्टिः ।’

ऋग्वेद में तो यहाँ तक कहा गया है कि यदि यह सब कोई जानने वाला है तो यहाँ आकर बताए-

‘इह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत् ।’

किनहूँ न करौ न धरे को षट्द्रव्यमयी न है को

सो लोक मांहि बिन समता दुःख सहै जीव नित भ्रमता ॥ छहडाला

सत्य ही सार्वभौम, शाश्वतिक, वैशिक, सर्वश्रेष्ठ, सर्वज्येष्ठ होने से सत्य ही सर्वोपरि है। उस परमसत्य/महासत्ता/निरपेक्ष सत्य के अनन्त आयाम/पहलू/रूप/भेद होने से सत्य के अनन्त रूप होते हैं। परमसत्य (धर्म, आत्मा, मोक्ष, सुख, द्रव्य) को प्राप्त करने का उपाय/निमित्त/साधन है— व्यवहार सत्य/सापेक्ष सत्य। सत्य के भी अनेक रूप हैं। यथा—

1. सामाजिक सत्य (स्वरूप सामाजिक रचना के नियम) 2. नैतिक सत्य (दूसरों के लिए अपीड़ाकारक व्यवहारिक नियम) 3. धार्मिक, संघ, संगठनात्मक सत्य (आध्यात्मिक सत्योपलब्धि के लिए प्रयासरत समूह के नियम) 4. पारिवारिक सत्य (स्वरूप परिवार रचना के नियम) 5. राष्ट्रीय सत्य (सुराज्यपूर्ण स्वराज्य रचना के नियम यथा—संविधान, कानून) 6. अन्तर्राष्ट्रीय सत्य (अन्तर्राष्ट्रीय सुव्यवस्था के लिए नियम कानून आदि) इन प्राथमिक रूपी व्यवहार सत्य से उत्तरोत्तर श्रेष्ठ से श्रेष्ठोत्तर हैं। 7. मानसिक सत्य/वैचारिक सत्य/उद्देश्यात्मक सत्य। इससे भी श्रेष्ठ श्रेष्ठतम है। 8. भावात्मक सत्य अथवा स्वयं सत्य—भावमय/सद्भावमय पूर्णता को प्राप्त करना।

प्रकरान्तर से स्वरूप सामाजिकसत्य से नैतिकसत्य, नैतिकसत्य से धार्मिकसत्य, धार्मिक सत्य से आध्यात्मिक सत्य (परम सत्य) उत्तरोत्तर श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर श्रेष्ठतम हैं। जो सत्य के पालन के बिना उत्तरोत्तर सत्य की उपलब्धि संभव नहीं है। जो सामाजिक, नैतिक आदि सत्य का पालन नहीं करता है, वह धार्मिकसत्य को प्राप्त नहीं कर सकता और धार्मिक सत्य की उपलब्धि के बिना आध्यात्मिकसत्य को प्राप्त नहीं कर सकता है। हाँ, यह संभव है कि उत्तरोत्तर सत्य की उल्लङ्घन होने पर पूर्व—पूर्व के सत्य स्वयमेव छूट जाते हैं। जैसा कि उत्तरोत्तर सोपान प्राप्त करने पर पूर्व—पूर्व के सोपान छूट जाते हैं परन्तु जो उत्तरोत्तर सोपान को प्राप्त किये बिना पूर्व—पूर्व के सोपान को छोड़ देते हैं वे नीचे पतित हो जाते हैं अर्थात् आगे बढ़ने के लिए पिछला

बोलना चाहिए तथा पिछला छोड़ते हुए आगे बढ़ना चाहिए। यह नियम प्रायः समस्त शिक्षा, दीक्षा, विकास, व्यक्तित्व, कार्य, साधना, प्रभावना, लक्ष्य आदि में लागू होता है। सुव्यवस्थित, सत्य—तथ्यात्मक क्रमबद्ध प्रयास/पुरुषार्थ में लागू होता है। सुव्यवस्थित, सत्य—तथ्यात्मक क्रमबद्ध प्रयास/पुरुषार्थ से ही समस्त समस्याओं का समाधान होता है तथा यथार्थ सत्य का साक्षात्कार होता है जो उन—उन समस्याओं में ढूँका हुआ, अर्थात् प्रत्येक समस्या में समाधान छिपा हुआ रहता है, केवल उसे सम्यक् पुरुषार्थ उद्घाटित करने की देर है/आवश्यकता है।

असत्य का लक्षण

असदभिधानमृतम् । 14

Falsehood (is) to speak harmful-wors (through प्रमत्त योग pramattyoga, passional vibratkons.)

असत् बोलना अनृत है।

इस सूत्र में ‘सत्’ का प्रतिषेधक ‘असत्’ शब्द नहीं है अपितु ‘सत्’ शब्द प्रशंसावाची है, अतः ‘न सत्—असत्’ का अप्रशस्त अर्थ होता है, शून्य वा तुच्छभाव नहीं।

असत्—अप्रशस्त अर्थ का अभिधान—कथन, अप्रशस्त अर्थ को कहने वाला वचन असत् अभिधान है।

‘ऋतं’ शब्द सत्यार्थ में है। ‘ऋतं’ यह पद सत्यार्थ में जानना चाहिए अर्थात् ऋतं सत्य और अनृत—असत्य है। विद्यमान पदार्थों के अस्तित्व में कोई विघ्न उत्पन्न न करने के कारण ‘सत्सु साधु सत्यम्’ यह व्युत्पत्ति भी सत्य की हो सकती है (यानी सभीचीन श्रेष्ठ पुरुषों में जो साधु वचन बोला जाता है, वह सत्य कहा जाता है। ‘न ऋतं अनृतं’ जो ऋत वचन नहीं है, वह अनृत वचन—असत्यवचन कहा जाता है।

अतः मिथ्या शब्द से विद्यमान का लोप तथा अविद्यमान के उद्भावन करने वाले जो अभिधान (कथन) हैं वे ही अनृत (असत्य) होंगे। जैसे—आत्मा नामक पदार्थ नहीं है, परलोक नहीं है, श्यामतण्डुल बराबर आत्मा है, अंगूठे की पौर बराबर आत्मा है; आत्मा सर्वगत और निष्क्रिय है; इत्यादि वचन ही मिथ्या (विपरीत) होने से अनृत कहे जायेंगे, किन्तु जो विद्यमान (सत्) अर्थ को भी कहकर पर प्राणी की पीड़ा करने वाले अप्रशस्त वचन हैं वे अनृत नहीं होंगे क्योंकि मिथ्यानृत में मिथ्या का अर्थ विपरीत है और परप्राणी—पीड़ाकारी वचन विपरीत नहीं हैं। अतः परप्राणी—पीड़ाकारी अप्रशस्त वचन हैं, वे असत्य की कोटि में नहीं आयेंगे। ‘असत्’ कहने से जितने अप्रशस्त अर्थ वाची वचन हैं, वे सभी अनृत (असत्य) कोटि में आ जायेंगे। इससे जो विपरीतार्थ वचन प्राणी पीड़ाकारी हैं वे सभी अनृत (असत्य) ही हैं; ऐसा जाना जाता है।

उत्तम सत्य धर्म एवं भाषा समिति में अन्तर सत् जनों के साथ साधु वचन बोलना सत्य है। सत् प्रशंसनीय मनुष्यों के साथ प्रशंसनीय वचन बोलना उत्तम सत्य कहलाता है। वह सत्य दस प्रकार का है। भाषा समिति में सत्य धर्म का अन्तर्भाव नहीं हो सकता, क्योंकि भाषा समिति में संयत साधु (विधर्मी) के साथ भाषा का व्यवहार करते समय हित और मित वचन बोलना है। यदि साधु—असाधु में हित, मित वचनों का प्रयोग न करे तो राग और

अनर्थदण्ड आदि दोषों का प्रसंग आता, ऐसा समिति का लक्षण कहा है, परन्तु सत्य धर्म में अपने सहधर्मी साधुओं या भक्तों के साथ धर्मवृद्धि के निमित्त या ज्ञान, चारित्र के शिक्षण आदि के लिए प्रशंसनीय बहुत बोलना स्वीकृत है अर्थात् सत्य धर्म वाला अपने सहधर्मी के साथ धर्म वृद्धि के निमित्त अधिक भी बोल सकता है।—

सत्याणुव्रत के अतिचार

मिथ्योपदेशरहोभ्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमन्त्र भेदाः । 26

The partial transgressions of the second vow सत्याणुव्रतारे:

1. मिथ्योपदेश — Preaching false doctrines.
2. रहोभ्याख्यान — Divulging the Secret actions of man and woman-
3. कूटलेखाक्रिया — Forery and perjury.
4. न्यासापहार — Unconscious dealing by means of speech.
5. साकारमन्त्रभेद — Divulging what one guesses by seeing the behaviour or gestures of others, who are consulting in private.

मिथ्योपदेश, रहोभ्याख्यान, कूटलेखाक्रिया, न्यासापहार और साकारमन्त्रभेद ये सत्याणुव्रत के पाँच अतिचार हैं।

1. मिथ्योपदेश — मिथ्या, अन्य प्रवर्तन या यथार्थ क्रियाओं का छिपाना मिथ्योपदेश है। अभ्युदय और नि: श्रेयसार्थक क्रियाओं में अन्यथा प्रवृत्ति करा देना या उनके प्रति उल्टी बात कहना मिथ्योपदेश कहलाता है।
2. रहोभ्याख्यान—संवृत (गुप्त) का प्रकाशन रहोभ्याख्यान है। स्त्री-पुरुषों के द्वारा एकान्त में किये गये रहस्य (संकेत, बातचीत आदि) का उद्घाटन करना रहोभ्याख्यान है ऐसा जानना चाहिए।
3. कूटलेखाक्रिया पर प्रयोग से अनुकूल पद्धतिकर्म कूटलेखक्रिया है। किसी के नहीं कहने पर भी किसी दूसरे की प्रेरणा से यह कहना कि 'उसने ऐसा कहा है या ऐसा अनुष्ठान किया है' इस प्रकार वंचन के निमित्त (उगने के लिए) लेख लिखना कूटलेखक्रिया है।
4. न्यासापहार,— हिरण्य आदि निक्षेप में अल्पसंख्या का अनुज्ञा वचन न्यासापहार है। सुवर्ण आदि गहना रखने वाले द्वारा भूल से अल्पशः (कम) माँगने पर जानते हुए भी 'जो तुम माँगते हो ले जाओं इस प्रकार अनुज्ञा वचन कहना, उसको कम देना न्यासापहार नामक अतिचार कहलाता है।
5. साकारमन्त्रभेद — प्रयोजन आदि के द्वारा पर के गुप्त अभिप्राय का प्रकाशन साकारमन्त्रभेद है। प्रयोजन, प्रकरण, अङ्गविकार अथवा भूक्षेप आदि के द्वारा दूर के अभिप्राय को जानकर ईर्ष्या वश उसे प्रकट कर देना साकारमन्त्रभेद है। ये सत्याणुव्रत के पाँच अतिचार हैं।

सत्यव्रत की भावनाएँ

क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्युवीची भाषणं च पंच। (5)

And five (contmption or observance for the vow against falsehood :

1. क्रोध प्रत्याख्यान Giving up anger;

लोभ Giving up greed;

भीरुत्व Giving up cowardice or fear;

हास्य प्रत्याख्यान Giving up of frivolity;

अनुवीचीभाषण speaking in accordance with scriptural injunctions.

क्रोध प्रत्याख्यान, लोभप्रत्याख्यान, भीरुत्वप्रत्याख्यान, हास्यप्रत्याख्यान, अनुवीची भाषण से सत्य व्रत की पाँच भावनाएँ।

क्रोध त्याग, लोभत्याग, भीरुत्वत्याग, हास्यत्याग, अन्युवीची भाषण से पाँच सत्यव्रत की भावनाएँ जाननी चाहिए। अनुवीचीभाषण, अनुलोभ भाषण एकार्थवाची अर्थात् विचार पूर्वक बोलना अनुवीचीभाषण है। यहाँ पुण्यस्वर का प्रकरण होने से प्रशारत क्रिया करने वाले पापी के भाषण को अनुवीचीभाषण नहीं कह सकते क्योंकि विचार पूर्वक भाषण को अनुवीचीभाषण कहते हैं।

सत्य प्रतिष्ठायां क्रियफलाश्रयत्वम् ॥ 36 पा.योग दर्शन पृ.417:

सत्य में दृढ़ स्थिति हो जाने पर क्रिया फल का आश्रय बनती है। जिस योगी की सत्य में दृढ़ स्थिति हो गयी है, उसकी वाणी से कभी असत्य नहीं निकलेगा, क्योंकि वह यथार्थ ज्ञान का रखने वाला हो जाता है। उसकी वाणी अमोघ हो जाती है। उसकी वाणी द्वारा जो क्रिया होती है, उसमें फलका आश्रय होता है अर्थात् जैसे किसी को यज्ञादिक क्रिया के करने में उसका जो क्रिया फल होता है, इसी प्रकार योगी के केवल वचन से ही वह फल मिल जाता है। यदि वह किसी से कहे कि तू धर्मात्मा अथवा सुखी हो जा तो वह ऐसा ही हो जाता है।

सत्यनिष्ठ योगी के निरन्तर ऐसी भावना और धारणा रखने से कि उसके मुख से न केवल भूत और वर्तमान के सम्बन्ध में किन्तु भविष्य में होने वाली घटनाओं के सम्बन्ध में भी कोई असत्य वचन न निकलने पावे, सत्य की प्रबलता से उसका अन्तःकरण इतना स्वच्छ और निर्मल हो जाता है कि उसकी वाणी से वही बात निकलती है जो क्रियारूप में होने वाली होती है।

सत्य का सैद्धान्तिक स्वरूप

तत्त्व सल्लाक्षणिकं सन्मात्रं वा यतः स्वतः सिद्धम् ।

तस्मादनादिनिधनं स्वसहायं निर्विकल्पं च । १८ पंचाध्यायी पृ.५

तत्त्व का लक्षण सत् है या सन्मात्र ही तत्त्व है और जिस कारण से वह यतः सिद्ध है, इसलिए वह विनाश रहित अनादि है, अनिधन है स्वसहाय है निर्विकल्प अर्थात् अखण्ड है।

इत्थं नो चेदसतः प्रादुर्भूतिर्निरंकुशा भवति ।

परतः प्रादुर्भावों युतसिद्धत्वं सती विनाशो वा । १९

अब यदि तत्त्व को उक्त प्रकार का नहीं माना जाता है तो क्रम से ये दोष आते हैं। १. तत्त्व को अनादि नहीं मानने पर विना किसी बाधा के असत् पदार्थ की उत्पत्ति प्राप्त होती है। २. अनिधन नहीं मानने पर सत् के विनाश की प्राप्ति होती है।

३. र्घसहाय नहीं मानने पर एक पदार्थ की दूसरे पदार्थ से उत्पत्ति प्राप्त होती है। ४. और निर्विकल्प नहीं मानने पर पदार्थ में युतसिद्धत्व का प्रसंग प्राप्त होता है।

असत् पदार्थ की उत्पत्ति में दोष

असतः प्रादुर्भावे द्रव्याणामिह भवेदनन्तत्वम् ।

को वारयितुं शक्तः कुम्भोत्पत्तिं मृदाद्यभावेऽपि ॥110॥

यदि कहा जाय कि इन दोषों के प्राप्त होने से क्या बिगड़ता है सो भी बात नहीं है क्योंकि 1. असत् की उत्पत्ति मान लेने पर अपने आप अनन्त द्रव्यों की उत्पत्ति प्राप्त होती है और तब मिट्ठी आदि के अभाव में भी घट की उत्पत्ति माननी पड़ेगी। पर से सिद्ध मानने में दोष

परतः सिद्धत्वे स्यादनवस्थालक्षणो महान् दोषः । सोऽपि परः परतः स्यादन्यस्मादिति यतश्च सोऽपि परः ॥111॥

इसी प्रकार 2. एक पदार्थ की सिद्धि किसी दूसरे पदार्थ से मानने पर अनवस्था नामक दोष प्राप्त होता है, क्योंकि जिस पदार्थ से विवक्षित वस्तु की सिद्धि मानी जायगी वह पदार्थ भी किसी दूसरे पदार्थ से सिद्ध होगा और वह दूसरा पदार्थ भी किसी तीसरे पदार्थ से सिद्ध होगा।

युतसिद्ध मानने में दोष

युतसिद्धत्वेऽप्येवं गुणगुणिनोः सायात्पृथक्प्रदेशत्वम् । उभयोरात्मसमत्वालक्षणभेदः कथं तयोर्भवति ॥112॥

इसी प्रकार 3. वस्तु को युतसिद्ध मानने पर गुण गुणी के पृथक्-पृथक् प्रदेश मानने पड़ेगे और इस प्रकार दोनों के स्वतन्त्र सिद्ध हो जाने पर इन दोनों में लक्षण भेद कैसे सिद्ध किया जा सकेगा अर्थात् नहीं किया जा सकेगा।

सत् का नाश मानने में दोष

अथवा सतो विनाशः स्यादिति पक्षोऽपि बाधितो भवति ।

नित्यं यतः कथंचिद् द्रव्यं सुज्ञैः प्रतीयतेऽध्यक्षात् ॥113॥

इसी प्रकार 4. सत् का नाश होता है यह पक्ष भी बाधित है, क्योंकि ज्ञानी जनों को प्रत्यक्ष से द्रव्य कथंचित् नित्य प्रतीत होता है।

तस्मादेनकदूषणदूषितपक्षाननिद्वता पुंसा ।

अनवद्यमुक्तलक्षणमिह तत्त्वं चानुमन्तव्यम् ॥114॥

यतः तत्त्व को अनादि, अनिधन, स्वसहाय और अखण्ड नहीं मानने पर उक्त दोष आते हैं, अतः जो भी व्यक्ति इन दोषों से रहित वस्तु को स्वीकार करना चाहता है उसका कर्तव्य है कि उसे प्रारम्भ में पदार्थ का जो निर्दोष लक्षण कहा है उस लक्षण वाले तत्त्व को स्वीकार कर लेना चाहिए।

विषय विभाग का निर्देश करते हुए ग्रन्थकार ने सर्व प्रथम सामान्य तत्त्व के विवेचन करने की प्रतिज्ञा की थी। तदनुसार ग्रन्थकार ने उक्त पद्यों द्वारा सामान्य तत्त्व के विवेचन करने की प्रतिज्ञा की थी। तदनुसार ग्रन्थकार ने उक्त पद्यों द्वारा सामान्य तत्त्व के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए वैसा नहीं मानने पर जो दोष पैदा होते हैं उनका परिहार किया है।

यहाँ सामान्य तत्त्व का लक्षण सत् बतलाया है या सत् को ही सामान्य तत्त्व रूप मान लिया है। इन दो शैलियों से पदार्थ का विवेचन करने में खास भेद है। जब

प्रथम प्रकार कथंचित् भेद का घोतक है, वैसी हालत में दूसरा प्रकार कथंचित् लगता है और सूचित करता है। परब्रह्मवादियों ने सत् को एक और अभिन्न माना है। उनकी यह मान्यता तात्त्विक नहीं है यह बात विवेचन करने की प्रथम शैली से सूचित होती है और वैशेषिकों ने सामान्य नाम सर्वथा स्वतन्त्र पदार्थ मानकर सामान्य विशेष जो सर्वथा भेद की घोषणा की है उनकी वह घोषणा समीक्षान नहीं है यह विवेचन करने की दूसरी शैली से मालूम पड़ता है। इस प्रकार सत्स्वरूप या सत् लक्षण वाला तत्त्व है वह स्वतः सिद्ध है, क्योंकि उसका अनादि, अनन्त स्वसहाय और निर्विकल्प अनिवार्य है स्वतः सिद्ध का अर्थ है कि इसे किसी ने बनाया नहीं, किन्तु सदा अपने इस स्वरूप के साथ वह अवस्थित है किन्तु तत्त्व स्वतः सिद्ध है तब बन सकता यह उसे अनादि आदि रूप मान लिया जाय। यदि इसे अनादि नहीं माना जाता तो न्याय के इस सिद्धान्त की असत् की उत्पत्ति नहीं होती, नहीं ठहरता, क्योंकि हालत में असत् की उत्पत्ति सम्भव होने से अनन्त अकलित नये पदार्थों की उत्पत्ति का प्रसंग प्राप्त होता है और तब यह मान लेने में भी कोई आपत्ति नहीं रहती मिट्ठी के अभाव में भी घट की उत्पत्ति होने लगेगी। किन्तु न तो कभी ऐसा हुआ और न कभी ऐसा हो सकता है, इसलिए यही निष्कर्ष निकलता है कि सत् स्वरूप तत्त्व को अनादि मान लेना चाहिए।

अनिधन का अर्थ है विनाश रहित। जैसे नये तत्त्व का उत्पाद नहीं होता वैसे लोक में जितने स्वतंत्र तत्त्व हैं उनका विनाश भी नहीं होता किन्तु पदार्थ को अन्त मान लेने पर संसार की उत्पत्ति माननी पड़ेगी। जिससे उसकी उत्पत्ति मानी जायगी उसकी उत्पत्ति भी किसी अन्य से माननी पड़ेगी, जिससे अनवस्था नामक मान दोष से बचने का एक ही उपाय है कि वस्तु को अनिधन— अन्तरहित मान लिया जाय। स्वसहाय का अर्थ है आत्मसापेक्ष। ऐसा नियम है कि लोक में जितने तत्त्व हैं सब आत्मनिर्भर हैं। उनका अस्तित्व अन्य सापेक्ष नहीं है। किन्तु ऐसा न मान कर अदि उनका अस्तित्व अन्य सापेक्ष माना जाता है तो गुण भी जुदे—जुदे प्राप्त हो जायेंगे। और इनके सर्वथा स्वतंत्र सिद्ध हो जाने पर यह गुणी है यह भेद कैसे बन सकेगा। दोष न आवे अतः प्रत्येक तत्त्व को स्वसहाय मान लेना चाहिये।

निर्विकल्प का अर्थ है अखण्ड। लोक में जितने तत्त्व हैं वे सब सदाकाल विवरस्थित हैं। पुद्गल अनन्तानन्त हैं। जीव इनके अनन्तवें भाग प्रमाण हैं। धर्म, धर्म और आकाश ये एक एक हैं और काल असंख्यात हैं। सदा काल ये इतने ही रहते हैं, न्यूनाधिक नहीं होते। यदि ऐसा नहीं माना जाय तो सत् का अभाव प्राप्त होता है। किन्तु सत् का कभी अभाव होता नहीं ऐसा नहीं ऐसा न्याय का सिद्धान्त है। इसलिए सब तत्त्वों को निर्विकल्प अर्थात् अखण्ड मान लेना ही श्रेयस्कर है।

इस प्रकार युक्ति और अनुभव से विचार करने पर यही सिद्ध होता है कि सिद्धता यह वस्तु का प्रमुख गुण है। जगत् का व्यवस्थितपना इसी से बन सकता है, अन्य प्रकार से नहीं। इससे उसकी अनादिता, अनन्तता, स्वसहाय और अखण्डता प्रकार सिद्ध हो जाती है। किन्तु स्वतः सिद्ध न मानने पर उक्त चार विशेषताओं रूपान में असत् की उत्पत्ति, पर से उत्पत्ति, युतसिद्धत्व और सत् का विनाश ये चार

महान् दूषण आते हैं। किन्तु इनका प्राप्त होना इष्ट नहीं, अतः उक्त जिन धर्मावाला पदार्थ माना गया है वह वैसा ही है ऐसा निश्चित होता है।

सत्ता प्रतिपक्ष सहित

किंचैवंभूतापि च सत्ता न स्यान्निरङ्कुशा किन्तु ।

सप्रतिपक्षा भवति हि स्वप्रतिपक्षेण नेतरेणोह ॥115

जिस सत्ता का पहले निर्देश किया है वह सर्वथा निरपेक्ष नहीं है। किन्तु अपने प्रति-पक्षी की अपेक्षा सहित है, अन्य की अपेक्षा नहीं।

अत्राहैवं करिष्यत् सत्ता या सा निरङ्कुशा भवतु ।

परपक्षे निरपेक्षा स्वात्मनि पक्षेऽवलम्बिनी यस्मात् ॥116

शंका—यहाँ किसी का ऐसा कहना है कि सत्ता नाम का जो पदार्थ है वह निरपेक्ष ही होनी चाहिए क्योंकि वह पर पक्ष की अपेक्षा किये बिना केवल अपने पक्ष का अवलम्बन लेकर ही स्थित है?

तन्न यतो हि विपक्षः करिष्यत्सत्त्वस्य वा सपक्षोऽपि ।

द्वावपि नय पक्षौ तौ मिथो विपक्षौ विवक्षितापेक्षात् ॥117

समाधान—किन्तु उसका ऐसा कहना ठीक नहीं क्योंकि सत्ता का विपक्ष ये दोनों ही नयपक्ष हैं और ये दोनों परस्पर विवक्षाभेद से विपक्षरूप हैं।

अत्राप्याह कुदृष्टिर्यदि नयपक्षौ विवक्षितौ भवतः ।

का नः क्षति भवेत्तामन्यतरेणोह सत्त्वसंसिद्धिः ॥118

शंका—इस पर फिर किसी अज्ञानी का कहना है कि यदि यहाँ नयपक्ष विवक्षित है तो रहे आवे इससे हमारी क्या हानि है? कुछ भी नहीं किन्तु हमारा कहना इतना ही है कि प्रकृत में सत्ता की सिद्धि किसी एक नय से हो जानी चाहिए? परस्पर की प्रतिपक्षता

तन्न यतो द्रव्यार्थिकपर्यार्थिकनयात्मकं वस्तु ।

अन्यतरस्य विलोपे शेषस्यापाह लोप इति दोषः ॥119

समाधान—पर उसका ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि वस्तु द्रव्य पर्याय उभयरूप है या द्रव्यार्थिक और पर्यार्थिकरूप उभय नय का विषय है, इनमें से किसी एक का लोप करने पर शेष के लोपरूप दोष का प्रसंग प्राप्त होता है।

प्रतिपक्षमसत्ता स्यात्सत्तायास्तद्यथा तथा चान्यत् ।

नानारूपत्वं किल प्रतिपक्षं चैकरूपतायास्तु ॥120

सत्ता का प्रतिपक्ष असत्ता है तथा कुछ और भी है। इसी एकरूपता का प्रति पक्ष नाना रूपता है।

एकपदार्थस्थितिरिह सर्वपदार्थस्थितेर्विपक्षत्वम् ।

धौव्योत्पादविनाशैस्त्रिलक्षणास्त्रिलक्षणाभावः ॥121

एक पदार्थस्थित सर्व पदार्थस्थित का विपक्ष है। धौव्य, उत्पाद और विनाश की अपेक्षा त्रिलक्षणात्मक सत्ता का प्रतिपक्ष त्रिलक्षणभाव है।

एकस्यास्तु विपक्षः सत्तायाः स्याददो ह्यनेकत्वम् ।

स्यादप्यनतपर्ययप्रतिपक्षस्त्वे कर्पयत्वं स्यात् ॥122

एक सत्ता का प्रतिपक्ष यह अनेक है और इसी प्रकार अनन्त पर्यायात्मकता प्रति-पक्ष एक पर्याय रूपता है।

यहाँ सत्ता के स्वरूप का मार्मिक शब्दों में निर्देश किया गया है। भगवान् कुन्द—कुन्द ने इसकी चर्चा पंचास्तिकाय में की है। वहाँ बतलाया है कि सत्ता एक है, सब पदार्थों में स्थित है, विश्वरूप है, अनन्त पर्यायात्मक है और उत्पाद-व्यय-धौव्यस्वभाव है। यह यद्यपि ऐसा है तो भी सर्वथा निरपेक्ष नहीं है, किन्तु विपक्ष सहित है। सत्ता का विपक्ष असत्ता है। एक का विपक्ष अनेक है। सब पदार्थों में स्थित है इसका एक पदार्थस्थित है। विश्वरूपत्व का विपक्ष एकरूपत्व है। अनन्त पर्यायात्मकता का विपक्ष पर्यायात्मकता है और उत्पाद व्यय धौव्य की अपेक्षा त्रिलक्षणात्मकता का विपक्ष त्रिलक्षणभाव है। पदार्थों में स्वरूप का अवबोधक अन्वयरूप जो धर्म पापा जाता है उसे सत्ता कहते हैं यह अपने उत्पाद, व्यय, और धौव्य स्वभाव के द्वारा नाना पदार्थों में व्याप्त होकर रहती है इसलिए नाना रूप है। ऐसा एक भी पदार्थ नहीं जो सत्त्वरूप न हो, इसलिए सर्वपदार्थस्थित है। उत्पाद, व्यय, और धौव्य स्वभाव होने से त्रिलक्षणात्मक है। सब पदार्थों में अन्वयरूप से पाई है, इसलिए एक है और अनन्त पर्यायों का आधार है इसलिए अनन्तपर्यायात्मक है। यद्यपि सत्ता का स्वरूप उक्त प्रकार का है तो भी यह केवल अन्वय रूप से ही विचार करने पर प्राप्त होता है। व्यतिरेक रूप से विचार करने पर तो इसकी स्थिति ठीक इससे उल्टी हो जाती है। इसी से इसे उक्त कथन के प्रतिपक्षवाला भी बतलाया गया है। आशय यह कि वस्तु न सामान्यात्मक ही है और न विशेषात्मक ही किन्तु उभयात्मक है। जिसकी सिद्धि विवक्षा भेद से होती है। नयपक्ष यह विवक्षा भेद का ही पर्यायवाची है। इससे सामान्य विशेषरूप से उभयात्मक वस्तु की सिद्धि होती है क्योंकि वस्तु न केवल सामान्यात्मक ही है और न केवल विशेषात्मक ही। इसी से सत्ता को जहाँ सर्व पदार्थ-स्थित आदि रूप कहा है वहाँ उसे एक पदार्थस्थित आदि रूप भी बतलाया है।

अध्याय—५

नास्ति भी है - सत्यं सुखं प्राप्ति के उपाय

सत्य सार्वभौम ,शाश्वतिक, सर्वव्यापी, अनंत गुण धर्मात्मक होने के कारण विश्व में परम सत्य / महा सत्ता को छोड़कर अन्य कुछ भी नहीं है। यथा-
परम सत्य /महा सत्ता

नैवासतो जन्म सतो न नाशो दीपस्तमः पुद्गलभावतोस्ति ।
वृ.स्व.स्तो.

सर्वथा असत् द्रव्य सर्वथा उत्पन्न नहीं हो सकता है एवं सर्वथा सत् द्रव्य का नाश नहीं हो सकता, केवल परिवर्तन हो सकता है। जैसे दीपक की प्रज्ज्वलित अवस्था में समीपस्थ पुद्गल स्कंध प्रकाश रूप में परिणमन करते हैं एवं दीपक बुझने के पश्चात् वही प्रकाशमय पुद्गल स्कंध अंधकार (तम) रूप में परिणमित हो जाते हैं। परंतु पुद्गल स्कंधों का सर्वथा नाश नहीं होता है। गीता में भी कहा है -

“ नाऽसतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः । ”

सर्वथा असत् का सद्भाव नहीं होता है एवं सर्वथा सत् का अभाव नहीं हो सकता है। वर्तमान भौतिक वैज्ञानिक लोगों ने भी सिद्ध किया है कि -

The substance neither be destroyed, nor be created but only the form may be interchanged.

कोई भी नवीन वस्तु की उत्पत्ति नहीं होती है। कोई भी सद्भूत द्रव्य का नाश नहीं होता है, परंतु उसके आकार -प्रकार में परिवर्तन हो सकता है।

सद्बोहितं सत्यं वचः सत्यं शिवं सुन्दरम् ।

सत्यं वस्तु स्वरूपं च चिदानंदं मंगलम् ॥

प्राणियों के लिए हितकर वचन सत्य वचन हैं। सत्य ही शिव स्वरूप है एवं सुन्दर है। सत्य ही वस्तु का स्वभाव है और सत्य ही चिदानंदमय एवं मंगल स्वरूप है।

केवल वह सत्य, सत्य नहीं है, जिससे प्राणियों का हित नहीं होता है किंतु अहित होता है। परंतु वह वचन सत्य है, जिससे प्रणियों का हित होता है। केवल सत्य वाचनिक नहीं होना चाहिए वह मानसिक एवं शारीरिक भी होना चाहिए। सत्य को छोड़कर विश्व में अन्य कोई शाश्वत् वस्तु नहीं है। सत्य ही शिव (शाश्वतिक मंगल) है जो मंगल एवं शाश्वत् होता है, वही सुंदर है। यह जगत् सत्य में ही प्रतिष्ठित है क्योंकि वस्तु स्वरूप सत् स्वरूप है। चिदानंदमय मंगलमय भगवान् भी सत् स्वरूप है। "Truth is God and God is truth" सत्य ही भगवान् है एवं भगवान् ही सत्य है।

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।

प्रियं च नानृतं ब्रूयात् एषः धर्म सनातनः ॥

सत्य बोलना चाहिए, प्रिय बोलना चाहिए, सत्य होते हुए भी अप्रिय नहीं बोलना चाहिए। प्रिय असत्य बचन नहीं बोलना चाहिए। यह सनातन धर्म है।

सांचं बराबर तप नहीं झूठं बराबर पाप ।

जाके हृदय सांच है ताके हृदय आप ॥

सत्य के बराबर तप नहीं है, झूठ के बराबर पाप नहीं है, जिसके हृदय में सत्य है उसके हृदय में भगवान् हैं।

अपेक्षा नास्ति (वस्तु स्वरूपात्मक भैद्धानिक)-

परम सत्य /महा सत्ता (1) जीव (2) पुद्गल (भौतिक एवं रसायन तत्त्व)

(3) धर्म द्रव्य (गति माध्यम द्रव्य) (4) अधर्म द्रव्य (स्थिति माध्यम द्रव्य) (5)

आकाश (6) काल की अपेक्षा से 6 अवान्तर सत्ता स्वरूप हैं। अस्तित्व आदि सामान्य गुणों की अपेक्षा छहों द्रव्य एक समान होने पर चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तिक-अमूर्तिक आदि गुणों के कारण वे परस्पर भिन्न हैं अर्थात् एक द्रव्य अन्य द्रव्य रूप से नास्ति है। यदि ऐसा नहीं होगा तो छहों द्रव्यों का अभाव हो जायेगा; केवल एक ही द्रव्य रहेगा परंतु ऐसा न उपलब्ध है, न ही संभव है। इतना ही नहीं; द्रव्य, गुण, अवस्था आदि की दृष्टि से छहों द्रव्यों के भी संख्यात्, असंख्यात्, अनंतानंत भेद प्रभेद हैं। इस दृष्टि से भी एक अवान्तर द्रव्य अन्य अवान्तर द्रव्य रूप में नास्ति है। इसी प्रकार गुण, अवस्थादि रूप में भी नास्ति है। प्रकारान्तर से इसे अनेकांत, स्याद्वाद, स्व-चतुष्टय, पर- चतुष्टय, अभिन्नषट्कारक, भिन्नषट्कारक रूप से भी समझ सकते हैं। स्याद्वाद की दृष्टि से विचार करने पर -

1) स्यात् अस्ति- एक अपेक्षा से द्रव्य है। जैसे- रामचंद्र दशरथ की अपेक्षा पुत्र हैं।

2) स्यात् नास्ति- अन्य अपेक्षा से द्रव्य नहीं है। जैसे- रामचंद्र लव कुश की अपेक्षा पुत्र नहीं हैं।

3) स्यात् अवक्तव्य -एक साथ दो गुणों का वर्णन एक शब्द में नहीं हो सकता है

अतः अवक्तव्य है। जैसे -रामचंद्र, दशरथ एवं लव कुश की अपेक्षा एक साथ क्या हो सकता है- पुत्र अथवा पिता ? इस पिता- पुत्र रूपी गुण को हम दशरथ एवं लव कुश की अपेक्षा एक शब्द में वर्णन नहीं कर सकते इसलिए अवक्तव्य अर्थात् वचन के अविषय है।

4) स्यात् अस्ति-नास्ति-स्व गुण की अपेक्षा एवं पर गुण की अपेक्षा जो क्रम से वर्णन किया जाता है उस भंग को अस्ति- नास्ति भंग कहा जाता है। जैसे -रामचंद्र दशरथ की अपेक्षा पुत्र हैं, लवकुश की अपेक्षा पुत्र नहीं हैं।

5) स्यात् अस्ति अवक्तव्य - क्रमशः स्व गुण की अपेक्षा द्रव्य है, और युगपत् स्व पर की अपेक्षा अवक्तव्य है। जैसे - राम चंद्र दशरथ की अपेक्षा पुत्र हैं और दशरथ तथा लव कुश की अपेक्षा युगपत् अवक्तव्य हैं।

6) स्यात् नास्ति अवक्तव्य - क्रमशः पर गुण की अपेक्षा द्रव्य नहीं है और युगपत् स्व-पर गुण की अपेक्षा अवक्तव्य है। जैसे - रामचंद्र लव कुश की अपेक्षा पुत्र नहीं हैं और दशरथ तथा लव कुश की अपेक्षा युगपत् अवक्तव्य है।

7) स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य - क्रमशः स्व धर्म की अपेक्षा वस्तु है, पर धर्म की अपेक्षा वस्तु नहीं है, युगपत् स्व-पर धर्म की अपेक्षा अवक्तव्य है। जैसे रामचंद्र दशरथ की अपेक्षा पुत्र हैं, लव कुश की अपेक्षा पुत्र नहीं हैं, दशरथ और लव कुश की अपेक्षा युगपत् कहने की अपेक्षा अवक्तव्य है।

अनेकांत भावात्मक अहिंसा है, स्याद्वाद वाचनिक अहिंसा है। अनेकांत एवं स्याद्वाद समन्वय के लिए, विश्व शांति के लिए अमृत तुल्य है।

द्रव्य में स्थित समस्त गुण, धर्म पर्यायों की सत्ता को स्वीकार करने से द्रव्यों के पूर्ण गुणादि की रक्षा होती है तथा मन में यथार्थ भाव होने के कारण भाव अहिंसा होती है। अहिंसा का अर्थ दूसरों की सत्ता को स्वीकार करना भी है। स्याद्वाद से अन्य अविवक्षित धर्मों को वचन के माध्यम से धात नहीं पहुँचाने के कारण वाचनिक अहिंसा हुई। विश्व में जो अशांति, विप्लव, युद्ध होता है उसका मूल कारण दूसरों की सत्ता को टुकराना, अधिकार को स्वीकार नहीं करना, उनके सत्यांश को मान्यता नहीं देना है परंतु अनेकांत एवं स्याद्वाद उपरोक्त दोषों को दूर करते हैं, जिससे विश्व में समन्वय एवं शांति की स्थापना हो सकती है। दोनों सिखाते हैं कि तुम्हारा जो सत्य है, उस सत्य को बिना त्याग किये अन्य के सत्यांश को स्वीकार करो, सम्मान दो।

"Right is mine" जो सत्य है वह मेरा है, यह अनेकांत का अमर संदेश है। परंतु "Mine is right" मेरा जो कुछ हो वह सब सत्य है मानना अनेकांत एवं स्याद्वाद की उदारनीति के विरुद्ध है। वे इस संकीर्ण स्वार्थपूर्ण हठग्राहिता को नहीं मानते हैं। अनेकांत से मनोभाव, हृदय उदार एवं विशाल हो जाता है। स्याद्वाद से वचन हित, मित, प्रिय अमृतोपम हो जाता है। अनेकांत मानसिक औषधि है एवं स्याद्वाद वाचनिक औषधि है।

उपर्युक्त सैद्धांतिक, दार्शनिक वर्णन से सिद्ध होता है कि सत्य को जानने के लिए अस्ति के साथ-साथ नास्ति का भी महत्वपूर्ण योगदान है। शिक्षा मनोविज्ञान के अनुसार इसे विधिपरक (अस्ति) वर्णन एवं निषेधपरक (नास्ति) वर्णन कहते हैं। तर्कशास्त्र, नैतिकशास्त्र, विधिशास्त्र, आयुर्वेद, व्यवहार, मनोविज्ञान, आध्यात्मिकता आदि में भी नास्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। यथा -

सन्तः परिक्षयान्तरद् भजन्ते, मूढः पर प्रत्ययनेय बुद्धिः । (कालिदास)
सन्त/गुणग्राही सज्जन तो परीक्षा करके सत्य को ग्रहण करते हैं किंतु मूढ़ दूसरों के अनुसार चलते हैं।

हिताहित प्राप्ति परिहार समर्थ तत् ज्ञानमेव । (तर्कशास्त्र)
हित की प्राप्ति तथा अहित का परिहार जिससे होता है वही सच्चा ज्ञान है।
कर्तव्यमेव कर्तव्यं प्राणकंठगतैरपि ।
अकर्तव्यंनैव कर्तव्यं प्राणकंठगतैरपि ॥

प्राणकंठगत होने पर भी कर्तव्य करना चाहिए तथा प्राणकंठगत होने पर भी अकर्तव्य नहीं करना चाहिए।

जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्य इत्यसौ तत्त्व संग्रहः ।

जीव अन्य है और पुद्गल अन्य है यह अध्यात्मिक तत्त्व का सार संग्रह है। इसे ही सम्यक्दृष्टि, भेद विज्ञान, आत्मविश्लेषण, स्व-पर विज्ञान, हिताहित विवेक, धीर-नीर विवेक, दोष त्यजन-गुणग्रहण, सत्यग्राही ग्रहणीय, त्यजनीय आदि विशेषणों से अभिहित किया जाता है। राग, द्वेष, काम, क्रोध, मोह, माया, शरीर, कुदुम्ब, धन-वैभव, ख्याति, पूजा, प्रसिद्धि, मान-अपमान आदि को नेति-नेति (मेरा नहीं, मेरा नहीं) करते हुए जो शुद्धस्वरूप ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि आत्मिक गुण हैं उसे अस्ति अस्ति (मेरा है, मेरा है) रूप में प्राप्त किया जाता है। यदि ऐसा नास्ति/नहीं को स्वीकार नहीं किया जावे तो अस्ति (सत्य, परमात्मा) को प्राप्त नहीं किया जा सकता है जो कि प्रत्येक जीव के लिए सबसे बड़ा अनिष्ट, हानि, दुःखद दुर्घटना है। क्योंकि परमस्त्य/स्वात्मा की उपलब्धि से ही जीव को अनन्त अक्षय सुख-शांति, वैभव प्राप्त हो सकता है।

'नास्ति' नकारात्मक विचार -

अनादि अनन्तकालीन कुसंस्कारों के कारण जीव के भाव में मोह-माया, राग-द्वेष, ईर्ष्या-घृणा, काम-क्रोध, भय-निराशा, लोभ-तृष्णा, धन-मान-सम्मान आदि जो नकारात्मक विचार उत्पन्न होते हैं उन्हें नास्ति/निषेध करके जीव पवित्रता, सत्यनिष्ठा, उदारता, श्रेष्ठता, ज्येष्ठता, सुख-शांति, संतुष्टी, तृप्ति प्राप्त कर सकता। इसके निषेध से अहिंसा, असत्य के निषेध से सत्य, चोरी की नास्ति में अचौर्य, गैरिग्रह की नास्ति से अपरिग्रह आदि धर्म की उपलब्धि होती है।

'नास्ति' नास्तिक धर्म -

हिंसा, मिथ्या, संकीर्णता, क्रूरता, धोखाधड़ी, अंधविश्वास, कट्टरता, अन्याय, अत्याचार, शोषण, युद्ध, जीवबलि, नशीली वस्तुओं का सेवन, भेद-भाव, ऊँच-नीच आदि भाव-व्यवहार जिस सम्प्रदाय में है उसे नास्ति करके ही

अहिंसा, सत्य, उदारता, सत्त्विश्वास आदि आस्तिक धर्म को उपलब्ध किया जाता है।

'नास्ति' अयोग्य भोजन-पानी -

जो शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, पर्यावरणीय दृष्टि से अयोग्य भोजन-पानी यथा - माँस, अण्डा, मछली, शराब, तम्बाखू, बीड़ी, सिगरेट, अशुद्ध भोजन, अशुद्ध पानी आदि है उसे त्याग करके योग्य-शुद्ध शाकाहार, फलाहार, दुधाहार ग्रहण किया जाता है।

'नास्ति' कुसंगति -

दुष्ट, दुर्जन, फैशनी-व्यसनी, हिंसक, चोर, आतङ्कवादी आदि की संगति को त्याग करके साधु, संत, सज्जन, ज्ञानी, उपकारी, गुणी की संगति की जाती है।

'नास्ति' अयोग्य क्षेत्र, परिस्थिति आदि -

जो क्षेत्र, परिस्थिति, साधन आदि अयोग्य है उसे त्याग करके योग्य क्षेत्र, परिस्थिति, साधन आदि को स्वीकार किया जाता है।

'नास्ति' अयोग्य वचन स्वीकार तथा वचन बद्धता -

दूसरों के अयोग्य, असत्य, अहितकारी वचन को नकारना ही हितकर है। दूसरों की प्रामाणिकता को जाने बिना उन्हें स्वीकार नहीं करना भी योग्य है। निर्णय बिना दूसरों के अनुसार वचन बद्धता, कार्य योजना, दूसरों को कुछ बोलना या कुछ देना भी अयोग्य है। मेरे (आ.कनकनंदी) अनेकों अनुभव हैं कि दूसरे व्यक्ति प्रायः अप्रामाणिक, कर्तव्यहीन, अनुभवरहित, संकीर्ण स्वार्थी, अदूरदृष्टिसम्पन्न होते हैं। अतः ऐसे व्यक्ति जब कुछ बोलते हैं, अनुरोध करते हैं, कार्य योजना के लिए बताते हैं तब बिना सोच-विचार किये कुछ भी निर्णय नहीं लेना चाहिए, वचन बद्ध नहीं होना चाहिए। अनेक क्षेत्रों में अनेक बार मैंने अनुभव किया कि अनेक लोग साधु तक के लिए, यहाँ तक कि मेरे लिए भी ऐसे अयोग्य, अप्रामाणिक, उत्तरदायित्वहीन व्यवहार करते हैं। वे साधु या मेरे से भी किसी भी कार्य (पञ्चकल्याणक, विधान, विहार, चातुर्मास व्यवस्था, कुछ लेना-देना, शिविर, संगोष्ठी, स्वाध्यायादि) के लिए साधु से वचन स्वीकार करा लेते हैं परंतु उसके अनन्तर या अपना कार्य/मतलब सिद्ध होने के बाद अपने कर्तव्य/उत्तरदायित्व से विमुख हो जाते हैं। वे साधु से 'हाँ' भरने के लिए हर प्रकार कोशिश करते हैं। साधु का 'हाँ' करना मानो शिकारी के जाल में शिकार का फँस जाना है। गृहस्थ तो अनेक बार खाता-पीता है, यान-वाहन में बैठकर यातायात करता है, विभिन्न भौतिक उपकरणों का प्रयोग करता है वह एक बार आहार ग्रहण करना, नग्न शरीर में नग्न पैर में विहार, भौतिक साधनों का प्रयोग नहीं करने वाले जैन साधु का अनुभव कैसे कर सकता है? इसलिए गृहस्थों के अनुसार साधुओं को कार्य नहीं करना चाहिए। भारतीय

साहित्यों से ज्ञात होता है कि पहले जो राजा-महाराजा वर प्रदान करते थे/दूसरे अयोग्य व्यक्तियों के लिए वचन बद्ध होते थे उससे कितने अनर्थ होते थे। उदाहरण के लिए दशरथ का वर प्रदान, सत्यवादी हरिशचंद्र की प्रतिज्ञा, भीष्म की प्रतिज्ञा आदि। अभी भी अनेक साधु तक को अनेक बार अनेक समस्याओं को सहन करना पड़ता है जब वे बिना योग्य निर्णय लिए दूसरों के अनुसार 'हाँ'/निर्णय/कार्य करते हैं।

'नास्ति' अयोग्य को उपदेश -

सीख ताको दीजिए जाको सीख सुहाय ।

सीख दीजीयो बान्दरा घर बया का जाय ॥

सतगुरु देय जगाय मोह नींद जब उपशमे ।

तब कछु बने उपाय कर्मचोर आवत रुके ॥

मूर्खानां हि उपदेश विपत्तिनां पदे-पदे ।

उपर्युक्त अनुभव जन्य नीति वाक्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि जो अपात्र, कुपात्र, दुर्जन, क्रूर, निष्ठुर हैं, उन्हें उपदेश नहीं देना चाहिए, उच्च अनुभव नहीं बताना चाहिए। उससे तो उसका उपकार नहीं होगा परंतु वह उसका दुरुपयोग करेगा। इतना ही नहीं, उपदेश कर्ता को वे मूर्ख मानते हैं, उन्हें शत्रु मानकर उनसे दुर्व्यवहार करते हैं क्योंकि 'गतानुग्रहिको लोको न लोकः परमार्थिकः।'

'नास्ति' पीड़ा प्रगट -

रहिमन निज मन की व्यथा मन ही राखो गोय ।

सुनी इठलाइ है लोग सब बाँटे न लेय कोय ॥

अपनी मन की पीड़ा गुरु, गुणी, परदुःख कातर, सहदय, परोपकारी, सेवाभावी मज्जनों को बताने से पीड़ा कम होती है, उनसे सहयोग मिलता है परंतु दुष्ट, दुर्जन, ईर्ष्यालु, परदुःख से प्रसन्न होने वालों को बताने से वे उसका अनैतिक लाभ उठाते हैं, पीड़ित को और भी पीड़ित करते हैं, उनका मजाक उड़ाते हैं। उपर्युक्त वर्णन से सिद्ध होता है कि वस्तुस्वरूप, आध्यात्मिकता, प्रतिपादन की पद्धति से लेकर लौकिक व्यवहार तक में जिस प्रकार सत्य/अस्ति का महत्व है, उसी प्रकार नास्ति/नहीं का भी महत्व है। परंतु नास्ति का प्रयोग सदा-सर्वदा, सर्वत्र सावधानी से अस्ति/सत्य (समता, सुख, न्याय, व्यवस्थादि) को प्राप्त करने के लिए ही करना चाहिए न कि असत्य, विषमता, दुःख, अन्याय, अव्यवस्था के लिए करना चाहिए। यथा -

न मे मृत्युः कुतो भीतिर्न मे व्याधिः कुतो व्यथा ।

नाहं बालो न वृद्धोऽहं न युवैतानि पुद्गले ॥

न बन्धो न मोक्षो न रागादिवोषः न योगो न भोगो न व्याधिर्न शोकः ।

न कोपो न मानो न माया न लोभः, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥

अध्याय—६

सत्य में भी होता है सतत परिणमन

(ऊर्जा का वैश्विक रूप : वैज्ञानिक व आध्यात्म दृष्टि से)

प्रो. प्रभात कुमार

जैन (संघस्थ—आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव)

धर्माधर्मागासा गदिरागदि जीव पोग्गलाणं च।

जावत्तावल्लोगो आयासमदो परमणंतं ॥

आचार्य नेमिचन्द्र ने त्रिलोक सार में इस अनन्त आकाश के दो भेद करते हुए व्याख्या की कि अनन्त आकाश के ठीक मध्य में जितने क्षेत्र में अन्य पाँच द्रव्य जीव, पुद्गल, धर्म, अर्धम व कालाणु समाहित हैं, वह लोकाकाश है तथा शेष सभी और अनन्त अलोकाकाश है अर्थात् जहाँ ६ द्रव्य, वह लोकाकाश व शेष अलोकाकाश। इस लोकाकाश या लोक में ही अर्थात् ३४३ घनराजू प्रमाण क्षेत्र में ही जीव व पुद्गल या इनका संसार है। इस लोक में धर्म, अर्धम एक—एक अर्थात् अखण्ड होते हुए ३४३ घनराजू प्रमाण क्षेत्र में हैं तथा गति या अगति के कारणभूत द्रव्यों अर्थात् जीव व पुद्गल के लिये उदासीन अर्थात् अप्रेरक रहते हुए गतिहेतुत्व व स्थितित्व के कारण हैं। कालाणु केवल एक ही प्रदेशी है किन्तु इस सम्पूर्ण लोक के एक—एक प्रदेश में रत्नराशि की भाँति परस्पर स्पर्शमात्र करते हुए विद्यमान हैं तथा जीव, पुद्गल की गति, अगति परिणमन अर्थात् किसी भी प्रकार के परिवर्तन को दर्शनी के कारण वर्तनाहेतुत्व के कारण हैं। आकाश ने तो मात्र स्वयं को तथा शेष पाँच द्रव्यों को स्थान मात्र दिया हुआ है। ये सभी पाँच द्रव्य अपनी मूल सत्ता में एक क्षेत्रावगाही रहते हुए भी, एक दूसरे के साथ किसी भी गुण अर्थात् स्वभाव में कोई बाधा उत्पन्न नहीं करते।

अब यहाँ प्रश्न उत्पन्न होता है कि किर संसार क्या है? परिणमन, गति, अगति क्या हैं? वास्तव में 'समस्त संसार की इस इन्द्रजालिक क्रीड़ा के स्वामी हैं दो द्रव्य अर्थात् जीव द्रव्य व पुद्गल। यह दोनों भी अपनी सर्वात्म शुद्ध अवस्था में ही केवल अपने स्वभाव में रहते हैं, किन्तु अनादिकाल से इनके मध्य चले आ रहे संयोग अथवा बन्ध के कारण यह सारा संसार चल रहा है तथा दोनों ने परस्पर मिलकर, अपने परमशुद्ध निश्चयनय से अपने स्वभाव में रहते हुए भी, व्यवहारनय से एक दूसरे की अवस्था में परिवर्तन में निमित्त बनते हैं। इन दोनों की मिश्रित अवस्था में न जाने कितने भेद हो सकते हैं, कल्पना करना कठिन अथवा अनन्त। और स्यात् इसी कारण से संसारी जीव की अवस्थाएँ मूल भेद में ८४ लाख या १९७.५ लाख करोड़ होते हुए भी अनन्तानन्त।

प्रत्येक द्रव्य अपनी अन्तर्निहित ऊर्जा (Intrinsic energy) से ही अपना कार्य करता है, किसी बाह्य कारण से नहीं। बाह्य कारण निमित्त हो सकता है किन्तु

कार्य, परिणमन अथवा परिवर्तन होना सम्भव है केवल अपनी उपादान क्षमता या ऊर्जा से ही। प्रत्येक द्रव्य अपनी इस अनन्त व स्थिर ऊर्जा से स्वयं परिवर्तन करता रहता है। स्वयं का तात्पर्य कर्ता से न होकर, स्वभाव से है जिसे विशेषतः 'षट्गुण' भाग हानि वृद्धि से समझा जा सकता है अर्थात् प्रत्येक द्रव्य स्वयं षट्गुण हानि वृद्धि करते हुए परिवर्तन होता है किन्तु इस परिवर्तन से ही अपनी सत्ता बनाये रखता है, ऊर्जा में कोई हास या वृद्धि नहीं होती, बल्कि एक अद्भुत स्थिति आती है कि परिवर्तन करते हुए भी स्थिर रहता है। आप ऐसे कह सकते हैं जैसे समुद्री लहरें Sine curve की भाँति उठती व लिली होती रहती हैं, लेकिन अपने में ही। गणितीय आधार पर इसका विवेचन इस प्रकार कर सकते हैं। माना, किसी द्रव्य में गुण की संख्या 1024 है तब गणना करते हैं कि किस प्रकार षट्गुण हानि वृद्धि होती है। पहले यह समझ लें कि यह हानि वृद्धि अनन्त, असंख्यात व संख्यात के आधार पर निम्न प्रकार से होती है तथा प्रक्रिया को समझने मात्र के लिए इन्हें क्रमशः ८, ४ व २ से व्यक्त कर लेते हैं। अनन्त भाग वृद्धि = $1024 + 1024 \div 8 = 1024 + 128 = 1152$
असंख्यात भाग वृद्धि = $1152 + 1024 \div 4 = 1152 + 256 = 1408$
संख्यात भाग वृद्धि = $1408 + 1024 \div 2 = 1408 + 512 = 1920$
संख्यात गुण वृद्धि = $1920 + 1024 \times 2 = 1920 + 2048 = 3968$
असंख्यात गुण वृद्धि = $3968 + 1024 \times 4 = 3968 + 4096 = 8064$
अनन्त गुण वृद्धि = $8064 + 1024 \times 8 = 8064 + 8192 = 16256$
अनन्त भाग हानि = $16256 - 1024 \div 8 = 16256 - 128 = 16128$
असंख्यात भाग हानि = $16128 - 1024 \div 4 = 16128 - 256 = 15872$
संख्यात गुण हानि = $15872 - 1024 \div 2 = 15872 - 512 = 15360$
असंख्यात गुण हानि = $15360 - 1024 \times 2 = 15360 - 2048 = 13312$
अनन्त गुण हानि = $13312 - 1024 \times 4 = 13312 - 4096 = 9216$
अनन्त भाग हानि = $9216 - 1024 \times 8 = 9216 - 8192 = 1024$

इस प्रकार परिवर्तन एक क्रम से हुआ किन्तु गुण, अवस्था वैसी ही रही, इस प्रकार निरन्तर परिवर्तन होते हुए भी द्रव्य अपरिवर्तित रहता है अर्थात् अपने स्वभाव को नहीं तजता। यहाँ प्रश्न यह आता है कि इस निरन्तर चलने वाली षट्गुण हानि वृद्धि को या किसी भी प्रकार के परिणमन, गति के लिए ऊर्जा की भी आवश्यकता होगी? वास्तव में इस मनन का विषय केवल इस ऊर्जा का ही दर्शनसम्मत व विज्ञानसम्मत विवेचन करना है।

पदार्थ में ऊर्जा की व्याख्या करने से पहिले भौतिक—ऊर्जा के स्रोत पुद्गल को समझ लेना आवश्यक है। छ: द्रव्यों में पुद्गल एक मात्र रूपी द्रव्य है, जिसमें अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, मूर्तत्व व अचेतनत्व इन अष्ट सामान्य गुणों के अतिरिक्त स्पर्श, रस, गन्ध व वर्ण ये चार विशेष गुण भी हैं, सूक्ष्म

दृष्टि से देखा जाये तब ये ही पुद्गल के सम्पूर्ण गुण नहीं हैं। क्योंकि पुद्गल दो अवस्थाओं में अणु (Independent, native state) व स्कन्ध (Dependent, combined state) में पाया जाता है। अणु वह सूक्ष्मतम अवस्था है जो अपनी संज्ञा के अनुरूप अविभाज्य तो है ही, किन्तु स्वतंत्र भी है। ये अनन्त हैं और सर्व लोक व्यापी तथा अदृष्टव्य है, दो या अधिक अणु संयुक्त होकर स्कन्ध बनाते हैं तथा इस बन्धन के विकार के परिणामस्वरूप ही पुद्गल की इस स्कन्ध पर्याय में भिन्न-भिन्न स्पर्श, रस, गन्ध व वर्ण उत्पन्न हो जाते हैं। बस, यहाँ से अर्थात् अणु एवं स्कन्ध से भौतिक ऊर्जा का सद्भाव प्रारम्भ होता है। सामान्यतः अणुओं से स्कन्ध बनने में अणुओं की स्वाभाविक अनन्त ऊर्जा का शोषण तथा स्कन्ध से परमाणु पृथक् होने पर ऊर्जा का उत्सर्जन होता है। एक प्रकार के स्कन्ध से अन्य प्रकार के स्कन्ध रूप परिवर्तन होने में ऊर्जा का शोषण व उत्सर्जन दोनों हो सकते हैं।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार, नाभिकीय प्रतिक्रियाओं में अपार ऊर्जा का उत्पन्न होना स्कन्ध की पर्याय परिणाम ही है। किसी भी नाभिकीय प्रतिक्रिया में किसी तत्त्व के परमाणु में उपस्थित मौलिक कण पृथक् होने पर छोटे-छोटे अंशों में टूटते हैं, ये अंश प्रोट्रॉन, इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन या हेड्रन या क्यार्क्स ही नहीं, बरन और भी छोटे कण हैं, जो अत्यधिक सूक्ष्म होने से ऊर्जा रूप में आ जाते हैं, जो पहिले से ही उन कणों के द्वारा बंधकर तत्त्व के परमाणु में निहित थी तथा अब प्रकट हो गयी। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि ये जैन दर्शन वर्णित अणु से बहुत बड़े हैं। नाभिकीय क्रिया में इसी कारण कहा जाता है कि पदार्थ की कुछ मात्रा, नष्ट होकर ऊर्जा में परिवर्तित हुई, वास्तव में ऊर्जा अर्थात् अत्यधिक सूक्ष्म कण, सूक्ष्म मात्रा के रूप में ही परिवर्तित थी, यदि $E=mc^2$ है तब, $m=E/c^2$ भी है। अतः E व m के परिवर्तन से ही ऊर्जा का उत्सर्जन या स्कन्ध का निर्माण होता है। गणितीय आधार पर, इस अपार ऊर्जा की गणना इस प्रकार की जाती है।

पदार्थ या तत्त्व या द्रव्य की मूल रूप से नष्ट या परिवर्तित मात्रा = $1amu$ जहाँ, $1amu$ (atomic mass unit) परमाणवीय मात्रक ईकाई, एक ^{12}C परमाणु के $1/12$ वें भाग प्रमाण अर्थात् $1/12 \times 6.023 \times 10^{23}$

अतः आईस्टीन समीकरण $E=mc^2$ से —
 $E = \text{उत्पन्न ऊर्जा}$
 $m = \text{परिवर्तित या नष्ट मात्रा} = 1.66 \times 10^{-24}$ ग्राम
 $E = \text{प्रकाश का वेग} = 3 \times 10^{10}$ सेमी/सेकंड
 तब (1) से
 $E = 1.66 \times 10^{-24} (3 \times 10^{10})^2 \text{अर्ग}$
 $= 1.66 \times 10^{-24} \times 9 \times 10^{20} \text{ अर्ग}$

$= 14.94 \times 10^{-4}$ अर्ग ऊर्जा (2) यह नाभिकीय ऊर्जा अपार होने से Million electron volt (Mev) में प्रदर्शित की जाती है जहाँ—

$1MeV = 1.602 \times 10^{-9}$ अर्ग तथा c के $1/12$ वें भाग अर्थात् कार्बन तत्त्व के 4.98×10^{-24} ग्राम के पूर्ण दहन (प्रज्ज्वलन) से $1ev$ (इलेक्ट्रॉन वोल्ट) ऊर्जा उत्पन्न होती है तथा $10^6 ev = 1 MeV$.

अतः (2) से — $E = 14.94 \times 10^{-4} / 1.602 \times 10^{-9} MeV$.

$= 931 MeV$. (लगभग)

अतः $1amu$ जितनी सूक्ष्म मात्रा के नष्ट होने अर्थात् अत्यधिक सूक्ष्म कणों में परिवर्तित होने पर, अपार ऊर्जा उत्पन्न होती है। इस गणना करने का प्रयोजन यही है कि सूक्ष्म स्कन्ध रूप पुद्गल में अपार ऊर्जा निहित है।

किसी भी तत्त्व के परमाणु के निर्माण में प्रयुक्त इलेक्ट्रॉन, प्रोट्रॉन व न्यूट्रॉन के द्वारा परमाणु के निर्माण में भी अपार ऊर्जा प्रयुक्त होती है, जिसे बंधन ऊर्जा (Binding energy) कहा जाता है। किसी तत्त्व के नाभिक में उपस्थित सभी कण अर्थात् प्रोट्रॉन व न्यूट्रॉन, न्यूक्लिओन (Nucleon) कहलाते हैं तथा एक न्यूक्लिओन के लिए इस बंधन ऊर्जा का मान, सभी तत्त्वों में लगभग एक समान अर्थात् $8 MeV$ है। जिन तत्त्वों में लिए यह $8 MeV$ या अधिक है, वे स्थायी, तथा जिनके लिये यह $8 MeV$ से कम है, वे रेडियो एकिटेव या विद्युतित होते हैं।

यह ऊर्जा सभी तत्त्वों में रहते हुए, जब वे परस्पर संयोग करके अन्य यौगिक बनाते हैं, तब ऊर्जा और बढ़ जाती है, जो रासायनिक ऊर्जा है। सामान्यतः ये तत्त्व या यौगिक जब कोई रासायनिक अभिक्रिया करते हैं तब वे ऊर्जा में भी परिवर्तन करके नये-नये यौगिक बनाते हैं, जिनमें ऊर्जा पहिले से अधिक भी हो सकती है और कम भी। अधिक होने पर, ऊर्जा प्रकृति अर्थात् वातावरण या वायुमण्डल से शोषित की जाती है तथा कम होने पर शेष ऊर्जा उत्सर्जित कर दी जाती है, यह ऊर्जा प्रतिक्रिया ऊर्जा Energy of reaction होती है।

इन सब ऊर्जाओं को पदार्थों की ऊर्जा कहते हैं जो लौकिक है किन्तु साथ ही यह ऊर्जा अलौकिक या आध्यात्मिक भी है। यही ऊर्जा इस लोक में संसारी जीव व कार्मण वर्गणाओं में भी प्रयुक्त होती आ रही है। जीवद्रव्य एक अनन्त ऊर्जा सम्पन्न अखण्ड द्रव्य अवस्था है जो अपने भावों अर्थात् विभावों के द्वारा ऊर्जा का उपयोग होने पर कार्मण वर्गणाओं को कर्मों में परिवर्तित करता है तथा ये कर्म अपनी व जीवद्रव्य की ऊर्जा से बन्धन को प्राप्त हो जाते हैं। यही संसारी जीव अवस्था है।

संसारी जीव अपने पूर्व कर्मों के उदय से उत्पन्न ऊर्जा व उससे प्रभावित होकर अन्य नये विभावों, संस्कार से उत्पन्न ऊर्जा से नये द्रव्य कर्म बाँधता है किन्तु इस बन्धन में वह जितनी ऊर्जा का उत्सर्जन करता है, उसी से कर्म वर्गणाओं में प्रकृति पड़ती है तथा प्रदेश आकर्षित होते हैं तथा कषायों की तीव्रता या मन्दता से, उन कर्मों

को बंधन के समय हीन या अधिक ऊर्जा मिलती है। इसी कारण प्रत्येक कर्म बन्धन की भिन्न-भिन्न ऊर्जा से उन कर्मों की स्थिति व अनुभाग दृढ़, तीव्र या निर्बल व मंद होते हैं।

ये कर्म अपने अवधार काल के समाप्त होते ही अपनी भिन्न स्थिति के अनुरूप उदय में आते हैं, तब इनकी ऊर्जा से प्रभावित हो कर ही सभी संसारी जीव भाव कर्म में दूख जाते हैं जो भविष्यत् द्रव्यकर्म निर्धारण में सहायक होते हैं और यही द्रव्यकर्म, भावकर्म की रासायनिक क्रिया अनन्त काल से चली आ रही है।

सभी साधारण संसारी जीव अर्थात् प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान सम्बन्धी जीव, इन द्रव्य कर्मों के उदय के प्रभाव से समस्त कार्य करते रहते हैं तथा उन बद्ध कर्मों की सविपाक निर्जरा होती रहती है। किन्तु अन्तर देखिये, एक साधक या बुधजन या सम्यकत्वी जीव में, जो इस भव भ्रमण के कारण को समझ, इन प्रतिक्रियाओं अर्थात् बन्धनों के कारणों को समझ निर्लिप्त होने लगता है तथा बन्ध प्रक्रिया की गति को मन्द करता है अर्थात् अनन्त कर्मों से कुछ मुक्ति पा लेने से, कुछ सुख का अनुभव करने लगता है अर्थात् दुःख के कारणभूत सात सम्यक्त्वघाती 7 प्रकृतियों का सर्वथा अभाव कर डालता है अर्थात् अपनी ऊर्जा उत्पन्न करता है तथा उसके उपयोग या इससे संघात करके इन 7 प्रकृतियों की बन्धन ऊर्जा को क्षीण करके उनका अभाव कर डालता है। इस अवस्था में आने पर संयम, तप, नियम, उपवास, ध्यान आदि प्रक्रियाओं से निरन्तर अपनी ऊर्जा से यह जीवात्मा जो अब प्रथम गुणस्थान अर्थात् बहिरात्मा से पाँचवे, छठे, सातवें गुणस्थान या आगे अर्थात् अन्तरात्मा की ओर अग्रसर होता जाता है। ध्यान से प्रज्ज्वलित अग्नि के संघात से कर्म बन्धनों की ऊर्जा को कम करके ही—

1. समय से पहिले कर्मों को उदय में लाना अर्थात् उदीरणा
2. कर्म प्रकृति का परिवर्तन अर्थात् स्वजाति रूप दुःख या असाता रूप से सुख या साता रूप परिणमन अर्थात् संक्रमण—
3. कर्म बन्धन को स्थायी अवस्था से निर्बल बन्ध अवस्था में लाना अर्थात् स्थिति काण्डकघात व अनुभागकाण्ड घात—
4. कर्म बन्धन की ऊर्जा को स्थायी रूप से क्षीण करना अर्थात् अविपाक निर्जरा करने लगता है। विशेष रूप से ध्यान रखने योग्य तथ्य यह है कि इस तप, संयम आदि से उत्पन्न संघात के भी दो भेद हैं।

A यदि ऊर्जा कर्म बन्ध में प्रयुक्त ऊर्जा को क्षीण करने की क्षमता से कम है तब उस साधक जीव की 'उपशम श्रेणी' प्रारम्भ होती है अर्थात् कर्मों की निर्जरा-क्षय नहीं होती किन्तु उनका ऊर्जा के प्रभाव से कुछ समय के लिए कम हो जाता है, जिसे उपशम अवस्था कहते हैं।

B यदि उत्पन्न ऊर्जा, उस बंधन ऊर्जा के बराबर या अधिक है, तब वह उस कर्म बन्धन की ऊर्जा को क्षीण करके, उस कर्म को उदासीन करके, क्षय कर देता है, यही 'क्षपक' अवस्था है।

उपरोक्त सभी कारणों में आवश्यक ऊर्जा का परिमाण कितना हो, इसकी व्याख्या इस प्रकार से की जाती है। सामान्य या रेडियो-एकिटव तत्त्वों में जब उनका निर्खणन करना होता है अथवा उन्हें अस्थायी बनाना होता है, तब उन पर किसी कण की बौछार की जाती है किन्तु उस कण जिसे प्रक्षेप्य (Projectile) संज्ञा दी जाती है, अर्थात् प्रक्षेप्य को दी गयी ऊर्जा, यदि उस तत्त्व की बन्धन ऊर्जा से कम है, तब वह उस तत्त्व में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता तथा प्रयुक्त की गयी ऊर्जा भी व्यर्थ हो जाती है। यदि उस प्रक्षेप्य की ऊर्जा, उस लक्ष्य अर्थात् तत्त्व की बन्धन ऊर्जा के समतुल्य या अधिक है, तब वह प्रक्षेप्य परिवर्तन या परिणमन या विखण्डन कर देता है। इसी कारण आध्यात्मिक दृष्टि से आत्मा व कर्मों पर घटित करें तब जब भी किसी भी प्राणी के द्वारा सदैव ऊर्जा तो उत्पन्न होती ही है, लेकिन उसका केन्द्रीकरण या सदुपयोग न होने से व्यर्थ ही चली जाती है क्योंकि कर्म बन्ध ही ऊर्जा को कम करने, संक्रमण या क्षीण करने के बराबर नहीं है। किन्तु प्रायः साधक अपने भावों को विभावों में परिवर्तित कर देता है जिससे ऊर्जा अन्य कार्यों, अभिप्रायों में बैट्कर नष्ट हो जाती है तथा पुरुषार्थ व्यर्थ चला जाता है तथा उत्पन्न की गयी ऊर्जा भी अन्य बन्धों का कारण बन जाती है। इसी कारण साधक से अपेक्षा की जाती है जब वह स्वयं साधना करता है तो मन भटके नहीं तथा ऊर्जा व्यर्थ न जाकर सदुपयोग में व्यय हो। तीसरे गुणस्थान अर्थात् सम्यक्मिथ्यात्व या औपशमिक व क्षायोपशिक सम्यग्दर्शन में यही तो होता है। सदुपयोग होने पर क्षायिक सम्यग्दर्शन उत्पन्न होने पर साधक निरन्तर उन्नति करता है। उसका I-Q अब E-Q (Emotional Quotient) में परिवर्तित होकर Spiritual Q (S-Q) में प्रवेश करने लगता है या धीरे-धीरे भाव विशुद्धि करता हुआ, निर्ग्रंथ होकर क्षपक श्रेणी पर आता है तथा अन्त में 63 कर्म प्रकृतियों का क्षय करके फैलज्ञान व अरिहंत अवस्था पा लेता है अर्थात् भव भ्रमण में मुक्ति पा लेता है।

इस सभी गणनाओं (करण) व उनके विश्लेषण, मनन का तात्पर्य यही है कि हम अपनी ऊर्जा का सदुपयोग करें। सभी प्राणी न तो मोक्ष जा सकते हैं तथा न ही देव गति या भोगभूमि पा सकते हैं किन्तु अपने हृदय या भाव परिवर्तन से रथयं को शान्त, तनावरहित व सुखी तो रख सकते हैं। संसार में रहते हुए, अपने प्राणी कार्य करें किन्तु अहिंसक, विचारवान्, शान्त, निलिप्त रहें, फिर कैसा तनाव, कैसी अव्यवस्था, वैमनस्य, राग, द्वेष, चोरी, झूठ, निन्दा, परिग्रह, हिंसा, व्यभिचार तथा अनैतिकता ? प्रत्येक अवस्था में सन्तोषी व सुखी। यही धर्म का मर्म या रहस्य है। अतः अपनी ऊर्जा को स्वयं में केन्द्रित करें और सुखी रहें। विशेष जिजासु आचार्य श्री कनकनन्दी वृत्त 1. विविध क्रम विकास वाद एवं परम विकासवाद 2. ब्रह्माण्डीय जैविक-भौतिक एवं रसायन विज्ञान 3. अनन्त शक्ति वाप्ति परमाणु से लेकर परमात्मा आदि का अध्ययन करें।

अध्याय-७

सत्य-वचन

जिण-वयणमेव भासदि तं पालेन्दु असक्कमाणो वि ।

ववहारेण वि अलियं ण वददि जो सच्चवाई सो ॥३९८

जैन शास्त्रों में कहे हुए आचार को पालने में असमर्थ होते हुए भी जो जिन वचन का ही कथन करता है, उससे विपरीत कथन नहीं करता, तथा जो व्यवहार में भी झूठ नहीं बोलता, वह सत्यवादी है।

जैन सिद्धान्त में आचार आदि का जैसा स्वरूप कहा है वैसा ही कहना, ऐसा नहीं कि जो अपने से न पाला जाये, लोकनिन्दा के भय से उसका अन्यथा कथन करे, तथा लोक व्यवहार में भी सदा ठीक-ठीक बरतना सत्य धर्म है।

सत्यवचन के दस भेद हैं—

१. नाम सत्य २. रूप सत्य ३. स्थापना सत्य ४. प्रतीत्य सत्य ५. संवृति सत्य ६. संयोजना सत्य ७. जनपद सत्य ८. देश सत्य ९. भाव सत्य १० समय सत्य ।

१. नाम सत्य—सचेतन अथवा अचेतन वस्तु में नाम के अनुरूप गुणों के न होने पर भी लोक-व्यवहार के लिए जो इच्छानुसार नाम की प्रवृत्ति की जाती है उसे नाम सत्य कहते हैं, जैसे कि मनुष्य अपने बच्चों का इन्द्र आदि नाम रख लेते हैं।

२. रूप सत्य—मूल वस्तु के न होते हुए भी वैसा रूप होने से जो व्यवहार किया जाता है उसे रूप सत्य कहते हैं, जैसे पुरुष के चित्र में पुरुष के चैतन्य आदि धर्मों के न होने पर भी पुरुष की तरह उसका रूप होने से चित्र को पुरुष कहते हैं।

३. स्थापना सत्य—मूल वस्तु के न होते हुए भी प्रयोजन वश जो किसी वस्तु में किसी की स्थापना की जाती है उसे स्थापना सत्य कहते हैं। जैसे पाषाण की मूर्ति में चन्द्रप्रभ की स्थापना की जाती है।

४. प्रतीत्य सत्य—एक दूसरे की अपेक्षा से जो वचन कहा जाता है वह प्रतीत्य सत्य है।

५. संवृति सत्य—जो वचन लोक में प्रचलित व्यवहार के आश्रय से कहा जाता है वह संवृति सत्य है। जैसे पृथ्वी आदि अनेक कारणों से उत्पन्न होने पर भी कमल की पंकज (कीचड़ से पैदा होने वाला) कहा जाता है।

६. संयोजना सत्य—चूर्ण वगैरह से जो माण्डना वगैरह की स्थापना की जाती है उसमें जो यह कहा जाता है कि वह अमुक द्वीप है, यह अमुक जिनालय, इसे संयोजना सत्य कहते हैं।

७. जनपद सत्य—जिस देश की जो भाषा हो वैसा ही कहना जनपद सत्य है।

८. देश सत्य—ग्राम नगर आदि का कथन करने वाले वचन को देश सत्य कहते हैं। जैसे जिसके चारों ओर बाड़ हो वह गाँव है।

९. भाव सत्य—छद्मस्थ का ज्ञान वस्तु का यथार्थ दर्शन करने में असमर्थ होता है फिर भी श्रावक अथवा मुनि अपना धर्म पालने के लिए जो प्रासुक और अप्रासुक व्यवहार करते हैं वह भाव सत्य है।

१० समय सत्य—जो वस्तु आगम का विषय है उसे आगम के अनुसार ही कहना सत्य है जैसे पल्य और सागर वगैरह के प्रमाण का कथन करना।

इन सत्य वचनों को बोलने वाले मनुष्य में ही गुणों का वास रहता है। किन्तु मनुष्य झूठ बोलता है, बन्धु बान्धव और मित्रगण भी उसका विश्वास नहीं करते। इसी लोक में उसकी जीभ कटवा दी जाती थी, राजा उसका सर्वस्व छीन लेता था। अतः सत्य वचन ही बोलना चाहिए।

सत्य भाषणम्—

यस्मान्न जायते पीडा कस्यापि प्राणधारिणः ।

तदेव वचनं सत्यं भाषितं मुनिपुंगवैः ॥ १ ॥

सच्चाई क्या है? जिससे दूसरों को कुछ भी हानि न पहुँचे। उस बात का बोलना ही सच्चाई है।

संकटाकीर्ण जीवानामुद्धारकणेच्छ्या ।

कथिता साधुभिर्जातु मृषोक्तिरमृषैव सा ॥ २ ॥

उस झूठ में भी सत्यता की विशेषता है जिसके परिणाम में नियम से भलाई होती हो।

मृषात्वं यस्य विज्ञानं मनसा यदि धीमता ।

तद्वचो न प्रयोक्तव्यमनुतापोऽन्यथा भवेत् ॥ ३ ॥

जिस बात को तुम्हारा मन जानता है कि वह झूठ है, उसे कभी मत बोलो, योंकि झूठ बोलने से स्वयं तुम्हारी अन्तरात्मा ही तुम्हें जलायेगी।

सत्यक्रतेन यस्यास्ति पवित्रं मानसं सदा ।

प्रभुत्वं पर्वते तस्य सर्वेषामेव मानसे ॥ ४ ॥

देखो, जिस मनुष्य का मन असत्य से अपवित्र नहीं है, वह सबके हृदय पर शासन करेगा।

सत्ये शाश्वत कल्याणे निमग्नं यस्य मानसम् ।

ऋषिभ्यः स महान् नूनं दानिभ्यश्च वरोमतः ॥ ५ ॥

जिसका मन सत्य शीलता में निमग्न है वह पुरुष तपस्वी से भी महान् और दानी से भी श्रेष्ठ हैं।

अतः परा च का कीतिर्यन्मृषासौ न भाषते ।

एवं विधो नरो नूनं बिना क्लेशेन सिद्धिभाक् ॥ ६ ॥

मनुष्य के लिए इससे बढ़कर सुयश और कोई नहीं है कि लोगों में उसकी प्रसिद्धि हो कि वह झूठ बोलना जानता ही नहीं। ऐसा पुरुष अपने शरीर को कष्ट दिये दिना ही सब तरह की सिद्धियों को पा जाता है।

न वक्तव्यं न व्यक्तव्यंमृषावाक्यं कदाचन ।

सत्यमेव परो धर्मः किं परैधर्मं साधनैः ॥ ७ ॥

“असत्य भाषण मत करो” यदि मनुष्य इस आदेश को पालन कर सके तो उसे दूसरे धर्मों के पालन करने की आवश्यकता नहीं।

विग्लैः सलिलैर्घद्वद् गात्रं शुद्धयति देहिनाम् । १७
 एवमेव मनुष्याणां मानसं सत्यभाषणैः ॥१८
 शरीर की स्वच्छता का सम्बन्ध तो जल से है, परन्तु मन की पवित्रता सत्य भाषण से सिद्ध होती है ।
 अन्यान् सर्वविद्यान्वै प्रकाशान् मन्यते सुधीः । १९
 सत्यमेव परं ज्योतिर्विजानाति विशुद्धधीः । १९
 योग्य पुरुष और सब प्रकार के प्रकाशों को प्रकाश ही नहीं मानते केवल सत्य की ज्योति को ही वे सच्चा प्रकाश मानते हैं ।
 वहुवस्तुनि दृष्टानि तत्रैकं सारवत्तरम् ।
 इदमेव मया ज्ञातं यत्सत्यं परमोत्तमम् ॥१० कुरल काव्य
 मैंने इस संसार में बहुत—सी वस्तुएँ देखी हैं, परन्तु उनमें सत्य से बढ़कर उच्च और कोई वस्तु नहीं है ।
 यो मुखसउअतो भिख्खु, मन्तमाणी अनुद्धतो ।
 अतथं धम्मउच दीपेति मधुरं तस्स भासितं ॥१४
 जो मुख में संयम रखता है, मनन करके बोलता है, उद्धत नहीं होता है अर्थ और धर्म को प्रकट करता है उसका भाषण मधुर होता है ।
 आकक्कसं विंजापनिं गिरं सच्चं उदीरये ।
 याय नाभिसजे किंचि तमहं दूमि ब्राह्मणं ॥२६
 जो ऐसे अकर्कश, सार्थक तथा सत्य वचन को बोले जिससे कोई भी पीड़ा न होवे, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।
 एक धर्मं अतीतस्स मुलावादिस्स जन्तुनो ।
 वितिण्ण परलोकस्स नत्थि पापं अकारियां ॥११ धम्मपद
 एक धर्म का अतिक्रमण कर जो झूठ बोलता है उसे परलोक की चिन्ता से रहित पुरुष के लिए कोई पाप ऐसा नहीं रह जाता है, जो वह न कर सके ।
मधुरभाषण—
 सुस्तिनग्धा मधुरा नूनं सतां भवति भारती ।
 अकृत्रिमा दयायुक्ता पूर्णसद्भावसंभृता ॥११ कुरल काव्य
 सत् पुरुषों की वाणी ही वास्तव में सुस्तिनग्ध होती है, क्योंकि वह दयार्थी, कोमल और बनावट से खाली होती है ।
 प्रियवाण्यां सुवात्सल्ये स्तिनग्धदृष्टौ च यद्विधम् ।
 माधुर्यदृश्यते तद्वद् वृहहनानेऽपि नेक्ष्यते ॥१२
 औदर्यमय दान से भी बढ़कर सुन्दर गुण, वाणी की मधुरता, दृष्टि की स्तिनग्धता और स्नेहार्द्रता में है ।
 स्नेहपूर्णा दयादृष्टि हार्दिकी या च वाक्सुधा ।
 शतयोरेव मध्ये तु धर्मो वसति सर्वदा ॥१३
 हृदय से निकली हुई मधुर वाणी और ममतामयी स्तिनग्ध दृष्टि में ही धर्म का निवास है ।

वचनानि रसाद्ययानि यस्याहलाददिकराणि सः ।
 कदाचिल्लभते नैव दारिद्र्यं दुःखवर्द्धनम् ॥१४
 जो मनुष्य सदा ऐसी वाणी बोलता है कि सबके हृदय को आहलादित कर उसके पास दुःखों की अभिवृद्धि करने वाली दरिद्रता कभी नहीं आयेगी ।
 भूषणे द्वे मनुष्यस्य नम्रताप्रियभाषणे ।
 अन्यद्वि भूषणं शिष्टैनाहतं सम्यसंसदि ॥१५
 नम्रता और प्रिय संभाषण, बस ये ही मनुष्य के आभूषण हैं अन्य नहीं ।
 यदि ते मानसं शुद्धं वाणी चान्यहितंकरी ।
 धर्मवृद्ध्या समं तहिं विज्ञेयः पापसंक्षयः ॥१६
 यदि तुम्हारे विचार शुद्ध तथा पवित्र हैं और तुम्हारी वाणी में सहृदयता है, तो तुम्हारी पाप वृत्ति का क्षय हो जायेगा और धर्मशीलता की अभिवृद्धि होगी ।
 सेवाभावसमायुक्तं विनम्रवचनं सदा ।
 विघ्नं करोति मित्रं हि सन्त्यन्येऽपि महागुणः ७
 सेवाभाव को प्रदर्शित करने वाला और विनम्र वचन मित्र बनाता है तथा बहुत लाभ पहुँचाता है ।
 शब्दः सहृदयैः श्लाध्याः क्षुद्रतारहिताश्च ये ।
 कुर्वन्ति ते हि कल्याणमिहामुत्र च भाषिणः ॥१८
 वे शब्द जो कि सहृदयता से पूर्ण और क्षुद्रता से रहित हैं, इस लोक तथा परलोक दोनों में सुख पहुँचाते हैं ।
 श्रुतिप्रियोक्तिमाधुर्यमवगम्यापि ना कथम् ।
 न मुंचति दुरालापं किमाश्चर्वर्यमतः परम् ॥१९
 श्रुति प्रिय शब्दों का माधुर्य खच कर भी मनुष्य क्रूर शब्दों का व्यवहार करना नहीं छोड़ता ?
 अन्यदोषेण निन्द्यानामुद्धारः संभवत्यहो ।
 परं भाग्यविहीनस्य कृतृघनस्य न चास्ति सः ॥१० कुरल काव्य
 मीठे शब्दों के रहते हुए भी जो मनुष्य कङ्गे शब्दों का प्रयोग करता है, वह दोनों, के फलों को छोड़कर कच्चे फल खाता है ।
 ना पुट्ठो वागरे किंचि, पुट्ठो वा नालियं वए ।
 बिना पूछे कुछ भी न बोले, पूछने पर भी असत्य न कहे ।
 मुसं परिहरे भिख्खु, न य ओहारिणं वए ।
 भासा दोसं परिहरे, मायं च वज्जए सया ।
 मिक्षु असत्य का परिहार करें, निश्चयात्मक भाषा न बोले । भाषा के अन्य एवम् संशय आदि दोषों को भी छोड़ें । मायाकपट का सदा परित्याग करें ।
 न लवेज्ज पुट्ठो सवज्जं न निरट्ठं न मम्यं ।
 अप्यण्टरावा परद्व उभयस्त्तरेण वा ॥
 किसी के पूछने पर भी अपने लिए, दूसरों के लिए अथवा दोनों के लिए भाष्य (पापकारी) भाषण न बोले, मर्म भेदक वचन भी न कहे ।

निच्चकालप्पमतेणं मुसावायविवज्जर्णं ।

भासियवं हियं सच्चं निच्चा उत्तेण दुकरं ॥ उत्तराध्ययन

एक सदा अप्रसं भाव से मृषावाद का त्याग करना, हर क्षण सावधान रहते हुए हितकारी सत्य बोलना बहुत कठिन होता है । कृष्णाम् कि, इह दूसरे काम का सत्य का अनुभव

अनित्ये खलु संसारे किंचित् सत्यं न विद्यते ।

सत्यं पश्यन्ति ये तत्र तेषां दुःखितजीवनम् ॥ 11 कुरल काव्य पृ.सं.36,181

मिथ्या और अनित्य पदार्थों को सत्य समझने के भ्रम से ही मनुष्य को दुःखमय जीवन भोगना पड़ता है ।

मिथ्याभावविनिर्मुक्त आमदृष्टिश्च यो नरः ।

दुःखमोहौ समुच्छिद्य स शान्तिमधिगच्छति ॥ 12

जो मनुष्य भ्रमात्मक भावों से मुक्त है और जिसकी दृष्टि निर्मल है उसके लिए दुःख और अन्धकार का अन्त हो जाता है तथा आनन्द उसे प्राप्त होता है ।

असत्यं यः परित्यज्य लभते सत्यदीपकम् ।

तत्कृतेऽतिसमीपस्थः स्वर्गो भूवलयादपि ॥ 13

जिसने अनिश्चित बातों से अपने को मुक्त कर लिया है और सत्य अर्थात् आत्मा को पा लिया है, उसके लिए स्वर्ग पृथ्वी से अधिक समीप है ।

यद्यात्मन् शाश्वतं सत्यमनुभूतं न जातुचित् ।

नरयोनौ तदा जन्मग्रहणेनापि को गुणः ॥ 14

मनुष्य जैसी उच्च योनि को प्राप्त कर लेने से भी कोई लाभ नहीं, यदि आत्मा ने सत्य का आस्वादन नहीं किया ।

इयानेवात्र सत्यांशः शेषस्तप्रत्यनीकभाक् ।

इदमेव परिज्ञानं मेधाया बरलक्षणम् ॥ 15

कोई भी बात हो, उसमें सत्य को झूठ से पृथक् कर देना ही मेधा का कर्तव्य है । येन सत्यमभिज्ञातं स्वाध्यायतपसोर्बलात् ।

स धन्यो याति तद्वाम यदगत्वा न निर्वर्तने ॥ 16

वह पुरुष धन्य है जिसने गम्भीरता पूर्वक स्वाध्याय किया है और सत्य को पा लिया है । वह ऐसे मार्ग से चलेगा जिससे उसे इस संसार में न आना पड़ेगा ।

ध्यानप्रभृतियोगांगैर्येन सत्यं समर्जितम् ।

भाविजन्मसमादाने का चिन्ता तस्य योगिनः ॥ 17

निस्सन्देह जिन लोगों ने ध्यान और धारणा के द्वारा सत्य को पा लिया है उन्हें आगे वाले भवों का विचार करने की आवश्यकता नहीं ।

अविद्या भवरोगस्य जननी सर्वदेहिनाम् ।

तन्मुक्त्या सह चित्प्राप्तिरेषैव प्राज्ञता परा ॥ 18

जन्मों की जननी-अविद्या से छुटकारा पाना और सच्चिदानन्द को प्राप्त करने की चेष्टा करना बुद्धिमानी है ।

मोक्षमार्गस्य यो ज्ञाता मोहारेश्व जयोद्यतः ।

तस्य भावीनि दुःखानि यान्ति शान्तिमयलतः ॥ 19

देखो, जो पुरुष मुक्ति के साधनों को जानता है और सब मोहों को जीतने का प्रयत्न करता है, भविष्य में आने वाले सब दुःख उससे दूर हो जाते हैं ।

कामः क्रोधस्तथा मोहो यथा स्युः क्षीणशक्तिका ।

तथानुगमिदुःखानि क्षीयन्तेऽधिकमात्र्या ॥ 10

काम, क्रोध और मोह ज्यों-ज्यों मनुष्य को छोड़ते जाते हैं, दुःख भी उनका अनुसरण करके धीरे-धीरे नष्ट हो जाते हैं ।

व्यर्थ-भाषण

अर्थशून्यं वचो यस्य श्रुत्वोद्घेगः प्रजायते ।

तत्स्पर्काज्जुगुप्सन्ते लोके सर्वेऽपि मानवाः ॥ 11 कुल काव्य पृ.सं. 20,149

निरर्थक शब्दों से जो अपने श्रोताओं में उद्घेग लाता है वह सब के तिरस्कार का पात्र है ।

कलेशदानं स्वमित्रेभ्यो वरमस्तु कथंचन ।

गोष्ठ्यां किन्तु वृथालापो न श्लाध्यो निम्नताकरः ॥ 12

अपने मित्रों को दुःख देने की अपेक्षा भी अनेक लोगों के आगे व्यर्थ की बकवास करना बहुत बुरा है ।

निस्सारं दम्भपूर्णश्च व्याख्यानं यः प्रभाषते ।

नन्वाख्याति स्वयं लोके स मन्दः स्वामयोग्यताम् ॥ 13

जो निरर्थक शब्दों का आडम्बर फैलाता है वह अपनी अयोग्यता को ऊँचे तरार से घोषित करता है ।

बुधवृन्दे प्रलापेन कोऽपि लाभो न जायते ।

विद्यमानो वरांशोऽपि तत्स्मन्बन्धाद् विलीयते ॥ 14

सभा में जो व्यर्थ की बकवास करता है, उस मनुष्य को देखो, उसे और कुछ हानि का नहीं, पर जो कुछ उसके पास अच्छी बातें होंगी वे भी छोड़कर चली जावेंगी ।

योग्योऽयोग्यवद् भति व्यर्थलापपरायणः ।

सम्मानं गौरवंचास्य द्वयमेव विनश्यति ॥ 15

यदि व्यर्थ की बकवास अच्छे लोग भी करने लगें तो वे भी अपने मान और आदर को खो देंगे ।

रुचिरेवास्ति यस्याहो मोघार्थवचसां व्यये ।

तं मानवं न जानीहि ह्यपेक्ष्यं चापि कच्चरम् ॥ 16

जिसे निरर्थक बातों के करने की अभिरुचि है उसे मनुष्य ही न मानना चाहिए, कदाचित् उससे भी कोई काम आ पड़े तो समझदार आदमी उससे कचरे के बामान ही काम ले ले ।

उचितं बुधं चेद् भाति कुर्याः कर्कश भाषणम् ।

परं नैव वृथालापं यतोऽस्माद्वै तदुत्तमम् ॥ 17

यदि समझदार को योग्य मालूम पड़े तो मुख से कठोर शब्द कह ले, क्योंकि यह निरर्थक भाषण से कहीं अच्छा है।

येषां हि निरतं चिरं तत्त्वज्ञानगवेषणे ।

विकथां ते न कुर्वन्ति क्षणमात्रं महर्षयः ॥ १८ ॥

जिनके विचार बड़े-बड़े प्रश्नों को हल करने में लगे रहते हैं ऐसे लोग विकथा के शब्द अपने मुख से निकालते ही नहीं।

येषां तु महती दृष्टिर्य चैवं दीर्घदर्शिनः ।

विस्मृत्यापि न कुर्वन्ति वृथोक्तीर्ते महाधियः ॥ १९ ॥

जिनकी दृष्टि विस्तृत है वे भूल कर भी निरर्थक शब्दों का उच्चारण नहीं करते।

वाचस्ता एव वक्तव्या या: श्लाघ्याः सम्यमानवैः ।

वर्जनीयास्ततो भिन्ना अवाच्या या वृथोक्तयः ॥ १० ॥

मुख से निकालने योग्य शब्दों का ही तू उच्चारण कर, परन्तु निरर्थक अर्थात् निष्फल शब्द मुख से मत निकाल।

वाक्-पटुता

वाग्गिमत्वं हि वरीर्वर्ति वरदानं विलक्षणम् ।

तत्रांशोऽन्यस्य कस्यापि स्वतः सिद्धं तदीप्सितम् ॥ ११ ॥

कु.का.पृ.सं.६५, २३
वाक्-शक्ति निःसहेह एक बड़ा वरदान है, क्योंकि वह अन्य वरदानों का अंश नहीं किन्तु स्वतन्त्र वरदान है।

मृत्युर्वस्ति जिह्वाग्रे जिह्वाग्रे ननु जीवनम् ।

वतः सुधीर्वदेव वाणीं वाणीं विचार्यैव शुभां सदा ॥ १२ ॥

जीवन और मृत्यु जिह्वा के वश में हैं, इसलिए ध्यान रक्खो कि तुम्हारे मुँह से कोई अनुचित बात न निकले।

वाचस्ता एव सुश्लाघ्या या: सक्ताः सख्यर्वर्धने ।

रिपूणामपि कल्पन्ते हृदयाकर्षणाय च ॥ १३ ॥

जो वक्तृता मित्रों को और भी धनिष्ठा के सूत्र में आबद्ध करती है और विरोधियों को भी अपनी ओर आकर्षित करती है, वह वही यथार्थ वक्तृता है।

पर्यालोच्य नरः पूर्वं पश्चाद् भाषेत भारतीम् ।

धर्मवृद्धिरतो नान्या लाभश्चापि शुभावहः ॥ १४ ॥

हर एक बात को ठीक तरह से, तौल कर देखो और फिर जो उचित ही वही बोलो, धर्मवृद्धि बोलो, धर्मवृद्धि तथा लाभ की दृष्टि से इससे बढ़कर उपयोगी बात तुम्हारे पक्ष में और कोई नहीं है।

वाणीं सैव प्रयोक्तव्या किंचित्र हेयता ।

अनुलंघ्या च या सर्वैर्लब्धसार्वगुणोदया ॥ १५ ॥

तुम ऐसी वक्तृता दो कि जिसे दूसरी कोई वक्तृता चप न कर सके।

आशुविद् यः परार्थानां सुवक्ता चित्तकर्षकः ।

अधिकारी स एवास्ति राजनीतेर्विदांवरः ॥ १६ ॥

ऐसी वक्तृता देना कि जो श्रोताओं के हृदय को खींचले और दूसरों की पक्तृता के अर्थ शीघ्र ही समझ जाना यह पक्के राजनीतिज्ञ का कर्तव्य है।

नैव स्खलति यस्यान्तः सुवक्तुर्वादसंसदिः ।

कथं पराजयः शक्यस्तस्य निर्भीकचेतसः ॥ १७ ॥

जो आदमी सुवक्ता है और गड़बड़ाना या डरना नहीं जानता, विवाद में उसको हरा देना किसी के लिए संभव नहीं।

ओजस्वि वांगमयं यस्य विश्वास्यं परिमार्जित् ।

तदिंगिरे नरीनर्ति समस्तं वसुधातलम् ॥ १८ ॥

जिसकी वक्तृता परिमार्जित और विश्वासोत्पादक भाषा से सुसज्जित होती है सारी पृथ्वी उसके संकेत पर नाचेगी।

शब्दैः परिमितैरेव स्वाभिप्रायप्रकाशनम् ।

ये जना नैव जानन्ति तेषु वै वावदूकता ॥ १९ ॥

जो लोग अपने मन की बात थोड़े से चुने हुए शब्दों में कहना नहीं जानते वास्तव में उन्हीं को अधिक बोलने की आदत होती है।

निजार्तिं यदि ज्ञानं स्वयं व्याख्यातुमक्षमः ।

नरो न शोभते तद्वन् निर्गच्छं कुसुमं यथा ॥ १० ॥

जो लोग अपने प्राप्त किये हुए ज्ञान को समझा कर दूसरों को नहीं बता सकते वे फूल के समान हैं जो खिलता है परन्तु सुगम्भ नहीं देता।

चुगलीं से धृणा

शुभं न रोचते यस्मै कुकृत्येषु रत्नश्च यः ।
सोऽपीदं मोदते श्रुत्वा यदसौ नास्ति सूचकः ॥ ११ ॥

जो मनुष्य सदा अन्याय करता है और न्याय का कभी नाम भी नहीं लेता, उसको भी प्रसन्नता होती है, व कोई कहता—देखा, यह आदमी किसी की चुगली नहीं खाता।

शुभादशुभसंसक्तो नूनं निन्द्यस्ततोऽधिकः ।

पुरः प्रियम्बदः किन्तु पृष्ठे निन्दापरायणः ॥ १२ ॥

सत्कर्म से विमुख हो जाना और कुकर्म करना निसन्देह बुरा है, पर मुख पर हँस कर बोलना और पीठ पीछे निन्दा करना उससे भी बुरा है।

अलीकनिन्दितालापिजीवितान् मरणं वरम् ।

एवं कृते न नश्यन्ति पुण्यकार्याणि देहिनः ॥ १३ ॥

झूठ और चुगली के द्वारा जीवन व्यतीत करने से तो तत्काल ही मर जाना अच्छा है, क्योंकि इस प्रकार मर जाने से शुभकर्म का फल मिलेगा।

अवाच्यं यदि केनापि प्रत्यक्षे गदितं त्वयि ।

तस्य पृष्ठे तथापि त्वं मा भूर्निन्दापरायणः ॥ १४ ॥

पीठ पीछे किसी की निन्दा न करो, चाहे उसने तुम्हारे मुख पर ही तुम्हें गाली दी हो।

अध्याय—8

असत्य रूपी हिंसा का लक्षण

यदिदं प्रमाद—योगादसदभिधानं विधीयते किमपि ।

तदनृतमपि विज्ञेयं तदभेदाः सन्ति चत्वारः ॥ १९१ पु. सि. पृ. १५०

प्रमाद के योग से जो कुछ असत् कथन कहा जाता है वह सब झूठ है । उस असत्य के चार भेद हैं । यथा—सद्भाव को छुपाना और अशुद्ध भाव का कथन करना जैसा कि आत्मा है परन्तु परलोक नहीं है, असत्य का उद्भावन करना यथा श्याम तान्दुल के समान या अंगुष्ठ पर्व मात्र या सर्वगत अथवा निष्क्रिय आत्मा है । जो विद्यमान अर्थ है उसका भी कथन यदि कषाय तथा प्राणी पीड़ा सहित है तो वह कथन विपरीत है, असत्य है क्योंकि जो हिंसाकारक है वह सत्य होते हुए भी असत्य है । सत् प्रतिषेध तथा भूत—निहनव का एक ही अर्थ है उसमें अर्थ भेदनीय है । अभूत उद्भावन तथा असद् उद्भावन दोनों में नाम भेद होते हुए भी अर्थ भेद नहीं है । क्योंकि असद् उद्भावन का अर्थ है जो नहीं है उसको प्रकट करना ।

समीक्षा:— पहले ही आचार्य श्री ने प्रतिपादन किया था कि प्रमाद रूपी हिंसा में असत्य आदि पाप गर्भित हैं केवल प्राथमिक शिष्य को समझाने के लिये असत्य आदि का कथन विस्तारित किया जाता है । इस श्लोक में आचार्य श्री असत्य को प्रमाद में अन्तर्गत करके उसे हिंसा रूप से सिद्ध कर रहे हैं । केवल झूठ/असत्य का कथन करना मिथ्यारूपी हिंसा नहीं है परन्तु कषाय/प्रमाद से युक्त होकर सत्य भी कहना असत्य है, हिंसा है । सामान्यतः सुना जाता है और कुछ छोटी—छोटी पुस्तकों में भी पढ़ाया जाता है कि जो देखा हुआ, जो सुना हुआ उस को उसी प्रकार नहीं बोलना असत्य है परन्तु यह परिभाषा पूर्ण तथा यथार्थ नहीं है । जैसे धीवर ने एक व्यक्ति को पूछा कि मछलियाँ कहाँ हैं? उस व्यक्ति ने देखा था कि तालाब में मछलियाँ हैं । उसने बोल दिया कि उस निश्चित तालाब में मछलियाँ हैं । उस धीवर ने जाकर तालाब में जाल बिछाकर मछलियों को पकड़ लिया । तो क्या उस व्यक्ति ने जो सत्य बोला वह सत्य है? नहीं । वह सत्य सत्य नहीं है क्योंकि उससे अनेक जीवों की हिंसा हुई । इसी प्रकार काना को काने, अंधे को अंधा, लैंगडे को लैंगडा आदि बोलकर घिढ़ाना, अपमानित करना सत्य नहीं है क्योंकि उससे भाव हिंसा होती है । सत्य की संक्षिप्त सार गर्भित परिभाषा निम्न प्रकार की है—

हित—मित—प्रिय वचः जीव हित साधकम् ।

स सत्यं आगम वचः स्याद्वाद सहितम् ॥

जो वचन हितकर है, सीमित है, प्रियकर है, जीव के लिए हितकारी है, आगम अनुकूल है और स्याद्वाद सहित है वही वचन सत्य है ।

जो सत्य एवं मधुर वचन होते हुए भी यदि कुमार्ग में प्रवृत्त कराता है तो वह वस्तुतः सत्य वचन नहीं है अपितु असत्य वचन है । इसलिए वचन हितकर होना चाहिए । यथार्थ वचन भी अनर्गल प्रवृत्ति से, वाचाल स्वरूप से एवं अयोग्य

द्रव्य-क्षेत्र-कालादि से बोलने पर वे वचन सत्य नहीं हैं क्योंकि वे वचन मित विशेषण से रहित हैं। सत्य वचन भी यदि प्रिय नहीं है, कर्ण मधुर नहीं है, मृदु नहीं है और उस वचन से अप्रियता, द्वेष, कटुता पैदा होती है तो वचन भी सत्य वचन नहीं है। सर्वज्ञ प्रणीत आगम से विरोध वचन भी सत्य वचन नहीं है। इसलिए सत्यवादी को आगमानुकूल बोलना चाहिए। आगम के अनुकूल बोलते हुए भी हठग्रहिता से स्वार्थ या पंथ सिद्धि के लिए अनेकान्त-स्याद्वाद को छोड़कर अपेक्षा को दुर्लक्ष्य करके जो बोलता है वह भी बड़ा असत्य है।

झूठी गवाही देना, कोर्ट में अन्याय पक्ष को लेकर वकालत करना, दूसरों को ठगने के लिए जाल-साजी वचन कहना आदि असत्य वचन है। जो असत्य बोलता है उसको वर्तमान भव में जिहवा छेदन दण्ड मिलता है, परभव में जिहवा में एवं मुख में विभिन्न रोग होते हैं तथा उसका कोई विश्वास नहीं करता है और ऐसा असत्यभाषी परभव में मूक बनता है।

सत्य का निषेध करना हिंसा

स्वक्षेत्र-काल-भावैः सदपि हि यस्मिन् निषेध्यते वस्तु ।

तत्प्रथममसत्यं स्नयान्नास्ति यथा देवदत्तोऽत्र ॥ 192 ॥

सत्य वस्तु को भी स्वक्षेत्र काल, भाव से निषेध करना प्रथम असत्य है। जैरो-देवदत्त की उपस्थिति में देवदत्त नहीं है यह कहना। इसी प्रकार निश्चित सत्य वस्तु की विद्यमानता में भी उसका निषेध करना प्रथम असत्य है। ऐसे ही द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव, आदि की अपेक्षा विद्यमान होते हुए भी निषेध करना प्रथम असत्य है।

असत्य का कथन हिंसा

असदपि हि वस्तुरूपं, यत्र परक्षेत्र-काल भावैस्तेः ।

उद्भाव्यते द्वितीयं तदनृतमस्मिन्यथाऽस्ति घटः ॥ 193 ॥

जो पर क्षेत्र, काल, भाव से असत् होते हए भी उसे वस्तुरूप सतरूप से प्रकटीकरण करना वह द्वितीय असत्य वचन है। अविद्यमान घट को अर्थात् पर द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव में घट नहीं होते हुए भी घटरूप में कहना इसका उदाहरण है।

समीक्षा— स्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से द्रव्य सत् होते हुए भी पर द्रव्य, क्षेत्र, कालभाव की अपेक्षा उसका अस्तित्व नहीं होने से उसका अभाव है इसलिए असत् है। ऐसे असत्य का जो कथन किया जाता है वह द्वितीय असत्य है।

अन्यथा रूप कथन हिंसा

वस्तु सदपि स्वरूपा पररूपेणाऽभिधीयते यस्मिन् ।

अनृतमिदं च तृतीयं विज्ञेयं गौरिति यथा अश्व ॥ 194 ॥

स्व-स्वरूप से सत्य वस्तु को पर रूप से कथन करना यह तृतीय असत् है। यथा गौ को घोड़ा कहना। गौ स्व-स्वरूप से स्व-आकार से सत्यरूप में विद्यमान होते हुए भी उसे अश्व रूप में कथन करना तृतीय असत्य वचन है। गौ का स्वरूप अलग अस्तित्व को रखता है तथा अश्व का स्वरूप अलग अस्तित्व को रखता है। दोनों अपना-अपना अस्तित्व रखते हुए भी एक के अस्तित्व में दूसरे के अस्तित्व का

अभाव है। ऐसी परिस्थिति में एक के अस्तित्व में दूसरे का अस्तित्व आरोपित करना तृतीय असत्य है।

समीक्षा—प्राचीन चार्वाक भौतिक विज्ञानवादी रासायनिक प्रक्रिया से जायमान एक अवरथा विशेष को या शक्ति विशेष को जीव कहते हैं। यह मत ऊपर वर्णित तृतीय असत्य के अन्तर्गत है क्योंकि जीव का अस्तित्व पृथक् है और भौतिक वस्तु का अस्तित्व पृथक् है। पुदगल के अस्तित्व में जीव के अस्तित्व को मानना या आरोपित करना तृतीय असत्य का एक उदाहरण है।

अशिष्टादि कथन : हिंसा

गर्हितमवद्य—संयुतमप्रियमपि भवति वचनरूपं यत् ।

सामान्येन त्रेधा, मतमिदमनृतं तुरीयं तु ॥ 195 ॥

चर्तुर्थ प्रकार के असत्य के तीन भेद हैं यथा गर्हित, पाप संयुक्त, अप्रियरूप वचन। इसमें अभूत का उदभावन किया जाता है। जो कुत्सित वचन है उसे गर्हित वचन कहते हैं। जो पाप से संयुक्त वचन है उसे अवद्य संयुक्त वचन कहते हैं। जो अनिष्टकारी वचन है उसे अप्रिय वचन कहते हैं। मर्म को क्षत विक्षत करने वाले कठोर निन्दनीय भंगिमा युक्त चुगलखोर वचन आदि इसके अन्तर्गत हैं।

गर्हित वचन भी हिंसा

पैशून्य—हास, गर्भ, कर्कशमसमंजसं प्रलापितं च ।

अन्यदपि यदुत्सुत्रं, तत्सर्वं गर्हितं गदितम् ॥ 196 ॥

तीन प्रकार के असत्य में से यहाँ गर्हित वचन का प्ररूपण करते हैं। जो वचन पैशून्य अर्थात् चुगलखोरी/अट्टहास्य से भरा है उसे गर्हित वचन कहते हैं। पुनः जो वचन कर्कश, कठोर, असमंजस, सन्देहात्मक, असम्य, अयोग्य, वचन हैं वे भी गर्हित वचन हैं। इसी प्रकार जो बकवास से भरा गयेबाज, अधिक बोलना, उत्खंखल बोलना, भगवान् के प्रामाणिक वचन से बाह्य वचन बोलना ये सब वचन कुत्सित, गर्हित वचन हैं।

समीक्षा—उपर्युक्त वचन में विशेषतः प्रमाद, कुटिलता, धूर्ता, कठोरता, मूर्खता आदि दुर्गुण पाये जाते हैं। इससे दूसरों को कष्ट पहुँचता ही है परन्तु स्वयं की शक्ति तथा समय का दुरुपयोग होता है। अन्तरंग से दूषित भाव से प्रेरित होकर यह वचन प्रयोग करने के कारण स्वयं को तो पाप बन्ध होता ही है तथा दूसरों के गम में संकलेश परिणाम होने के कारण दूसरों के पापबन्ध का भी कारण बनता है। इतना ही नहीं उपर्युक्त वचनों से शब्द प्रदूषण होता है। कलह, तनाव, वैमनस्य बढ़ता है, फूट पड़ती है जिससे मानसिक, पारिवारिक तथा सामाजिक वातावरण प्रदूषित हो जाता है। प्रायः तुच्छ व्यक्ति उपर्युक्त वचन का प्रयोग करते हैं। मेरा स्वयं का अनुभव भारत के अधिकांश व्यक्ति वचन में ही अधिक समय तथा शक्ति का दुरुपयोग करते हैं। मन्दिर हो या स्कूल, धर्म सभा हो या संसद भवन, तीर्थस्थल हो या सामाजिक स्थल आदि तत्र सर्वत्र भारत में उपर्युक्त वचन का ही गरमागरम माहौल रहता है। महत्वपूर्ण और जरूरी विषय की चर्चा तथा चर्चा को गौण करके उपर्युक्त विषय को ही मुख्यता

देते हैं। अधिकांश अनुशासन भंग के लिए कारण उपर्युक्त कथन ही है। जो व्यक्ति वाल सुलभ बच्चों के शोर-शराबे को खराब मानकर डॉटेंगे वे ही व्यक्ति धार्मिक रथल में सार्वजनिक स्थल में यहाँ तक कि संसद भवन में असम्भ्य, बर्बर व्यक्तियों के समाज व्यवहार करेंगे।

सावद्य वचन रूपी हिंसा

छेदन—भेदन—मारण कर्षण—वाणिज्य—चौर्य वचनादि ।

तत्सावद्य यस्मात्प्राणिवधाद्याः प्रवर्तते ॥ १९७ ॥

यहाँ पाप का स्वरूप कथन कर रहे हैं। जिससे प्राणी वध आदि होता है। वह सब सावद्य है अर्थात् पाप स्वरूप है। जिस वचन से प्राणी वध आदि होते हैं। सब वचन सावद्य वचन हैं। जैसे कि छेद करो, काटो, भेदन करो, विदारण करो, मारो, प्राण से वियोग करो, कृषि करो, वाणिज्य करो, चोरी करो आदि वचन सावद्य वचन हैं। ऐसे वचन से प्राणी वधादि होते हैं इसलिए ऐसे वचन का त्याग करना चाहिए।

अप्रिय वचन रूपी हिंसा

अरतिकरं भीतिकरं खेदकरं वैरशौक—कलहकरम् ।

यदपरमपि तापकरं परस्य तत्सर्वमप्रियं ज्ञेयम् ॥ १९८ ॥

निमोक्त समस्त वाक्य अभिप्राय / अनिष्ट तथा हिंसात्मक हैं। जो वचन अरतिकर अर्थात् द्वेषकारक है तथा भीतिकर अर्थात् भयकारक हैं और भी जो खेद को करने वाला पैर को करने वाला, शोक को करने वाला, कलह को करने वाला है ये सब वचन अप्रिय वचन हैं। क्योंकि इन वचनों से दूसरे जीवों को ताप पहुँचता है, कष्ट पहुँचता है।

समीक्षा—केवल अविद्यमान को विद्यमान कहना या विद्यमान को अविद्यमान कहना असत्य वचन नहीं है। परन्तु ऐसा सत्य वचन भी असत्य है जिससे कलह आदि होता है। वचन वस्तुतः सत्य या असत्य नहीं होता है परन्तु सत्य भाव या पवित्र भाव से प्रेरित वचन सत्य है और असत्य भाव से या दूषित भाव से कहा गया वचन असत्य है। कुछ लोग कलह आदि करने के भाव से या दूसरों को अपमानित करने के भाव से वचन बोलते हैं और कहते फिरते हैं कि “मैं थोड़े झूठ बोला, जो मैंने देखा या सुना वही बोला।” परन्तु उनका भाव दूषित होने के कारण उनका वचन भी असत्य है। क्योंकि इससे दूसरों को कष्ट पहुँचता है, कलह आदि होते हैं। ऐसा कहने वाले व्यक्ति अवश्य कुटिल, मायाचारी या झगड़ालू होते हैं। इनका काम में शकुनि या मन्थरा के जैसा होता है। इन्हें लोग कलहप्रिय नारद कह कर पुकारते हैं। महाभारत या रामायण में यथार्थ रूप से कोई मन्थरा या शकुनि हो या काल्पनिक पात्र हो परन्तु इनका मनौवैज्ञानिक सद्भाव अवश्य होता है। अभी तो प्रायः परिवार से लेकर समाज और राष्ट्र तक में शकुनि एवं मन्थरा की ही भरमार है। ऐसे लोग कारण या अकारण से दूसरों को लड़ाकर, ताली बजाकर, बिना बाजे से ही नाचते रहते हैं। दूसरों को बिना लड़ाये इनका भोजन ही नहीं पचता है। अनेक लोग आराधना स्थल में जायेंगे, ब्रत, उपवास, करेंगे परन्तु कुत्तों के जैसे एक दूसरों से गुरायेंगे, भौंकेंगे। एक—दूसरे से मिलते ही बाजार हो या रास्ता या धर्म स्थल एक दूसरे की निन्दा, चुगली करने में

चुकेंगे। परन्तु आचार्य श्री ने इस श्लोक में कहा है जो ऐसे वचन बोलते हैं वे जिन द्रव्य हिंसा किये भी हिंसक ही हैं।

झूठ वचन से हिंसा

सर्वस्मिन्पास्मिन्, प्रमत्त योगैक हेतु कथनं यत् ।

अनृत वचनेऽपि तस्मान्नियतं हिंसा समवतरति ॥ १९९ ॥

उपर्युक्त समस्त कथन से सिद्ध होता है कि समस्त अनृत वचन में प्रमत्त योग

प्राण व्यपरोणात्मक हिंसा होने से समस्त असत्य वचन में हिंसा का अवतरण होता है।

हेतौ प्रमत्त योगे, निर्दिष्टे सकल वित्थ—वचनानाम् ।

हेयाऽनुष्ठानादेः अनुवदनं भवति नासत्यम् ॥ १०० ॥

प्रमत्त योग समस्त असत्य वचन के लिए कारण होने से हेय अनुष्ठान हिताहित का कथन करने पर असत्य नहीं होता है। यथा—मार्ग भ्रष्ट शिष्य को गुरु कठोर अनुशासनात्मक वचन बोलते हैं तथापि यह वचन असत्य नहीं, हिंसात्मक नहीं है क्योंकि इसमें गुरु का भाव रहता है कि शिष्य कुमार्ग से हटकर सुमार्ग पर चले। ऐसे परिस्थिति में गुरु के भाव में प्रमत्त अथवा हिंसात्मक परिणाम न होकर शुभ परिणाम होता है। इसलिए ऐसे हितकर परन्तु कठोर वचन भी अहिंसात्मक वचन ही हैं।

समीक्षा—सामान्यतः हित—मित—प्रिय वचन को सत्य वचन कहा जाता है। परन्तु गुरु के लिए मित या प्रिय वचन की अनिवार्यता नहीं है। उनके लिए हित वचन की अनिवार्यता है। कहा भी है—

रुसउ वा परो मा वा, विसं वा परियतउ ।

मासियव्वा हिया भासा सपक्ष्यगुण करिया ॥

जिसे उपदेश दिया जाता है, वह चाहे रोष करे, चाहे वह उपदेश को विष लप से समझे परन्तु उपदेशक को हितरूप वचन अवश्य कहना चाहिए।

न भवति धर्मः श्रोतुः सर्वस्त्यैकान्ततो हित श्रवणात् ।

ब्रुवतोऽनुग्रह बुध्या वक्तुस्त्वेकान्ततो भवति ॥

उपदेश सुनने वाले सभी श्रोताओं को पुण्य नहीं होता है। क्योंकि जो उपदेश अच्छी भावना से सुनता है उसे पुण्य होता है। जो शुभ भावना से नहीं सुनता है उसे पुण्य नहीं होता है। परन्तु जो परोपकारी की भावना से अनुग्रह बुद्धि से हितकर उपदेश करता है उसे अवश्य ही पुण्य होता है।

व्यर्थ झूठ छोड़ो

भोगोपभोग—साधन—मात्रं सावद्यमक्षमा मोक्तुम् ।

ये तेऽपि शेषमनृतं समस्तमपि नित्यमेव मुचन्तु ॥ १०१ ॥

भोगोपभोग साधन को जुटाने में जो सदोष वचन का त्याग करने में अक्षम हैं वे भी अन्य समस्त झूठ वचन को नित्य त्याग करें। जिस वस्तु का पुरुष एक बार सेवन करता है उसको भोग कहते हैं। यथा भोजन, पानी आदि। जिस वस्तु का पुनः सेवन किया जाता है उसे उपभोग कहते हैं। यथा स्त्री, वस्त्र, अलंकार आदि। ऐसे जो भोगोपभोग के लिये यत्किंचित् झूठ बोलना पड़ता है उसको छोड़कर की अनावश्यक अन्य समस्त सावद्य वचन को छोड़ना चाहिए।

अध्याय—९

सत्य का वैश्वीक—रूप

यः संयमधुरां धते धैर्यमालम्ब्य संयमी ।

स पालयति यत्नेन वाग्वने सत्यपादपम् ॥११ ज्ञानार्वण पृ.सं.११२

जो संयमी मुनि धैर्यबलंबन करके संयम की धुरा को (मुनिदीक्षा को) धारण करता है वह मुनि वचन रूपी वन में सत्यरूपी वृक्ष को यत्न के साथ पालन करता है।

अहिंसाव्रतरक्षार्थं यमजातं जिनैर्मतम् ।

नारोहति परां कोटिं तदेवासत्यदूषितम् ॥१२

जिनेन्द्र भगवान् ने जो यम नियमादि व्रतों का समूह कहा है वह एक मात्र अहिंसा व्रत की रक्षा के लिए ही कहा है। क्योंकि अहिंसाव्रत यदि असत्य वचन से दूषित हो तो वह उत्कृष्ट पद को प्राप्त नहीं होता अर्थात् असत्य वचन के होने से अहिंसा व्रत पूर्ण नहीं होता है।

असत्मपि तत्सत्यं यत्सत्त्वाशंसकं वचः ।

सावद्यं यच्च पुष्णाति तत्सत्यमपि निन्दितम् ॥१३

जो वचन जीवों का इष्ट हित करने वाला हो, वह असत्य हो तो भी सत्य है और जो वचन पाप सहित हिंसारूप कार्य को पुष्ट करता हो, वह सत्य भी हो तो असत्य और निन्दनीय है।

अनेकजन्मजक्लेशशुद्ध्यर्थं यस्तपस्यति ।

सर्वं सत्त्वहितं शश्वत्स ब्रूते सूनृतः वचः ॥१४

जो मुनि अनेक जन्म में उत्पन्न क्लेशों (दुःखों) की शान्ति के लिए तपश्चरण करता है वह निरंतर सत्य वचन ही बोलता है। क्योंकि असत्य वचन बोलने से मुनिपद नहीं संभवता है।

सूनृतं करुणाक्रान्तमाविरुद्धमनाकुलम् ।

अग्राम्यं गौरवाश्लिष्टं वचः शास्त्रे प्रशस्यते ॥१५

जो वचन सत्य हो, करुणा से व्याप्त हो, विरुद्ध न हो, आकुलता रहित हो, छोटे ग्रामोंकासा गँवारी वचन न हो और गौरवसहित हो अर्थात् जिसमें हल्कापन नहीं हो वही वचन शास्त्र में प्रशंसित किया गया है।

मौनमेव हितं पुंसां शश्वत्सर्वार्थसिद्धये ।

वचो वाचि प्रियं तथ्यं सर्वसत्त्वोपकारि यत् ॥१६

पुरुषों को प्रथम तो समस्त प्रयोजनों को सिद्ध करने वाला निरंतर मौन का ही अवलम्बन करना हितकारी है और यदि वचन कहना ही पड़े तो ऐसा कहना चाहिए जो सबको प्यारा हो, सत्य हो और समस्त जनों का हित करने वाला हो।

यो जिनैर्जगतां मार्गः प्रणीतोऽत्यन्तशाश्वतः ।

असत्यबलतः सोऽपि निर्दयैः कथ्यतेऽन्यथा ॥१७

जिनेन्द्र सर्वज्ञ देवाधिदेव ने निजमत के जीवों को जो अन्तरहित शाश्वत (सनातन,

मार्ग कहा है, उस मार्ग को भी निर्दय पुरुषों ने असत्य के बल से अन्यथा बर्णन किया है।

विषयी तथा कषायी पुरुष अपने विषय कषाय पुष्ट करने के लिए उत्तम मार्ग भी उत्थापन करके कुमार्ग को चलाते हैं। यह मिथ्यात्व का माहात्म्य है। संसार में मिथ्यात्व बड़ा बलवान् है।

विचर्व्यसित्यसंदोहं खलैर्लोकः खलीकृतः ।

कुशस्त्रः स्वमुखोदगीर्णरूपाद्य गहनं तमः ॥१८

दुष्ट निःसार पुरुषों ने असत्य के समूह का विशेष प्रकार से आन्दोलन करके अपने कपोल—कल्पित मिथ्या शास्त्रों द्वारा गहन अज्ञानान्धकार को उत्पन्न करके इस जगत् को दुष्ट वा निःसार बना दिया है। सो ठीक है जो स्वार्थी होते हैं वे ऐसी ही दुष्टता करते हैं, किन्तु परके हिताहित में कुछ भी विचार न करके जिस किसी प्रकार वे अपना स्वार्थ साधन करते हैं।

जयन्ति ते जगद्वन्द्या यैः सत्यकरुणामये ।

अवश्चकेऽपि लोकोऽयं पथि शश्वत्प्रतिष्ठितः ॥१९

जिन पुरुषों ने इस लोक को सत्यरूप, करुणामय तथा वंचना रहित मार्ग निरंतर चलाया वे ही जयशाली हैं और वे ही जगत् में वन्दनीय हैं।

असद्वदनवल्मी के विशाला विषसर्पिणी ।

उद्वे जयति वागेव जगदन्तर्विषोल्वणा ॥११०

दुष्ट पुरुषों के मुख रूपी वाबी में अन्तरंग में विष से उत्कृष्ट ऐसी विस्तीर्ण विषवाली जो असत्य वाणी रूपी सर्पिणी रहती है, वही जगत् भर को दुःख देती है।

न सास्ति काचिद्व्यवहारवर्तिनी न यत्र वाग्विस्फुरति प्रवर्तिका ।

ब्रुवन्सत्यामिह तां हताशयः करोति विश्वव्यवहारविप्लवम् ॥१११

इस जगत् में व्यवहार में प्रवर्तने वाली वाणी ऐसी नहीं है कि जिसमें समस्त व्यवहारों को सिद्ध करने वाली स्याद्वादरूप सत्यार्थ वाणी स्फुरायमान न हो, किन्तु ऐसी स्याद्वादरूप सत्यार्थ वाणी को भी मिथ्यादृष्टि नष्ट चित्त पुरुष असत्य कहते हुए समस्त व्यवहार का लोप करते हैं।

मिथ्यादृष्टि (सर्वथा एकान्ती) स्याद्वाद का निषेध करते हैं अतएव वह नष्टाशय हैं। क्योंकि सर्वथा एकान्त असत्य है। उस असत्य वचन से न तो लोकव्यवहार की सिद्धि होती है और न धर्म व्यवहार की ही सिद्धि होती है। ऐसे असत्य वचनों को कहते हुए मिथ्यादृष्टि समस्त व्यवहारों का लोप करते हैं।

पृष्ठैरपि न वक्तव्यं न श्रोतव्यं कथंचन ।

वचः शंकाकुलं पापं दोषाद्यं वाभिसूयकम् ॥११२

जो वचन सन्देह रूप हो तथा पापरूप हो और दोषों से संयुक्त हो एवं ईर्ष्या को उत्पन्न करने वाला हो वह अन्य के पूछने पर भी नहीं कहना चाहिए तथा किसी प्रकार सुनना भी नहीं चाहिए। निषिद्धवचन का प्रसंग भी नहीं करना चाहिए।

तांग ॥ मर्मच्छेदि मनःशल्यं च्युतस्थैर्यं विरोधकम् । मर्म इति उक्तं ग्रन्थं (ज्ञानी निर्देशं च वचस्त्याज्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥ १३

तथा मर्म का छेदने वाला, मन में शल्य उपजाने वाला, स्थिरता रहित (चंचलरूप), विरोध उपजाने वाला तथा दया रहित वचन कण्ठगत प्राण होने पर भी नहीं बोलना चाहिए ।

धन्यास्ते हृदये येषामुदीर्णः करणाम्बुधिः ।

वाग्वचिसंचयोल्लासैर्निर्वापयति देहिनः ॥ १४

इस जगत में वे पुरुष धन्य हैं, जिनके-हृदय में करुणा रूप समुद्र उदय होकर वचन रूप लहरों के समूहों के उल्लासों से जीवों को शान्ति प्रदान करता है। करुणा रूप वचनों को सुन कर दुखी जीव भी सुखी हो जाते हैं ।

बिना पूछे भी कहने योग्य

धर्मनाशे क्रियाधर्वसे सुसिद्धान्तार्थविप्लवे ।

अपृष्टैरपि वक्तव्यं तत्स्वरूपं प्रकाशने ॥ १५

जहाँ धर्म का नाश हो, क्रिया बिगड़ती हो तथा समीचीन सिद्धान्त का लोप होता हो, उस जगह समीचीन धर्मक्रिया और सिद्धान्त के प्रकाशनार्थ बिना पूछे भी विद्वानों को बोलना चाहिए। क्योंकि वह सत्पुरुषों का कार्य है ।

या मुहुर्मौहयत्येव विश्रान्ता कर्णयोर्जनम् ।

विषमं विषमुत्सृज्य साऽवश्यं पन्नगी न गीः ॥ १६

जो वाणी लोक के कानों में बारबार पड़ी हुई तथा विष विषको उगलती हुई जीवों को मोहरूप करती है और समीचीन मार्ग को भुलाती है वह वाणी नहीं है किन्तु सर्पिणी है। जिन वचनों को सुनते ही संसारी प्राणी उत्तम मार्ग को छोड़कर कुमार्ग में पड़ जाय वह वचन सर्प के समान हैं ।

प्राप्तुवन्त्यतिघोरेषु रौरवादिषु संभवम् ।

निर्यक्षथं निगोदेषु मृषावाकयेन देहिनः ॥ १७

इस असत्य वचन से प्राणी अति तीव्र रौरवादि नरकों के बिलों में तथा तिर्यग्योनि एवं निगोद में उत्पन्न हुए दुःखों को प्राप्त होते हैं ।

न तथा चन्दनं चन्द्रो मणयो मालतीसजः ।

कुर्वन्ति निवृतिं पुंसां यथा वाणी श्रुतिप्रिया ॥ १८

जीवों को जिस प्रकार कर्णप्रिय वाणी सुखी करती है, उसी प्रकार चन्दन चन्द्रमा चन्द्रमणि, मोती तथा मालती के पुष्पों की माला आदि शीतल पदार्थ सुखी नहीं कर सकते हैं यह प्रसिद्ध लोकोक्ति है ।

अपि दावानलप्लुप्तं शाख्वलं जायते वनम् ।

न लोकः सुचिरेणापि जिह्वानलकदर्थितः ॥ १९

दावानल अग्नि से दग्ध हुआ वन तो किसी काल में हरित (हरा) हो भी जाता है परन्तु जिह्वा रूपी अग्नि से (कठोर मर्मच्छेदी वचनों से) पीड़ित हुआ लोक बहुत काल बीत जाने पर भी हरित (प्रसन्नमुख) नहीं होता। दुर्वचन का दाह मिटना कठिन है ।

सर्वलोकप्रिये तथ्यं प्रसन्ने ललिताक्षरे ।

वाक्ये सत्यपि किं ब्रूते निकृष्टः परुषं वचः ॥ २२

जो वचन सर्वलोक को प्रिय, सत्य तथा प्रसन्न करने वाले व ललिताक्षरवाले हैं उनके होते हुए भी नीच पुरुष कठोर वचन किसलिए कहते हैं, सो मालूम नहीं होता है ।

सतां विज्ञाततत्त्वानां सत्यशीलावलभिनाम् ।

चरणस्पर्शमात्रेण विशुद्धयति धरातलम् ॥ २३

जो महान् पुरुष सत्य वचन बोलने वाले हैं; तत्त्वों के यथार्थ स्वरूप को जानते हैं और सत्य शीलता के अवलंबी हैं उनके चरणों के स्पर्श मात्र से यह धरातल पवित्र होता है। ऐसे ही लोग उत्तम पुरुष हैं और जो असत्य बोलते हैं, वे ही नीच हैं।

यमव्रतगुणोपेतं सत्यश्रुतसमन्वितम् ।

यैर्जन्म सफलं नीतं ते धन्या धीमतां मताः ॥ २४

जिन पुरुषों ने अपना जन्म यमव्रतादि गुणों से युक्त सत्य शास्त्रों के अध्ययन पूर्वक सफल किया है, वे ही धन्य और विद्वानों के द्वारा पूजनीय हैं।

नृजन्मन्यपि यः सत्यप्रतिज्ञाप्रच्युतोऽधमः ।

स केन कर्मणा पश्चाज्जन्मप्रकातरिष्यति ॥ २५

जो अधम पापी नीच पुरुष मनुष्य जन्म पाकर भी सत्य प्रतिज्ञा से रहित है वह पापी फिर संसार रूप कर्दम से किस कार्य से पार होगा ?

तरने का अवसर तो मनुष्य जन्म ही है। इसमें ही धर्माचरण तथा प्रतिज्ञादि बन सकते हैं। इसके चले जाने पर फिर तरने का अवसर प्राप्त होना कठिन है, अतएव मनुष्य जन्म को सत्यशीलादि से सफल करना चाहिए।

अदयैः संप्रयुक्तानि वाक्छस्त्राणीह भूतले ।

सद्यो मर्माणि कृत्तन्ति शितास्त्राणीव देहिनाम् ॥ २६

निर्दय पुरुषों के द्वारा चलाये हुए वचन रूप शस्त्र इस पृथ्वीतल पर जीवों ने मर्म को तीक्ष्ण शास्त्रों के समान तत्काल छेदन करते हैं, क्योंकि असत्य वचन के समान दूसरा कोई भी शस्त्र नहीं है।

व्रतश्रुतयमस्थानं विद्याविनयभूषणं ।

चरणज्ञानयोर्बीजं सत्यसंज्ञं ब्रतं मतम् ॥ २७

यह सत्यनामा व्रत, श्रुत और यमोंका तो स्थान है तथा विद्या और विनय का भूषण है। क्योंकि विद्या और विनय सत्य वचन से ही शोभा को प्राप्त होते हैं। और सम्यक्यारित्र तथा सम्यग्ज्ञान का बीज उत्पन्न करने का कारण सत्य वचन ही है।

न हि सत्यप्रतिज्ञस्य पुण्यकर्मावलभिनः ।

प्रत्यूहकरणे शक्ता अति दैत्योरगादयः ॥ २८

सत्य प्रतिज्ञा वाले पुण्य कर्मावलंबी पुरुष का दुष्ट दैत्य तथा सर्पादिक कुछ बुरा करने को समर्थ नहीं हो सकते हैं।

चन्द्रमूर्तिरिवानन्दं वर्द्धयन्ती जगत्रये ।

स्वर्गिभिर्ध्यर्थं यते मूर्धा कीर्तिः सत्योत्थिता नृणां ॥ २९

तीन लोक में चन्द्रमा के समान आनन्द को बढ़ाने वाली सत्य वचन से उत्पन्न हुई मनुष्यों की कीर्ति को देवता भी मस्तक पर धारण करते हैं।

खण्डितानां विरुपाणां दुर्विधानां च रोगिणाम् ।
कुलजात्यादिहीनानां सत्यमेकं विभूषणं ॥ 130 ॥

जिनके हाथ नाक आदि अवयव कर्टे हों तथा जो विश्वप हो और जो दरिद्री तथा रोगी हों वा कुल जात्यादि से हीन हों उनका भूषण सत्यवचन बोलना ही है अर्थात् यही उनकी शोभा करने वाला है। क्योंकि जो उक्त समस्त बातों से हीन और सत्य वचन बोलता हो, उसकी सब कोई प्रसंशा करते हैं।

यस्तपस्वी जटी मुण्डो नग्नो वा चीवरावृतः ।
सोऽप्यसत्यं यदि ब्रूते निन्द्यः स्यादन्त्यजादपि ॥ 131 ॥

जो तपस्वी हो, जटाधारी हो, मस्तक मुण्डाये हो अथवा नग्न (दिग्म्बर) हो, वा वस्त्र-धारी हो और असत्य बोलता हो तो वह चंडाल से बुरा और अतिशय निंदनीय है।

कुटुम्बं जीवितं वित्तं यद्यसत्येन वर्द्धते ।
तथापि युज्यते वक्तुं नासत्यं शीलशालिभिः ॥ 132 ॥

यदि असत्य वचन से अपने कुटुम्ब, जीवन और धन की वृद्धि हो तो भी शील से शोभित पुरुषों को असत्य वचन कहना उचित नहीं है।

एकतः सकलं पापं असत्योत्थं ततोऽन्यतः ।
साम्यमेव वदन्त्यार्यास्तुलायां धृतयोस्तयोः ॥ 133 ॥

आर्य पुरुषों ने तराजू में एक तरफ तो समस्त पापों को रक्खा और एक तरफ असत्य से उत्पन्न हुए पाप को रख कर तौला तो दोनों समान हुए। असत्य अकेला ही समस्त पापों के बराबर है।

असत्य से विभिन्न रोग
मूर्कता मतिवैकल्यं मूर्खता बोधविच्युतिः ।

बाधिर्य मुखरोगित्वमसत्यादेव देहिनाम् ॥ 134 ॥

गुंगापन, बुद्धि की विकलता, मूर्खता, अज्ञानता, बधिरता तथा मुख में रोग होना इत्यादि जो सब ही जीवों के होते हैं, वे असत्य वचन बोलने के पाप से ही होते हैं।

श्वापाकोलूकमर्जारवृकगोमायुमण्डलाः ।
स्वीक्रियन्ते कवचिल्लोकैन सत्यच्युत्येतसः ॥ 135 ॥

चण्डल, उल्लू (धूप), बिलाव, भेडिया और कृत्ता आदि यद्यपि निंदित हैं तथापि इन्हें अनेक लोग अंगीकार करते हैं, परन्तु असत्यवादियों को कोई अंगीकार नहीं करता, अतएव असत्यवादी इन सब से भी अधिक निंदनीय हैं।

प्रसन्नोन्नतवृत्तानां गुणानां चन्द्ररोधिषां
संघातं धातयत्येव सकृदप्युदितं मृषा ॥ 136 ॥

एक बार बोला हुआ असत्य वचन चन्द्रमा की किरणों के समान प्रसन्न (निर्मल) तथा उन्नत गुणों के समूह को नष्ट करता है। असत्य वचन ऐसा मलिन है कि चंद्रवत् निर्मल गुणों को भी मलिन कर देता है।

न हि स्वन्धेपि संसर्गमसत्यमलिनैः सह ।

कश्चित्करोति पुण्यात्मा दुरितोल्मुकशंकाया ॥ 137 ॥

जो असत्य से मलिन पुरुष हैं, उनके साथ पापरूप कालिमा के भय से कोई पुण्यात्मा पुरुष स्वज्ञ में भी साक्षात् (मुलाकात) नहीं करते। झूठे की संगत से सच्चे को भी कालिमा लगती है।

जगद्धन्ये सतां सेव्ये भव्यव्यसनशुद्धिदे ।

शुभे कर्मणि योग्यः स्यान्नासत्यमलिनौ जनः ॥ 138 ॥

जगत् के वंदनीय, सत्पुरुषों के पूजनीय, संसार के कष्ट, आपदाओं से शुद्धि को देने वाले शुभ कार्यों में असत्य से मैले पुरुष योग्य नहीं गिने जाते। शुभ कार्यों में झूठे का अधिकार नहीं है।

महामतिभिर्ष्वच्युतं देवदैवैर्निषेधितम् ।

असत्यं पोषितं पापैर्दुःशीलाधमनास्तिकैः ॥ 139 ॥

बड़े-बड़े बुद्धिमानों ने तो असत्य वचन को त्याग दिया है और देवाधिदेव सर्वज्ञ वीतराग ने इसका निषेध किया है, किन्तु खोटे स्वभाव वाले नीच नास्तिक पापियों ने इसका पोषण किया है। ठीक ही है पापियों को पाप ही इष्ट होता है। महापुरुष जिसकी निंदा करते हैं, नीच उसकी प्रशंसा किया ही करते हैं।

सुतस्वजनदारादिवित्तबन्धुकृतेऽथवा ।

आत्मार्थं न वचोऽसत्यं वाच्यं प्राणात्ययेऽथवा ॥ 140 ॥

पुत्र, स्वजन, स्त्री, धन, और मित्रों के लिए अथवा अपने लिये प्राण जाने पर भी असत्य वचन नहीं बोलना चाहिए, यही उपदेश है।

परोपरोधादतिनिन्दितं वचो बुवन्नरो गच्छति नारकीं पुरी ।

अनिन्द्यवृत्तोऽपि गुणी नरेश्वरे वसुर्यथाङ्गादिति लोकविश्रुतिः ॥ 141 ॥

मनुष्य अन्य के अनुरोध से (प्रार्थना से) अन्य के लिए अति निन्दनीय असत्य कह कर नरकपुरी को चला जाता है। जैसे वसु राजा अनिन्द्या आचरण वाला और गुणी था, परन्तु अपने सहाय्यायी गुरुपुत्र (पर्वत) के लिए झूठी साक्षी देने से नरक को गया। यह जगत्प्रसिद्ध वार्ता है (इसकी कथा पुराणों में प्रसिद्ध है)। इस कारण पर के लिए भी झूठ बोलना नरक को ले जाता है।

चंचन्मस्तकमौलिरत्नविकटज्योतिश्छटाडम्बरै—

देवाः पल्लवयन्ति यच्चरणयोः पीठे लुठन्तोऽप्यमी ।

कुर्वन्ति ग्रहलोकपालखचरा यत् प्रातिहार्यं नृणां

शास्त्रान्ति ज्वलनादयश्च नियतं तत्सत्यवाचः फलम् ॥ 142 ॥

जगत्प्रसिद्ध देव भी अपने देवीप्यमान (चमकते हुए) मस्तक परके मुकुटों के रत्नों की उत्कृष्ट ज्योति की छटा के आंडबरों से जिन मनुष्यों के चरण युगलों के नीचे के सिंहासन के निकट लोटते हुए चरणों की शोभा को प्रफुल्लित करते हैं (बढ़ाते हैं) तथा सूर्यादिक ग्रह, लोकपाल और विद्याधर जिनके द्वार पर द्वारपाल होकर रहते हैं और अग्नि, जलादिक नियम से उपशम रूप हो जाते हैं, उनके सत्य वचन बोलने का ही यह फल है।

जिन मनुष्यों की सेवा प्रसिद्ध देवादिक भी करते हैं, ऐसे महान् पुरुष तीर्थकर तथा चक्रवर्त्यादि होते हैं। उनके अपिन में प्रवेश करने पर और जल में गिरने पर भी वे (अग्न्यादि) उनकी सहायता करते हैं। यह सब सत्य वचन का ही फल है।

अध्याय-10
सत्य महाव्रत

रागादीहि असच्चं चत्ता परतावसच्चवयणुतिं ।
सुत्तथाणविकहणे अयधावयणुज्ञाणं सच्चं ॥१६ मूलाचार पृ. सं. 12
रागादि के द्वारा असत्य बोलने का त्याग करना और पर को ताप करने वाले
वनों को भी कथन का त्याग करना तथा सूत्र और अर्थ के कहने में अयथार्थ
त्याग करना सत्य महाब्रत है ।

राग—स्नेह है आदि में जिनके वे रागादि हैं। उन रागादि—राग, द्वेष मोह आदि के द्वारा और पैशून्य, ईर्षा आदि के द्वारा असत्य वचनों का त्याग करना। पर प्राणियों को जो तपाते हैं, पीड़ा देते हैं वे वचन परताप कहलाते हैं। ऐसे सत्य वचन भी अर्थात् जिस सत्य वचन के द्वारा भी परजीवों को परिताप आदि होते हैं तो उन सत्य वचनों को भी छोड़ देवे। जो जैसे के तैसे नहीं हैं वे अन्यथा वचन हैं अर्थात् अपरमार्थ वचन हैं। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव आदि की अपेक्षा न करके सर्वथा अस्ति एवं—सर्वथा ऐसा ही है इत्यादि प्रकार के सभी वचनों का परिहार करना अयथा वचन त्याग योग्य है। अथवा सदाचारी आचार्य के द्वारा अन्यथा अर्थ कर देने पर भी दोष नहीं है अर्थात् यदि आचार्य सदाचार प्रवृत्तिवाले पापभीरु हैं और कदाचित् अर्थ का वर्णन करते समय कुछ अन्यथा बोल जाते हैं या उनके वचन स्खलित हो जाते हैं तो उसे दोष रूप नहीं समझना।

द्वादशांग अंग और चौदह पूर्वसूत्र कहलाते हैं। जीवादि पदार्थ अर्थ शब्द से कहे जाते हैं। इन सूत्र और अर्थ के प्रतिपादन करने में अयथा वचन का त्याग करना अर्थात् सूत्र और अर्थ का अन्यथा कथन नहीं करना। अथवा सदाचार प्रवृत्ति वाले आचार्य के वचन स्खलन में दोष का अभाव मानना सत्य है। तात्पर्य यह है कि रागादि के द्वारा असत्य वचन और असत्य अभिप्राय को छोड़कर, पर के तापकारी ऐसे सत्यवचनों को भी छोड़ करके तथा सूत्र और अर्थ के अन्यथा कथन रूप वचन को भी छोड़ करके अथवा आचार्यादि के वचन स्खलन में दोष को छोड़ कर अर्थात् दोष को न ग्रहण करके जो वचन बोलना है वह सत्य व्रत है।

सत्य वचन के 10 भेद

जनपदसम्मदरवणा पामे रुवे पदुच्चसच्चे य ।
 संभावणवहारे भावे ओपम्मसच्चे य ॥३०८ मूलाचार
 जनपद, सम्मत, स्थापना, नाम, रूप, प्रतीत्य, संभावना, व्यवहार, भाव और
 इनके विषय में वचन सत्यवचन हैं । सत्य शब्द का प्रत्येक के साथ सम्बन्ध कर
 ाहिए । जनपदसत्य, बहुजनसम्मतसत्य, स्थापनासत्य, नामसत्य, रूपसत्य,
 सत्य—अन्य की अपेक्षा सत्य, संभावनासत्य, व्यवहारसत्य, भाव सत्य और
 सत्य । इस प्रकार से दृश्यभेद रूप इन सत्य वचनों को बोलना चाहिए ।

दश भेद रूप सत्य का विस्तृत वर्णन

जणपदसच्चं जधं ओदणादि य वुच्चदियसवभासेण । ३०८
बहुजनसम्मदमवि होदि जं तु लोए जहा देवी । ३०९

सत्य देव प्रार्थना सुनो

आ. श्री गृप्तिनन्दीजी

विश्व में सद ज्ञान का प्रचार हो सत्यदेव वन्दना सुनो।
अपेरकंतवाद पाप विचार दो सत्यादेव पार्थना सनो ॥

सत्य हेतु विश्व का हर एक प्राणी मित्र हो।

विश्व के बन्धुत्व का सद्भावमय सुचित्र हो।

भाषा जाति राष्ट्र धर्म की लड़ाई छोड़कर।

सत्य के उत्थान का विचार यह पावत्र है। वाणी में सापेक्ष का उद्यार हो... सत्यदेव प्रार्थना....

सूत्र वे स्वतंत्रा के आज हमको मिल गये।

साम्यवाद सत्य शोध के प्रसून खिल गये।

धर्म ज्ञान के अमाघ नय मत्र मिल गय |
प्रकृता अस्वप्नीता ह संगतज्ञ में प्रबल गये |

धर्म से विज्ञान का उभार हो—सत्य देव...
१४५

देश की रक्षा में जो स्वयं को भेंट कर रहे।

जो उदार भाव से सभी का पेट भर रहे।

शूरु स्वार्थ दम का विषला लप छाड़कर।
शील सदाचार की अमोल भेंट कर रहे।

गोष्ठी में सभी का सहकार हो— सत्यदेव..

वर्धमान जैसी वीतरागता को पा सके।

राम राणा इसा सी महानता का ला सक।
मातृनीति के अन्तर्गत दापेंच स्लोडकर।

चन्द्रगुप्त मौर्य सा अखण्डभाव आ सके।

वोट नोट का नहीं विकार हो.. सत्य देव..

କାହିଁ କି କାହିଁ ପାଇଁ କିମ୍ବା କିମ୍ବା କିମ୍ବା କିମ୍ବା କିମ୍ବା

जनपदसत्य, जैसे सभी भाषाओं में व्यवहृत ओदन आदि शब्द। बहुजन सम्मत सत्य भी यह है कि जैसे लोक में मानुषी को महादेवी कहना।

जनपदसत्य अर्थात् देशसत्य। जैसे जनपद की सभी भाषाओं में ओदन (भात) आदि को अन्य—अन्य शब्दों से कहा जाता है। द्रविड़ भाषा में ओदन को ‘चौर’ कहते हैं, कर्णाटक भाषा में ‘कुल’ कहते हैं और गौड़ भाषा में ‘भक्त’ कहते हैं। ऐसे ही नाना देशों में उन—उन भाषाओं के द्वारा कहा गया ओदन जनपद सत्य है ऐसा तुम जानो। जो बहुत जनों को सम्मत है वह भी सत्य है। जैसे किसी मनुष्य—स्त्री को भी लोक में महादेवी कहते हैं और जैसे ‘देव बरसता है’ इत्यादि वचन लोकसम्मत सत्य है। अर्थात् मेघ बरसता है किन्तु व्यवहार में लोग कहते हैं कि देव बरसता है यह सम्मत सत्य है। अर्थात् मेघ बरसता है किन्तु व्यवहार में लोग कहते हैं कि देव बरसता है यह सम्मत सत्य है। इन वचनों में यह ‘ऐसा नहीं है’ ऐसा कहकर आप प्रतिबन्ध नहीं लगा सकते; और आप प्रतिबन्ध लगायेंगे तो आपके सत्यवचन भी असत्य कहे जायेंगे। इस गाथा में जनपद सत्य और सम्मत सत्य को कहा है।

ठवणा ठविदं जह देवदादि णामं च देवदत्तादि।

उक्कडररोतिं वण्णे रूवे सेओ जध बलाया ॥ 310 ॥

जिसमें स्थापना की गई है वह स्थापना—सत्य है; जैसे यह देवता है, इत्यादि। नामकरण को नाम सत्य कहते हैं; जैसे देवदत्त आदि। रूप में वर्ण उत्कृष्टता से कहना रूपसत्य है, जैसे बगुला सफेद है।

यद्यपि देवता आदि की प्रतिमाएँ स्थापना निक्षेप के द्वारा स्थापित की गई हैं। उसी प्रकार से देवदत्त आदि नाम रखे जाते हैं। उनमें देवता आदि का स्वरूप विद्यमान नहीं है और न ही देवदत्त आदि पुरुष देवों के द्वारा दिये गये हैं फिर भी, व्यवहार नय की अपेक्षा से सज्जन पुरुषों द्वारा वे स्थापनासत्य और नामसत्य कहे जाते हैं। अर्थात् अर्हन्त प्रतिमा, सिद्ध प्रतिमा आदि तथा नागयक्ष की प्रतिमा और इन्द्र प्रतिमा आदि जो हैं वे सभी स्थापना सत्य हैं। तथा देवदत्त, इन्द्रदत्त, यज्ञदत्त और विष्णुमित्र इत्यादि प्रकार के वचन नाम सत्य हैं अर्थात् देवदत्त को देव ने नहीं दिया है, इन्द्रदत्त को इन्द्र ने नहीं दिया है इत्यादि; फिर भी नामकरण से उन्हें उसी नाम से जाना जाता है।

उसी प्रकार से वर्ण से उत्कृष्टतर होने से बगुला को सफेद कहते हैं। यद्यपि उस बगुला में लाल चौंच, काली आँखें आदि अन्य अनेक रूप सम्भव हैं फिर भी श्वेत वर्ण इसमें उत्कृष्टतर होने से इसे श्वेत कहते हैं, क्योंकि अन्य वर्ण वहाँ पर अविवक्षित हैं इसलिए यह रूपसत्य द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से वाच्य है।

किसी वस्तु में यह वही है ऐसी स्थापना स्थापनासत्य है, जैसे पाषाण की प्रतिमा में यह महावीर प्रभु है। किसी में जाति आदि गुण की अपेक्षा न करके नाम रख देना यह नाम सत्य है; जैसे किसी बालक का नाम आदीश कुमार रखा जाना। किसी वस्तु में अनेक वर्ण होने पर भी उसमें जो प्रधान है, अधिक है उसी की अपेक्षा रखना यह रूपसत्य है जैसे बगुला सफेद होता है। यहाँ तीन प्रकार के सत्य का वर्णन हुआ।

अण्णं अपेक्खसिद्धं पदुच्चसच्चं जहा हवदि दिग्धं।

ववहारेण य सच्चं रज्जदि कूरो जहा लोए ॥ 311 ॥

अन्य की अपेक्षा करके जो सिद्ध हो वह प्रतीति सत्य है; जैसे किसी हस्त की अपेक्षा करके कहना कि यह दीर्घ है। व्यवहार से कथन व्यवहार सत्य है; जैसे भात पकाया जाता है ऐसा कथन लोक में देखा जाता है।

अन्य वस्तु की अपेक्षा करके जो कुछ कहा जाता है वह प्रतीत्य सत्य है; जैसे किसी हस्त की अपेक्षा करके कहना कि यह दीर्घ है। एक वित्तस्ति के प्रमाण से एक हाथ दीर्घ है, उसी प्रकार से दो हाथ प्रमाण से पाँच हाथ प्रमाण बड़ा है और पाँच हाथ गात्र से दश हाथ का प्रमाण बड़ा है, इस प्रकार से मेरु पर्यन्त तक भी आप बड़े की व्यवस्था कर सकते हैं। तीन लोक में सबसे बड़ा मेरु पर्वत है।

उसी प्रकार से हस्त, गोल और चौकोन आदि भी एक दूसरे की अपेक्षा से ही हैं। तथा कुरुप—सुरुप, पण्डित—मूर्ख, पूर्व—पश्चिम ये सब एक—दूसरे को अपेक्षित करके होते हैं अतः इनका कथन अपेक्ष्य सत्य या प्रतीत्य सत्य है। इसमें किसी को विवाद नहीं करना चाहिए। उसी प्रकार भात पकाया जाता है, मंडे—रोटी या पुआ पकाये जाते हैं। इत्यादि प्रकार के वचन लोक में देखे जाते हैं यह सब व्यवहार सत्य है। इसमें भी विवाद नहीं करना चाहिए। वास्तव में यदि भात पकाया जावे तो वह भस्म हो जाए, और यदि रोटी पकायी जावे तो भी भस्मीभूत हो जाएँ, किन्तु फिर भी व्यवहार में वैसा कथन होता है अतः यह व्यवहार सत्य है। यहाँ पर प्रतीत्य सत्य और व्यवहार सत्य इन दो का लक्षण बताया है।

संभावणा य सच्चं जदि णामेच्छेज्ज एव कुज्जंति।

जदि सक्को इच्छेज्जो जंबूदीवं हि पल्लत्थे ॥ 312 ॥

यदि चाहे तो ऐसा कर डालें ऐसा कथन सम्भावना सत्य है। यदि इन्द्र चाहे तो जम्बूदीप को पलट दे।

यदि यह ऐसी इच्छा करे तो कर डाले जो ऐसा कथन है वह सम्भावना सत्य है। जो सम्भावित किया जाता है उसे सम्भावना कहते हैं। इसके दो भेद हैं—अभिनीत और अनभिनीत। जो शक्यानुष्ठानलूप वचन हैं अर्थात् जिनका करना शक्य है वे वचन अभिनीत सम्भावना सत्य हैं और जिसकी सामर्थ्य तो है किन्तु वैसा करते नहीं हैं ऐसे (अशक्यानुष्ठान) वचन अनभिनीत सम्भावना सत्य है। जैसे; इन्द्र चाहे तो जम्बूदीप को पलट दे; इस वचन में इन्द्र की यह सामर्थ्य सम्भावित की जा रही है कि यह चाहे तो जम्बूदीप को अन्य रूप कर सकता है किन्तु वह ऐसा कभी करता नहीं है। और भी उदाहरण हैं, जैसे यह शिर से पर्वत को फोड़ सकता है, ये सभी वचन अनभिनीत सम्भावना सत्य रूप हैं। यदि चाहे तो प्रस्थ (सेरे भर) खा जावे, यह अपनी भुजाओं से गंगा को तिर सकता है। यह सब वचन अभिनीत सम्भावना सत्य है। इस प्रकार से सम्भाव्य और असम्भाव्य के भेद से सम्भावना सत्य दो प्रकार का है। अर्थात् सम्भावित होने योग्य और न होने योग्य की अपेक्षा अथवा अभिनीत—शक्य और अनभिनीत अशक्य की अपेक्षा से इस सत्य के दो भेद हो जाते हैं।

असत्य—वचन

हिंसादिदोसविजुदं सच्चमक्षिप्यवि भावदो भावं।

ओवम्भेण दु सच्चं जाणसु पलिदोवमादीया ॥ 313 ॥

हिंसा आदि दोष से रहित भाव से अकलिप्त भी वचन भाव सत्य हैं और उपमा से कहे गये पल्योपम आदि उपमा सत्य हैं।

हिंसा, वौर्य अब्रह्म, परिग्रह आदि को ग्रहण करने वाले वचनों से रहित यथा हिंसादि दोष रहित है, अकलिप्त भी अर्थात् अयोग्य भी वचन परमार्थ से सत्य होने वे भाव सत्य हैं। जैसे किसी ने पूछा, 'तुमने चोर देखा है तो कहना कि मैंने नहीं देखा है' यद्यपि ये वचन असत्य हीं हैं किर भी परमार्थ से सत्य हैं क्योंकि हिंसादि दोषों से रहित हैं। इसी तरह जिन किन्हीं वचनों से इहलोक और परलोक के प्रति पर को पीछा उत्पन्न होती है अर्थात् जिन वचनों से इहलोक परलोक बिगड़ता है और पर को कष्ट होता है वे सभी वचन सत्य होकर भी त्याग ने योग्य हैं, क्योंकि राग-द्वेष से सहित हैं। तात्पर्य यह है कि हिंसादि दोषों से सहित वचन सत्य भी हों तो भी नहीं बोलना चाहिए। इसी का नाम भावसत्य है।

उपमा से युक्त जो वचन हैं वे भी सत्य हैं ऐसा समझो। जैसे पल्योपम आदि वचन, ये वचन उपमा मात्र ही हैं। क्योंकि किसी के द्वारा भी योजन प्रमाण का गङ्गा रोमों के अतीव सूक्ष्म-सूक्ष्म टुकड़ों से भरा नहीं जा सकता है। इसी प्रकार से सागर, राजु, प्रतरांगुल, सूच्यंगुल, धनांगुल, श्रेणी, लोकप्रतर और लोक ये सभी उपमावचन हैं। तथा 'चन्द्रमुखी कन्या इत्यादि वचन भी उपमान वचन होने से उपमासत्य वचन हैं। इसमें विवाद नहीं करना चाहिए। इस प्रकार से यहाँ तक दश तरह के सत्यों का वर्णन हुआ।

तात्पर्य यह है कि सन्धि, नाम-लिंग, तद्वित, समास, आर्यात, कृदन्त और औणादि से युक्त अर्थात् व्याकरण से शुद्ध पक्ष, हेतु, दृष्टान्त, उपनय और निगम से सहित—अर्थात् न्याय ग्रन्थ के आधार से पाँच अवयव वाले अनुमान वाक्य रूप, छल, जाति, निग्रह स्थान आदि दोषों से वर्जित अर्थात् तर्क ग्रन्थों में कथित इन छल आदि दोषों से रहित, लोक-विरोध, समय-आगमविरोध और स्ववचन विरोध से रहित, प्रमाण से उपपन्न-प्रमाणीक, नैगम आदि नयों की अपेक्षा सहित, जाति और युक्ति से युक्त, मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यरथ वचनों से सहित, निष्ठुरता रहित, कर्कशता रहित, उद्धता रहित, अर्थ सहित, कानों को सुनने में मनोहर, सुलिलित अक्षर, पद और वाक्यों से विरचित, हेय और उपादेय से संयुक्त ऐसे सत्य वचन बोलना चाहिए।

तथा लिंग, संख्या, काल, कारक, उत्तम-मध्यम-जघन्य पुरुष, उपग्रह से सहित धातु निपाद, बलाबल, छन्द, अलंकार आदि से समन्वित भी सत्य वचन बोलना चाहिए अर्थात् उपर्युक्त प्रकार से व्याकरण, न्याय, छन्द, अलंकार, आगम और लोकव्यवहार आदि के अनुरूप सत्य वचन बोलना ही श्रेयस्कर है।

तविवरीदं मोसं तं उभयं जत्थ सच्चमोसं तं।

तविवरीदा भासा असच्चमोसा हवदि दिट्ठा ॥ 1314 ॥

उपर्युक्त सत्य से जो विपरीत है वह असत्य है। जिसमें सत्य और असत्य दोनों है वह सत्यमृषा है। इन उभय से विपरीत अनुभय वचन असत्यमृषा कहे गये हैं।

पूर्वोक्त सभी दश प्रकार के सत्य वचनों से प्रतिकूल वचन को मृषा कहते हैं। जिस पद या वाक्य में ये सत्य और असत्य दोनों ही वचन मिश्र हों वह सत्यमृषा है।

नाम को प्राप्त होता है, क्योंकि वह उभयवचन गुण—दोष, दोनों से सहित है। इन सत्यमृषा कथन से विपरीत भाषा असत्यमृषा है, क्योंकि यह न सत्य है न असत्य है अतः अनुभय रूप है। ऐसा जिनेन्द्रदेव ने देखा है अर्थात् कहा है।

तात्पर्य यह कि सत्य, असत्य, उभय और अनुभय के भेद से वचन चार प्रकार हैं। उनमें से असत्य वचन और उभयवचन को छोड़देना और सत्यवचन तथा अनुभय वचन बोलना चाहिए। इसी बात को भाषा समिति के लक्षण (गाथा 307) में कहा है।

असत्य मृषा—भाषा

आमंत्रणि आणवणी जायणिसंपुच्छणी य पण्णवणी ॥ 1315 ॥
पञ्चक्खणी भासा छह्डी इच्छानुलोमा य ॥ 1316 ॥
संसयवयणी य तहा असच्चमोसा य अद्भुमी भासा।

एवमी अणक्खरगया असच्चमोसा हवदि दिट्ठा ॥ 1316 ॥
आमन्त्रण करने वाली, आज्ञा करने वाली, याचना करने वाली, प्रश्न करने वाली, प्रज्ञापन करने वाली, प्रत्याख्यान कराने वाली छठी भाषा और इच्छा के अनुकूल बोलने वाली भाषा सातवी है।

उसी प्रकार संशय को कहने वाली असत्यमृषा भाषा आठवीं है तथा नवमी अनक्षरी भाषा रूप असत्यमृषा भाषा देखी गई।

जिसके द्वारा आमन्त्रण किया जाता है वह आमन्त्रणी भाषा है। जिसने गाथ्य—वाचक सम्बन्ध जान लिया है उसे व्यक्ति को अन्य कार्य से हटाकर अपनी तरफ उद्यत करना आमन्त्रणी भाषा है। जैसे, हे देवदत्त! इत्यादि सम्बोधन वचन बोलना। इस शब्द से वह देवदत्त अन्य कार्य को छोड़कर बुलाने वाले की तरफ उद्यत होता है।

जिसके द्वारा आज्ञा दी जाती है वह आज्ञापनी भाषा है। जैसे, मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, इत्यादि वचन बोलना।

जिसके द्वारा याचना की जाती है वह याचनी भाषा है। जैसे, 'मैं तुमसे कुछ भी गंता हूँ।'

जिसके द्वारा प्रश्न किया जाता है वह पृच्छना है। जैसे, 'मैं आपसे पूछता हूँ' इत्यादि।

जिसके द्वारा प्रज्ञापना की जाये वह प्रज्ञापनी भाषा है। जैसे, 'मैं आपसे कुछ निषेद्धन करता हूँ' इत्यादि।

जिसके द्वारा कुछ त्याग किया जाता है वह प्रत्याख्यानी है। जैसे, 'मुझे प्रत्याख्यान दीजिए' इत्यादि। जो इच्छा के अनुकूल है वह इच्छानुलोमा है जो कि सर्वत्र अनुकूल रहती है। जैसे, 'मैं ऐसा करता हूँ।' इत्यादि। इन सभी के साथ भाषा समिति का सम्बन्ध लगा लेना चाहिए अर्थात् ये सातों भेद भाषासमिति के अन्तर्गत हैं।

जो संशय अर्थात् अव्यक्त अर्थ को कहती है वह संशयवचनी भाषा है।

अर्थात् जिन सन्देह रूप वचनों से अर्थ की प्रतीति नहीं हो पाती है वे वचन गाथ्य—वचनी हैं। जैसे, दाँत रहित अतिबाल और अतिवृद्ध के वचन तथा भैंस आदि पशुओं के शब्द। यह आठवीं भाषा है।

नवमी भाषा अनक्षरी है। जिसमें ककार, चकार, मकार आदि अक्षर अभिव्यक्त नहीं हैं, स्पष्ट नहीं है वह अनक्षरी भाषा है यह द्विन्द्रिय आदि जीवों में तो होती ही है। इस प्रकार से असत्यमृषा भाषा के नौ भेद कहे हैं। इन भाषाओं से विशेष का ज्ञान नहीं हो पाता है अतः इन्हें सत्य भी नहीं कह सकते और सामान्य का ज्ञान होता रहता। अतः इन्हें असत्य भी नहीं कह सकते। इसी कारण 'न सत्यमृषा इति असत्यमृषा' ऐसा नज़र समास होने से वह शब्द सत्य और मृषा दोनों का निषेध कर रहा है।

इसी अर्थ को और स्पष्ट करते हैं— आमन्त्रणी भाषा में आमन्त्रण—सम्बोधन रूप से अपनी तरफ अभिमुख करने से यह असत्य नहीं है, पश्चात् किसलिए सम्बोधन किया ऐसा कोई अन्य अर्थ ज्ञात न होने से यह सत्य नहीं है। अतः असत्यमृषा है।

उसी प्रकार आज्ञापनी में आज्ञा देने से असत्य नहीं है, पश्चात् क्या आज्ञा देंगे यह जाना नहीं जाता है इसलिए सत्य भी नहीं है। वैसे ही याचनी में याचना मात्र से असत्य नहीं है, उत्तर काल में क्या माँगेगा यह नहीं जाना गया है अतः सत्य भी नहीं है। पृच्छना भाषा में प्रश्न मात्र से वह झूट भी नहीं है, पुनः यह नहीं जाना जाता है कि यह क्या पूछेगा अतः सत्य भी नहीं है। वैसे ही प्रत्याख्यानी भाषा में प्रत्याख्यान सामान्य के त्यागने की प्रतीति होने से असत्य भी नहीं है, पश्चात् किस वस्तु का त्याग देंगे यह नहीं जाना जाता है अतः सत्य भी नहीं है। वैसे ही इच्छानुलोमा में इच्छा के अनुकूल मैं ऐसा करता हूँ कहने से असत्य भी नहीं है। पश्चात् क्या करेगा यह नहीं जाना है अतः सत्य भी नहीं है। वैसे ही अनक्षरगता में अक्षर संदिग्ध प्रतीति में आ रहे हैं इसलिए असत्य भी नहीं है और अर्थ संदिग्ध होने से स्पष्ट प्रतीति में नहीं आता है इसलिए सत्य भी नहीं है अर्थात् शब्द मात्र तो प्रतीति में आ रहे हैं इसलिए असत्य नहीं है और अक्षरों का अर्थ प्रतीति में नहीं आ रहा है इसलिए सत्य भी नहीं है। इस न्याय से नव प्रकार की असत्यमृषा का व्याख्यान किया गया है। भाषा—समिति में इन वचनों को बोलना वर्जित नहीं है।

सावज्जजोगवयणं वज्जंतोऽवज्जभीरु गुणकंखी ।

सावज्जवज्जवयणं णिच्चं भासेज्ज भासंतो । ॥३१७॥

पाप भीरु और गुणाकंखी मुनि सावद्य और अयोग्य वचन को छोड़ता हुआ तथा नित्य ही पाप योग से वर्जित वचन हुआ वर्तता है। यदि मुनि मौन नहीं कर सकता है तो इस प्रकार से बोले—पाप सहित वचन और यकार, मकार आदि सहित अर्थात् ऐ, तु आदि शब्द अथवा गालीगलौज आदि अभद्र शब्द से युक्त वचन नहीं बोले। पापभीरु और गुणों का आकांक्षी अर्थात् हिंसादि दोषों के वर्जन में तत्पर होता हुआ मुनि यदि बोले तो हमेशा ही उपर्युक्त दोष रहित सत्य वचन बोले। यह अन्वय और व्यतिरेक रूप से कहा गया है इसलिए इसमें पुनरुक्त दोष नहीं आता है क्योंकि द्रव्यार्थिक नयापेक्षी और पर्यायार्थिक नयापेक्षी शिष्यों के प्रति अनुग्रह करना ही गुरुओं का कार्य है।

पहले जो दश प्रकार के सत्य और नव प्रकार के अनुभय वचन बताये और उनके बोलने का आदेश दिया वह तो अन्वय कथन है अर्थात् विधिरूप कथन है और यह पर सावद्य और अयोग्य वचनों का त्याग के लिए कहा गया व्यतिरेक अर्थात् निषेधरूप कथन है। द्रव्यार्थिक नयापेक्षी शिष्य एक प्रकार के वचन से ही दूसरे प्रकार का बोध कर लेते हैं किन्तु पर्यायार्थिक नयापेक्षी शिष्यों को विस्तार पूर्वक कहना पड़ता है।

सत्य व्रत का कथन

परिहर असंतवयणं सवं पि चदुविधं पर्यत्तेण ।

धर्तं पि संजमितो भासादोसेण लिप्पदि हु । ॥१८१७ भ. आ.

असत् अर्थात् अशोभन वचन मत बोलो। जो वचन कर्मबन्ध में निमित्त होता है उसे अशोभन वचन कहते हैं। कहा है—असत् वचन बोलना असत्य है।

शंका—वचन आत्मा का परिणाम नहीं है, पुदगल नामक अन्य द्रव्य है। कर्मबन्ध या कर्म स्थिति के बन्ध में निमित्त मिथ्यात्व, असंयम, कषाय, योग, इस प्रकार का आत्म परिणाम त्याग ने योग्य है। अतः असत् वचन के त्याग का उपदेश उपयोगी नहीं है। उसे क्यों कहा?

समाधान—असंयम के कृत, कारित और अनुमत के भेद से तीन प्रकार हैं।

इस पुरुष को इस असंयम में प्रवृत्त करता हूँ अथवा असंयम में प्रवृत्त पुरुष की इस वचन के द्वारा अनुमोदन करता हूँ। इस अभिप्राय के बिना उस प्रकार का वचन नहीं बोला जाता। अतः उस प्रकार के वचन में कारण भूत आत्मपरिणाम कर्मबन्ध में निमित्त होता है। अतः त्यागने योग्य है। उस परिणाम के त्यागने पर उसका कार्य वचन भी त्यागा जाता है क्योंकि कारण के अभाव में कार्य नहीं होता। इसलिए असत् वचन का त्याग कहा है। यदि कोई असत् वचन के एक देश का त्याग करे तब भी असत् वचन का त्याग हो जाता है क्या? ऐसी आशंका का परिहार करते हैं कि चारों ही प्रकार के असत्य वचन का त्याग प्रमाद छोड़कर करना चाहिए। क्योंकि अतिशय युक्त संयम का आचरण करता हुआ भी भाषा दोष से कर्म लिप्त होता है। यहाँ निमित्त होने से भाषा शब्द से वचन योग रूप आत्मपरिणाम कहा है। दुष्ट भाषा को भाषा दोष कहते हैं। अतः दुष्ट वचनयोग के निमित्त से जो कर्म बन्ध होता है उससे आत्मा लिप्त होता है। इससे असत्य वचन को कर्मबन्ध में निमित्त होने का दोष बतलाकर उसके त्याग में क्षणक को दृढ़ करते हैं।

असत्य वचन के चार भेद

पद्मं असंतवयणं संभूदत्थस्स होदि पडिसेहो ।

णतिथ णरस्स अकाले मच्चुति जघेवमादीयं । ॥१८१८ भ. आ. पृ. 499

चार भेदों में सद्भूत अर्थ का निषेध करना प्रथम असत्य वचन है। जैसे मनुष्य की अकाल में मृत्यु नहीं होती इत्यादि वचन। आयु के स्थिति काल को काल कहते हैं। उस से अन्य काल को अकाल कहते हैं। उसमें मरण नहीं होता। ऐसा कहना सद्भूत का निषेध रूप असत्य वचन है।

शंका—भोगभूमि के मनुष्यों की आयु अनपवर्त्य होती है अतः मनुष्यों का अकाल में मरण नहीं होता है अतः उक्त कथन उचित ही है।

समाधान—गाथा में आगत 'नर' शब्द सामान्यवाची होने से सभी मनुष्यों के अकालमरण का अभाव कहना अयुक्त है। किन्तु कर्मभूमिज मनुष्यों में अकाल मरण होता है अतः सत् का निषेध करने से उक्त कथन को असत्य कहा है।

अहवा सयबुद्धीए पडिसेधे खेत्तकालभावेहि ।

अविचारिय णतिथ इह घडोत्ति तह एवमादीयं । ॥१८१९

अथवा क्षेत्र काल भाव से अभाव का विचार न करके—घट यहाँ नहीं है, इस समय नहीं है, या सफेद अथवा कृष्णरूप नहीं है, ऐसा न विचारकर अपनी बुद्धि से घटका सर्वथा अभाव कहना असत्य वचन है। किसी वस्तु का निषेध या विधि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से होती है। न तो वस्तु का सर्वथा निषेध होता है और न सर्वथा विधि होती है। प्रत्येक वस्तु अपने द्रव्य क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा अस्तिरूप है और परद्रव्यक्षेत्रकालभाव अपेक्षा अस्तिरूप है जैसे घट अपने द्रव्य की अपेक्षा अस्तिरूप है और अन्य घटों की अपेक्षा नास्तिरूप है। तथा जिस क्षेत्र में वह घट है उस क्षेत्र में अस्तिरूप है, अन्य घटों के क्षेत्र नास्तिरूप क्षेत्र है। जिस काल में है उस काल में अस्ति रूप है, अन्य कालों में नास्ति रूप है। जिस भाव में स्थित है उस भाव से अस्तिरूप है अन्य भाव की अपेक्षा नास्तिरूप है। ऐसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का विचार किये बिना यह कह देना कि घट नहीं है यह असत्यवचन का दूसरा उदाहरण है।

जं असभूदुभावणमेदं विदियं असंतवयणं तु ।
अथि सुराणमकाले मच्चुति जहेवमादीय ॥ 820

जो नहीं है उसे हैं कहना दूसरा असत्यवचन है। जैसे देवों के अकाल में मरण होता है ऐसा कहना। किन्तु देवों में अकालमरण नहीं होता। अतः यह असत् का उद्भावन करने से असत्यवचन है।

अहवा जं उभावेदि असंतं खेत्तकालभावेहि ।

अविचारिय अथि इह घडोति जह एवमादीय ॥ 821

अथवा जो वचन क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा असत् घटका विचार न करके 'घट है' ऐसा कहता है वह असत्यवचन है। यह पहले कहा है कि कोई वस्तु न सर्वथा सत् और न सर्वथा असत् है। जैसे जो घट इस क्षेत्र की अपेक्षा सत् है वही अन्य क्षेत्र की अपेक्षा असत् है। जो इस काल की अपेक्षा सत् है वही अतीत और अनागतकाल की अपेक्षा असत् है, जो स्वभाव की अपेक्षा सत् है वही भावान्तर की अपेक्षा असत् है। अतः घट इस रूप से सत् है और इस रूप से असत् है ऐसा विचार न करके 'घट है' इस तरह घट को सर्वथा सत् कहना असत् का उद्भावन होने से असत्य वचन है।

तदियं असंतवयणं संतं जं कुणदि अण्णजादीगं ।

अविचारित्ता गोणं अस्सोति जहेवमादीय ॥ 822

एक जाति की वस्तु को अन्य जाति की कहना तीसरा असत्य है। जैसे बिना विचारे बैल को घोड़ा कहना।

असत्य वचन— जं वा गरहिदवयणं जं वा सावज्जसंजुदं वयणं ।

जं वा अप्पियवयणं असत्तवयणं चउत्थंच ॥ 823

जो गर्हित वचन है, सावद्य युक्त वचन है, अप्रिय वचन है वह चतुर्थ असत्य वचन है।

गर्हित वचन— कक्कस्सवयणं णिट्ठुरवयणं पेसुण्णहासवयणं च ।

जो किंचि विष्पलावं गरहिदवयणं समासेण ॥ 824

कर्कश वचन अर्थात् घमण्डयुक्त वचन, निष्ठुर वचन, दूसरे के दोषों की सूचना करने वाले वचन, हास्यवचन और जो कुछ भी बकवाद करना, ये सब संक्षेप में गर्हित वचन हैं।
सावद्य वचन—

जत्तो पाणवधादी दोसा जायंति सावज्ज्वयणं च ।

अविचारित्ता थेणं थेणति जहेवमादीय ॥ 825

जिस वचन से प्राणों का घात आदि दोष उत्पन्न होते हैं वह सावद्य वचन है। जैसे पृथी खोदो। नांद का पानी भैंस ने पी लिया उसे पानी से भरो। फूल चुनो आदि। अथवा ऐसा कहने में दोष है या नहीं, यह विचार न करके ओर को ओर कहना सावद्य वचन है।

परुसं कङ्गुयं वयणं वेरं कलहं च जं भयं कुणइ ।

उत्तासणं च हीलणमप्पियवयणं समासेण ॥ 826

कठोर वचन, कटुक वचन, जिर्स वचन से वैर, कलह और भय पैदा हो, अति त्रास देने वाले वचन, तिरस्कार सूचक वचन ये संक्षेप में अप्रियवचन हैं।

हासभयलोहकोहप्पदोसादीहिं तु मे पयत्तेण ।

एवं असंतवयणं परिहरिदव्यं विसेसेण ॥ 827

हास्य, भय, लोभ, क्रोध और द्वेष आदि कारणों से बोले जाने वाले असत्य वचनों को हे क्षपक, तुम्हें प्रयत्न पूर्वक विशेष रूप से नहीं बोलना चाहिए।

सत्य वचन—

तविवरीदं सच्चं कज्जे काले मिदं सविसए य ।

भत्तादिकहारहियं भणाहि तं चेव य सुणाहि ॥ 828

हे क्षपक! ज्ञान, चारित्र आदि की शिक्षा रूप कार्य में, असंयम का त्याग कराने या दूसरे को सन्मार्ग में स्थापित करने के कार्य में, आवश्यक आदि के काल से भिन्नकाल में, और ज्ञान के विषय में असत्यवचन से विपरीत सत्यवचन बोलो। तथा भक्तकथा, चोरकथा, स्त्रीकथा और राजकथा से रहित वचन बोलो— इन कथाओं की चर्चा मत करो। तथा इसी प्रकार के सत्य वचनों को सुनो। अमुक—वक्ता अयोग्य बात नहीं बोलता अतः यह सत्यव्रत का पालक है ऐसी आशा मत करो। दूसरे के द्वारा कहे असत्यवचन को जो सुनता है उसका मन बुरा होता है और मनके बुरे होने से महान् कर्मबन्ध होता है।

सत्यवचन का गुण हृदय को सुख देना

जलचंदणससि मुत्ताचंदमणी तह णरस्स णिव्वाणं ।

ण करंति कुणइ जह अत्थज्जुयं हिदमधुरमिदवयणं ॥ 829

अर्थ से भरे हितकारी परिमित मधुर वचन इस जीव को जैसा सुख देते हैं वैसा सुख जल, चन्दन, चन्द्रमा, मोती और चन्द्रकान्तमणि भी नहीं देते।

सत्य कहने योग्य भी है—नहीं भी—

अणरस्स अप्पणो वापि धमिए विद्वंतए कज्जे ।

जं पि अपुच्छिज्जंतो अणेहिं य पुच्छिओ जप ॥ 830

अपना या दूसरों का धार्मिक कार्य नष्ट होता हो तो विना पूछे भी बोलना चाहिए।

किन्तु यदि कार्य नष्ट न होता हो तो पूछने पर ही बोलो, विना उनके द्वारा पूछे जाने पर मत बोलो।

सत्य का सुफल

सच्चं वदंति रिसओ रिसीहिं विहिदाउ सच्चं विज्जाओ।

मिच्छस्स वि सिज्जांति य विज्जाओ सच्चवादिस्स। 1831

ऋषिगण सत्य बोलते हैं। ऋषियों ने ही सब विद्याओं का विधान किया है। सत्य वादी यदि म्लेच्छ भी हो उसे विद्याएँ सिद्ध होती हैं।

ण डहदि अग्नी सच्चेण णरं जलं च ण बुड्डेई।

सच्चबलियं खु पुरिसं ण वहदि तिक्खा गिरिणदी वि। 1832

सत्यवादी मनुष्यों को आग नहीं जलाती। पानी उसे नहीं ढुबाता। जिसके पास सत्य बल है उसे तीव्र वेगवाली नदी भी नहीं बहाती।

सच्चेण देवदावो णवंति पुरिस्स ठंति य वसम्मि।

सच्चेण य गहगहिदं मोइङ करेति रक्खं च। 1833

सत्य से देवता नमस्कार करते हैं। सत्य से देवता पुरुष के वश में होते हैं। सत्य से पिशाच पकड़ा हुआ मनुष्य भी छूट जाता है और उसकी रक्षा देव करते हैं।

माया व होइ विस्सस्सणिज्जो पुज्जो गुरुव्व लोगस्स।

पुरिसो हु सच्चवाई होदि हु सणियल्लओ व पिओ। 1834

सत्य वादी माता के समान विश्वास योग्य, गुरु के समान पूज्य, और बन्धु के समान लोकप्रिय होता है।

सच्चं अवगददोसं तुत्तूण जणस्स मज्जायारभ्मि।

पीदिं पावदि परमं जसं च जगविस्सुदं लहइ। 1835

जन समुदाय के बीच में दोष रहित सत्यवचन बोलने से मनुष्य जनता का प्रेम तथा जगत् में प्रसिद्ध उत्कृष्ट यश पाता है।

सच्चभ्मि तवो सच्चम्मि संज्ञमो तह वसे सया वि गुणा।

सच्चं णिवंधणं हि य गुणाणमुदधीव मच्छाणं। 1836

तप, संयम तथा अन्यगुण सत्य के आधार हैं। जैसे समुद्र मगरमच्छों का कारण है उसमें मगरमच्छ पैदा होते और रहते हैं वैसे ही सत्य गुणों का कारण है।

सच्चेण जगे होदि पमाणं अण्णो गुणो जदि वि से णत्थि।

अदिसंजदो य मोसेणा होदि पुरिसेसु तणलहुओ। 1837

यदि मनुष्य में अन्य गुण न हो तब भी वह एक सत्य के कारण जग में प्रमाण माना जाता है। अति संयमी भी यदि असत्य बोलता है तो सज्जनों के मध्य में तुण से तुच्छ होता है।

होदु सिहंडी व जडी मुंडी वा णग्गओ व चीरधरो।

दि भणदि अलियवयणं विलंबणा तस्स सा सव्वा। 1838

भले ही मनुष्य शिखाधारी हो, जटाधारी हो, सिर मुडाए हो, नंगा रहता हो या चीवर धारण किये हो, यदि वह झूट बोलता है तो यह सब उसकी बिद्म्बनामात्र है।

जह परमण्णस्स विसं विणासयं जह व जोव्वणस्य जरा।

तह जाण अहिंसादी गुणाण य विणासयमसच्चं। 1839

जैसे विष उत्तमोत्तम भोजन का विनाशक है, बुढापा यौवन का विनाशक है वैसे ही असत्य वचन, अहिंसा आदि गुणों का विनाशक है।

मादाए वि वेसो पुरिसो अलिएण होई एक्केण।

किं पुण अवसेसाणं ण होई अलिएण सत्तुव्व। 1840

एक सत्य वचन से मनुष्य माता का भी विश्वास-भाजन नहीं रहता। तब असत्य बोलने से शेषजनों को वह शत्रु के समान क्यों नहीं प्रतीत होगा।

अलियं स किं पि भणियं घादं कुणदि बहुगाण सच्चाण।

अदिसंकिदो य सयमवि होदि अलियभासणो पुरिसो। 1841

एक बार भी बोला गया झूठ बहुत बार बोले गये सत्य वचनों का घात कर देता है। लोक उसके सत्य कथन को भी झूठ मानने लगते हैं। झूठ बोलने वाला मनुष्य सत्य भी अतिभीत रहता है।

असत्य से उत्पन्न दोष

अप्पच्चओ अकित्ती भंभारदिकलहवेरभयसोगा।

वधबंधभेय धणणासा वि य मोसम्मि सणिणहिदा। 1842

असत्य भाषण में अविश्वास, अपयश, संक्लेश, अरति, कलह, वैर, भय, शोक, वन्ध, बन्ध, कुटुम्ब में फूट, धन का नाश इत्यादि दोष पाये जाते हैं।

पापस्सासवदारं असच्चवयणं भणंति हु जिणिंदा।

हिदएण अपावो वि हु मोसेण गदो वसू णिरयं। 1843

जिनेन्द्र देव असत्य को पापाच्चव का द्वार कहते हैं, उससे पाप का आगमन होता है। राजा वसु हृदय से पापी नहीं था फिर भी झूठ बोलने से नरक में गया। इसकी कथा कथाकोश में है।

असत्य से पाँच पाप

परलोगभ्मि वि दोसा ते चेव हवंति अलियवादिस्स।

मोसादीए दोसे जत्तेण वि परिहरतंस्स। 1844

असत्य, चोरी, कुशील और परिग्रह रूप दोषों का प्रयत्न पूर्वक त्याग करने वाले भी असत्यवादी के परलोक में भी अविश्वास आदि दोष होते हैं। अर्थात् असत्यवादी भरकर भी इन दोषों का भागी होता है।

कर्कश आदि वचन से पाँच पाप

इहलोहय परलोहय दोसा जे होंति अलियवयणस्स।

कक्कसवदणादीण वि दोसा ते चेव णादव्वा। 1845

इस लोक और परलोक में असत्यवादी जिन दोषों का पात्र होता है, कर्कश आदि वचन बोलने वाला भी उन्हीं दोषों का पात्र होता है।

एदेसिं दोसाणं मुक्को होदि अलिआदिवचिदोसे।

परिहरमाणो साधू तव्विवरीदे य लभदि गुणे। 1846

जो साधु असत्य भाषण आदि दोषों को दूर कर देता है वह ऊपर कहे दोषों से मुक्त होता है— उसमें वे दोष नहीं होते। तथा उन दोषों से विपरीत विश्वास, यश, असंक्लेश, रति, कलह का अभाव निर्भयता आदि गुणों का भाजन होता है।

अध्याय—11

भाषा समिति

पेसुण्णहासककसपरणिदाप्संसविकहादी ।

वज्जिता सपरहियं भासासमिदी हवे कहण ॥ 112 मूलाचार

चुगली, हँसी, कठोरता, परनिन्दा, अपनी प्रशंसा और विकथा आदि को छोड़कर अपने और पर के लिए हितरूप बोलना भाषा समिति है।

पिशुन—चुगली के भाव को पैशून्य कहते हैं अर्थात् निर्दोष के दोषों का उद्भावन करना, निर्दोष को दोष लगाना। हास्यकर्म के उदय से धर्म के लिए हर्ष होना हास्य है। कान के लिए कठोर, काम और युद्ध के प्रवर्तक वचन करक्ष हैं। पर के सच्चे अथवा झूठे दोषों को प्रकट करने की इच्छा का होना अथवा अन्य के गुणों को सहन नहीं कर सकना यह परनिन्दा है। अपनी प्रशंसा स्तुति करना अर्थात् अपने गुणों को प्रकट करने का अभिप्राय रखना और स्त्रीकथा, भक्तकथा, चोरकथा, राजकथा आदि को कहना विकथादि हैं। इन चुगली आदि के वचनों को छोड़कर अपने और पर के लिए सुखकर अर्थात् कर्मबन्ध के कारणों से रहित वचन बोलना भाषा समिति है।

तात्पर्य यह है कि पैशून्य, हास्य, कर्क्ष, परनिन्दा, आत्मप्रशंसा और विकथा आदि को छोड़कर स्व और पर के लिए हितकर जो कथन करना है वह भाषा समिति है।

सच्चं असच्चमोसं अलियादीदोसवज्जमणवज्जं ।

वदमाणस्सणवीची भासासमिदी हवे सुद्धा ॥ 307 मूलाचार पृ. सं. 256

असत्य आदि दोषों से वर्जित निर्दोष, ऐसा सत्य और असत्य मृषा वचन आगम के अनुकूल बोलते हुए मुनि के निर्दोष भाषासमिति होती है।

प्रत्येक वस्तु स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, और स्वभाव से अस्ति रूप है वही वस्तु परद्रव्य, परक्षेत्र, पर काल, और परभाव की अपेक्षा से नास्ति रूप है। स्वपर की अपेक्षा से अस्ति और नास्ति इस तृतीय भंग रूप है। अनुभय—स्वपर की अपेक्षा नहीं करने से वही वस्तु अवक्तव्य है। इत्यादि सप्तभंगी रूप या ऐसे ही अन्य भी यथार्थ वचन बोलना सत्य है। तथा प्रमाण, नय और निक्षेपों के द्वारा वचन बोलना भी सत्य है।

जो सत्य भी नहीं है और असत्य भी नहीं है ऐसे सामान्य वचन असत्यमृषा अर्थात् अनुभय वचन हैं। ऐसे सत्य और अनुभय वचन बोलना भाषासमिति है।

अलीक—झूठवचन आदि दोषों से रहित अर्थात् पर को ठगने आदि के वचनों से रहित और हिंसा आदि पाप का आगमन कराने वाले वचनों से रहित ऐसे निर्दोष वचन बोलना। सूत्र के अनुसार अर्थात् आगम के अनुकूल वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा आदि के द्वारा या अन्य भी किसी धर्म कार्य के निमित्त बोलना या अनुभयवचन बोलना अथवा शास्त्रों के पढ़ने—पढ़ाने रूप, उनके विषय में प्रश्न रूप या अनुप्रेक्षा आदि रूप वचन बोलना अथवा अन्य भी किसी धर्म कार्य रूप वचन बोलना—यह निर्दोष भाषासमिति है।

भगवती अराधना में भी भाषा समिति का वर्णन निम्न प्रकार से किया है—

सच्चं असच्चमोसं अलियादीदोसवज्जमणवज्जं ।

वदमाणस्सणवीची भासासमिदी हवदि सुद्धा 1186 भ. आ. पृ. सं. 600

वचन के चार प्रकार हैं 1. सत्य 2. असत्य 3. सत्यसहित असत्य 4.

असत्यमृषा। सज्जनों के हितकारी वचन को सत्य कहते हैं। जो वचन न सत्य होता है और न असत्य उसे असत्यमृषा कहते हैं। इस प्रकार सत्य और असत्यमृषा वचन को बोलना तथा असत्य, कठोरता, चुगली आदि दोषों से रहित और अनवद्य अर्थात् जिससे पाप का आस्रव न हो ऐसा वचन सूत्रानुसार बोलने वाले के शुद्ध भाषा समिति होती है।

सत्य वचन के भेद भावण ववहारे भावेणोपम्मसच्चेण ॥ 1187 ॥

जणवदसंमितिरवणा णामे रूवे पदुच्चववहारे ।

संभावणववहारे भावेणोपम्मसच्चेण ॥ 1187 ॥

1) 1. जनपद सत्य 2. सम्मति सत्य 3. स्थापना सत्य 4. नाम सत्य 5. रूपसत्य 6. प्रतीत्य सत्य 7. सम्भावना सत्य 8. व्यवहार सत्य 9. भावसत्य 10. उपमा सत्य इस प्रकार सत्यवचन के दस भेद हैं।

1. जनपद सत्य :— विभिन्न जनपदों में जो उस उस जनपद के संकेत के अनुसार प्रचलित वाणी है वह जनपद सत्य है। जैसे गमन करे वह गाय है, गर्जन करे वह गज—हाथी है। यद्यपि गमनरूप और गर्जनरूप अर्थ नहीं होने पर भी इन अर्थों की प्रवृत्ति में निमित्त भूत वाणी जनपद सत्य है। अर्थात् जैसे गाय और गज शब्द गमन और अर्थ को लेकर निष्पन्न हुए हैं और उनका संकेत गाय और गज में किया गया है। गाय बैठी हो तब भी उसे गाय कहते हैं। इस प्रकार प्रत्येक देश की भाषा में शब्द जनपद सत्य है।

2. सम्मति सत्य :— सम्मति शब्द से आकार विशेष की स्वीकृति कही जाती है। जैसे गजेन्द्र नरेन्द्र इत्यादि शब्द शुभ लक्षण के योग से व्यवहृत होते हैं। किन्हीं में स्वयं शुभलक्षण पाये जाने से उन्हें इन्द्र या ईश्वर के रूप में स्वीकार करके किसी गज को गजेन्द्र या मनुष्यों को सुरेन्द्र कहना सम्मति सत्य है।

3. स्थापना सत्य :— किसी तदाकार या अतदाकार वस्तु में अर्हत, इन्द्र या स्कन्ध की स्थापना करके उसे अर्हत आदि कहना स्थापना सत्य है। मूर्ति में स्थापित अर्हन्त या इन्द्र में अर्हत शब्द का अर्थ अरि—कर्मशत्रु का हनन करना या कर्मरज का हनन करना और इन्द्र का अर्थ इन्दन क्रिया नहीं पाई जाती, इसलिए उसमें असत्यपने की आशंका नहीं करनी चाहिए। क्योंकि सभी पदार्थ आकार मात्र में परमार्थ माने जाते हैं और वह आकार तदाकार स्थापना में वस्तुरूप से रहता है अथवा अतदाकार स्थापना में उस प्रकार की बुद्धि कर ली जाती है।

4. नाम सत्य :— इन्द्रादि नामों की प्रवृत्ति में निमित्त जाति, गुण क्रिया और द्रव्य की

अपेक्षा न करके जो उस शब्द का अपने वाच्यार्थ के साथ सम्बन्ध है केवल उसी दृष्टि से रखा वस्तु का इन्द्रादि नाम नाम सत्य है।

5. रूपसत्य :— रूप का ग्रहण शब्द की प्रवृत्ति के निमित्तों का उपलक्षण है। जैसे कमल का नीला रूप देखकर नीलकमल कहना या चन्द्रमा सफेद कहना रूप सत्य है।

6. प्रतीत्य सत्य :— अन्य वस्तु के सम्बन्ध से व्यक्त होने वाला वस्तु का स्वरूप प्रतीत्य सत्य है जैसे किसी को लम्बा या ठिगना कहना।

7. सम्भावना सत्य :— वस्तु में वैसा नहीं होने पर भी उस प्रकार के कार्य की योग्यता देखकर जो संभावना मूलक वचन है वह संभावना सत्य है। जैसे—कहना अमुक व्यक्ति हाथों से समुद्र पार कर सकता है या सिर से पर्वत तोड़ सकता है। इत्यादि।

8. व्यवहार सत्य :— यद्यपि वर्तमान काल में वस्तु में वह परिणाम नहीं है तथापि अतीत और अनागत परिणामरूप यहीं द्रव्य है ऐसा मानकर किया गया वचन व्यवहार सत्य है जैसे भात पकाओ या चटाई बुनो। ये दोनों परिणाम वर्तमान में नहीं हैं क्योंकि चावल पकने पर भात बनेगा और बुनने पर चटाई होगी। फिर भी अनागत परिणाम की अपेक्षा इनका व्यवहार होता है।

9. भावसत्य :— जिन वचन के द्वारा अहिंसा रूप भाव पाला जाता है वह वचन भाव सत्य है। जैसे देखकर सावधानता पूर्वक प्रवृत्ति करो आदि।

10. उपमा सत्य :— पत्न्योपम, सागरोपम, सारोपम आदि का जो कथन आगम में कहा है वह उपमा सत्य है।

असत्य आदि तीन वचनों का लक्षण

II) सत्य से विपरीत वचन असत्य है। तत्त्वार्थ सूत्र में कहा है असत् कहना झूठ है। जो वचन मिथ्याज्ञान में, मिथ्याश्रद्धान में और असंयम में निमित्त होता है वह वचन असत् कथन होने से अप्रशस्त है। अतः सत्य से विपरीत है।

III) जो वचन सत्य और असत्य दोनों रूप होता है वह वचन सत्यमृषा है।

IV) जो वचन सत्य, असत्य और सत्य असत्य से विपरीत से विपरीत होता है उसे पूर्व आगमों में असत्यमृषा कहा है। वह वचन न तो एकान्त से सत्य विपरीत होता है उसे पूर्व आगमों में असत्यमृषा कहा है। वह वचन न तो एकान्त से सत्य होता है न एकान्त से असत्य होता है और न सत्यासत्य होता है किन्तु जात्यन्तर होता है। जैसे वस्तु न तो एकान्त से नित्य है न अनित्य है और न सर्वथा नित्य और न सर्वर्था अनित्य है किन्तु कथंचित् नित्यानित्य है। उसी प्रकार यह असत्यमृषा वचन भी होता है।

असत्यमृषा वचन के नौ भेद

1. आमन्त्रणी 2. आणवणी 3. याचनी 4. संपुच्छणी 5. प्रज्ञापनी 6. प्रत्याख्यानी 7. इच्छानुलोमा।

1. आमन्त्रणी— जिस वचन से दूसरे को बुलाया जाता है वह आमन्त्रणी भाषा है। जैसे— हे देवदत्त ! यह वचन जिसने संकेत ग्रहण नहीं किया उसे बुलाने वाले थे

अभिमुख नहीं करता अर्थात् यह बुलाने पर नहीं आता। इसलिए यह वचन सत्य भी नहीं है और जिसने सर्वथा संकेत ग्रहण किया है उसे अभिमुख करता है इसलिए असत्य भी नहीं। इस तरह यह वचन गृहीत संकेत वाले को प्रतीति तो कराने में निमित्त होता है किन्तु जिसने संकेत ग्रहण नहीं किया उसको प्रतीति कराने में निमित्त नहीं होने से दो रूप है।

2. आणवणी—स्वाध्याय करो, असंयम से विरत होओ, इत्यादि अनुशासन वचन आणवणी है। जो काम करने की प्रेरणा की गई है वह करने या करने की अपेक्षा यह वचन न तो एकान्त से सत्य है और न एकान्त से असत्य है।

3. याचनी— आप मुझे ज्ञान के उपकरण अथवा पीछी आदि प्रदान करें, इत्यादि वचन याचनी भाषा है। यह भी दाता की अपेक्षा पहले की तरह न तो सर्वथा सत्य है और न सर्वथा असत्य है क्योंकि माँगने पर दाता दे भी सकता है और नहीं भी दे सकता।

4. संपुच्छणी—आपकी वेदना—कष्ट रुका या नहीं? या निरोध—जेल में आपको कष्ट है या नहीं? इस प्रकार पूछना संपुच्छणी भाषा है। यदि वेदना है तो सत्य है, नहीं है तो मिथ्या है। इस प्रकार वेदनाके भाव और अभावकी अपेक्षा से प्रवृत्त होने से यह वचन उभयरूप है।

5. प्रज्ञापनी—धर्म कथा को पण्णवणी या प्रज्ञापनी कहते हैं। यह बहुत से श्रोताओं को लक्ष करके होती है अतः कुछ तो अपने मन में उसका पालन करने का विचार करते हैं और कुछ नहीं करते। इस अपेक्षा यह भी उभयरूप है।

6. प्रत्याख्यानीभाषा इस प्रकार है—किसी ने गुरु से निवेदन किये बिना यह दूध आदि मैंने इतने काल तक त्याग ऐसा नियम किया। किसी अन्य कार्य को लक्ष्य करके गुरु ने कहा ऐसा करो। उसके त्याग करने की मर्यादा का काल पूरा नहीं हुआ, इसलिए उसका प्रत्याख्यान सर्वथा सत्य नहीं है और गुरु की आज्ञा से उसने त्यागी हुई वस्तु में प्रवृत्ति की इसलिए दोष भी न होने से सर्वथा असत्य भी नहीं है।

7. इच्छानुलोमा भाषा इस प्रकार है— किसी ज्वर के रोगी ने पूछा—धी और शक्कर मिला दूध उत्तम नहीं है? यदि दूसरा कहे कि माधुर्य आदि प्रशस्त गुणों की अपेक्षा तो उत्तम है किन्तु ज्वर को बढ़ाने वाला होने से उत्तम नहीं है तो इस प्रकार के वचन न सर्वथा असत्य है और न सर्वथा सत्य है किन्तु दोनों रूप होने से उभयात्मक हैं। यहाँ उभयात्मक से इन वचनों को सत्य और असत्य रूप नहीं समझना चाहिए। किन्तु सत्य भी नहीं और असत्य भी नहीं अर्थात् अनुभयरूप समझना चाहिए। आठवीं असत्यमृषा भाषा संशय वचनी है। जैसे यह स्थाणु है या पुरुष। दोनों में से एक के सद्भाव और दूसरे के अभाव की अपेक्षा यह वचन उभयरूप है। और नौवीं असत्यमृषा भाषा अनक्षरात्मक है। जैसे अंगुलि चटकाने आदि का शब्द। जिस पुरुष ने संकेत ग्रहण किया है उसे तो ध्वनि से प्रतीति होती है दूसरे को नहीं होती। इस तरह यह वचन उभयरूप है।

अध्याय—12

सत्य व्रत एवं भाषा समिति सम्बन्धी दोष संशोधन सत्य महाव्रत के दोषों की आलोचना

आहावरे दुव्वेमहव्वदे मुसावादादो वेरमणं से कोहेण वा, माणेण वा, माएण वा, लोहेण वा, राएण वा, दोसेण वा, मोहेण वा, हस्सेण वा, भएण वा, पमादेण वा, पेम्मेण वा, पिवासेण वा, लज्जेण वा, गारवेण वा, अणादरेण वा, केणवि कारणेण जादेण वा, सब्वो मुसावादो भासिओ, भासाविओ, भासिज्जंतो विसमणुमणिणदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ २ प्रतिक्रमण पृ.239

अब अन्य दूसरे महाव्रत में मृषावाद (असत्य बोलने से) विरमण होना चाहिए, वह मृषावाद, क्रोध से, मान से, माया से, लोभ से, पिपासा से (विषय सेवन की वृद्धि से) लज्जा से, गरव (महत्वाकांक्षा) से और भी किसी कारणों से किसी भी तरह का अल्प असत्य भी स्वयं बोला हो, दूसरे से (बड़ा बनने की वांछा से) बुलाया हो तथा बोलते हुए अन्य की अनुमोदना की हो तो उस मृषाचारादि भाषा सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ।

भाषा समिति सम्बन्धी दोषों की आलोचना

तथा भाषा समिदी, कक्कस्सा, कदुया, परुसा, निट्टुरा, परकोहिणी, मज्जांकिसा, अईमाणिणी, अणयकरा, छेयकरा, भूयाण वहकरा चेदि दसविहा भासा, भासिया, भासाविया भासिज्जंतोवि समणुमणिणदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥४ पृ. 243

उनमें भाषा समिति दश प्रकार है— उन दश प्रकारों को निम्नलिखित रूप से दिखाते हैं

1. कक्कसा — तू मूर्ख है, कुछ नहीं जानता इत्यादि रूप सन्तापजन के कर्कश भाषा है।
2. कदुया — तू जाति हीन है, अधर्मी (पापी) है इत्यादि रूप से उद्वेग उत्पन्न करने वाली कटुक भाषा है।
3. परुषा—तू अनेक दोषों से दूषित है इस प्रकार मर्म भेदने वाली परुष (कठोर) भाषा है।
4. णिट्टुरा—तुझे मारूँगा, तेरा सिर काट लूँगा इस प्रकार की निष्ठुर भाषा है।
5. परकोहिनी—तेरा तप किसी काम का नहीं, तू निर्लज्ज है, इस तरह की दूसरों को रोष उपजाने वाली परकोपिनी भाषा है।
6. मज्जांकिसा — ऐसी निष्ठुर भाषा जो हड्डियों का मध्य भाग भी छेद दे वह 'मध्यकृशा' भाषा है।
7. अईमाणिणी—अपना महत्व ख्यापन करने वाली अर्थात् अपनी प्रशंसा करने वाली और दूसरों की निन्दा करने वाली अतिमानिनी भाषा है।

8. अणयकरा—समान स्वभाव वालों में द्वैधीभाव (द्वेषभाव) पैदा कर देने वाली या मित्रों परस्पर विद्वेष विरोध) करा देने वाली अनयंकरी भाषा है।

9. छेयकरा—वीर्य, शील और गुणों को जड़ मूल से विनाश कर देने वाली अथवा असद्भूत दोषों का उद्भावन (प्रकट) करने वाली छेदक भाषा है।

10. मूयाणवहंकरा— प्राणियों के प्राणों का वियोग कर देने वाली 'बधकरी' भाषा है। इस प्रकार की भाषा मैंने स्वयं बोली हो, दूसरों से बुलाई हो और बोलते हुये दूसरे की मैंने अनुमोदना की हो, उस दश प्रकार की भाषा सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो।

आहावरे बिदिए महव्वदे सब्वं भंते! मुसावादं पच्चक्खामि, जावज्जीवं तिविहेण मणसा, वचिया, काएण, से कोहेण वा, माणेण वा, माएण वा, लोहेण वा, रागेण वा, दोसेण वा, मोहेण वा, हस्सेण वा, भयेण, वा पदोसेण वा, पमादेण वा, पेम्मेण वा, पिवासेण वा लज्जेण वा, गारवेण वा, अणादरेण वा, केणवि कारणेण जादेण वा, णेव सयं मोसं भासेज्ज, ण अणोहिं मोसं भासाविज्ज, अणोहिं मोसं भासिज्जंतं पि ण समणुमणिणज्ज तस्स भंते । अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि, गरहामि अप्पाणं, वोस्सरामि पुव्विचर्णं भंते! जं पि मए रागस्स वा, दोसस्स वा, मोहस्स वा, वसंगदेण, सयं मोसं भासियं, अणोहिं मोसं भासावियं, अणोहिं मोसं भासिज्जंतं पि समणुमणिणदं, इमस्स णिग्गंथस्स पवयणस्स, अणुत्तरस्स, केवलियस्स, केवलिपण्णत्तस्स, धम्मस्स अहिंसालखणस्स, सच्चहिद्वियस्स, विणयमूलस्स, खमाबलस्स, अड्डारस, सीलसहस्रपरिमडियस्स, वउरासीदि गुण सयसहस्रस विहूसियस्स णवसु बंभवेर गुत्तस्स, णियदि लक्खणस्स परिचागफलस्स उवसमपहाणस्स, खांतिमगगदे सयस्स, मुत्तिमगगपयासयस्स, सिद्धमगगपज्जवसाहणस्स, से कोहेण वा, माणेण वा, माएण वा, लोहेण वा, अणाणेण वा, अदंसणेण वा—अविरिएण वा, असंयमेण वा, असमणेण वा, अणहिगमणेण वा अभिमंसिदाण्ण वा अबोहिदाएण वा, रागेण वा, दोसेण वा मोहेण वा, हस्सेण वा, भएण वा, पदौसेण वा, पमादेण वा पेम्मेण वा, पिवोसेण वा, लज्जेण वा, गारवेण वा अणादरेणवा, केणवि कारणेण जादेण वा, आलसदाए, कम्मभारिगदाए, कम्मगुरुगदाए, कम्मदुच्चरियदाए, कम्मपुरुक्कडदाए, तिगारव गुरुगदाए, अबहुसुददाए, अविदिदपरमद्वदाए, तं सब्वं पुब्वं दुच्चरियं गरिहामि आगमेसि च, अपच्चक्खियं पच्चक्खामि, अणालोचियं, आलोचेमि, अणिंदियं णिंदामि, अगरहियं गरहामि, अपडिक्कंतं पडिक्कमामि, अगरहियं गरहामि, (....)

सत्य का स्वरूप एवं महिमा

श्री गणधर सुधर्मास्वामी अपने प्रधान शिष्य श्री गणधर स्वामी को सम्बोधित करते हुए करते हैं जम्बू ! यह सत्य नाम का दूसरा संवरद्धार है, जो सत् पुरुषों, या गुणिजनों मुनिजनों के लिए हितकर है, निर्दोष है, पवित्र है, मोक्ष तथा सुख का कारण है। शुभ बोलने की इच्छा से उत्पन्न होता है; सुन्दर सुस्पष्ट वचन रूप है, सुन्दर व्रतरूप है, इससे पदार्थ का भली-भाँति कथन किया जाता है, सर्वज्ञ देवां द्वारा यह भली-भाँति देखा परखा हआ है, यह सब प्रमाणों से सिद्ध है, इसका यश भी निराबाध है तथा उत्तम देवों, चक्रवर्ती आदि श्रेष्ठ मनुष्यों, उत्कृष्ट शक्ति के धारक वासुदेव-बलदेव आदि पुरुषों आदि शास्त्र विहित आचरण करने वाले महापुरुषों के द्वारा यह बहुमान्य है यह उत्कृष्ट साधुओं का धर्माचरण है तथा तप और नियम से स्वीकार किया जाता है अर्थात् सत्यवादी के ही सच्चे मायने में तप और नियम होते हैं। यह सद्गति का पथ निर्देशक है तथा लोक में उत्तम व्रत माना जाता है। यह सत्य विद्याधरों की आकाशगामिनी विद्याओं का साधक है तथा स्वर्ग मार्ग और मोक्ष मार्ग का प्रवर्तक है, यह मिथ्याभाव से रहित है। यह सरल भावों से युक्त, कुटिलता से रहित है, यह विद्यमान सद्भूत को ही विषय करता है, विशुद्ध अर्थ वाला है, वस्तु तत्त्व का प्रकाशक है, जीव लोक में समस्त पदार्थों का अविसंवादी-पूर्वापरसंगतरूप से प्रतिपादक है। पदार्थ के पथ स्वरूप को कहने वाला होने से मधुर है। मनुष्यों को भिन्न-भिन्न अनेक कष्टकर अवस्थाओं में वह साक्षत् देवता के समान आश्चर्यजनक कार्य करने वाला है। सत्य के कारण महासागर के बीच दिश्मान्त बने हुए नाविक सैनिकों की नौकाएँ रिथर रहती हैं, डूबती नहीं है। सत्य के प्रभाव से चक्रकरदार जलप्रवाह में भी मनुष्य बहते नहीं, न मरते हैं, किन्तु वे थाह पा लेते हैं। अर्थात् किनारे लग जाते हैं। सत्य के प्रभाव से चारों ओर आग की लपटों से घिर जाने पर भी जलते नहीं हैं। सरल स्वभावी मनुष्य सत्य के प्रताप से खोलते हुए गर्मागर्म तेल, रांगे, लोह और शीशों को भी छू लेते हैं, हथेली पर रख लेते हैं लेकिन जलते नहीं। सत्य को धारण किये हुए मनुष्य पर्वतशिखरों से गिरा दिये जाने पर भी मरते नहीं हैं और नंगी तलवारों में धेरे के धेरे हुए सत्यवादी मनुष्य समरांगण में से घायल हुए बिना निकल आते हैं, बाल-बाल बच जाते हैं। सत्यवादी मनुष्य लाठियों की मार, रस्सी आदि के बन्धन, बलात्कार और वैर विरोध से छूट जाते हैं और शत्रुओं के बीच से वे निर्दोष निकल जाते हैं। देवता भी सत्यवचन में तत्पर मनुष्यों के सानिध्य में आते हैं। अथवा देवता भी सत्य प्रतिज्ञ पुरुषों के दुघट कार्यों में सहायक बनते हैं। भगवान् तीर्थकरों द्वारा भली-भाँति वर्णित वह सत्य भगवान् दस प्रकार का है।

जिनी का जं जिणवरेहिं पण्णतो इत्थं मे जो मएदेवसिय-राइय-पक्षिय
(वउमासिय, संवच्छरिय) इरियावहि केसलोचाइचारस्स, संथारादिचारस्स पंथादि
चारस्स सव्वतिचारस्स, उत्तमदुर्स्स सम्मचरितं च रोचेमि, विदिए महवदे
मुसावादादो वेरमण, उवडाणमंडले, महत्थे, महागुणे, महाणुभावे, महाजसे,
महापुरिसाणुचिण्हे, अरहंतसकिखयं, सिद्ध सकिखयं साहुसकिखयं, अप्सकिखयं,
परसकिखयं देवतासकिखयं, उत्तमदुर्भि “इदं मे महवदं, सुवदं, ददवद
होदु, णित्थारयं, पारयं, तारयं, आराहियं चावि ते मे भवतु” ॥३॥

“द्वितीयं महाव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रत
समारुद्धं ते मे भवतु” ॥३॥

हे भगवन्! प्रथम महाव्रत से भिन्न द्वितीय मृषात्याग महाव्रत में स्थूल और सूक्ष्म सब मृषावाद का जीवन पर्यन्त तीन प्रकार अर्थात् मन, वचन और काय से त्याग करता हूँ। इस मृषावाद विरति लक्षण वाले द्वितीय महाव्रत में क्षतिकारक (हानि करने वाले) क्रोध से, मान से, माया से, लोभ से, राग से, द्वेष से, मोह से, हास्य से, भय से, प्रद्वेष से, प्रेम से, पिपासा से, लज्जा से, गरव से, अनादर से और उक्त कारणों के अतिरिक्त अन्य किसी कारणों से, उत्पन्न दोष न स्वयं असत्य बोले, न अन्य से असत्य बुलावे और न असत्य बोलने वाले अन्य की अनुमोदना ही करे। हे भगवन्! इस द्वितीय महाव्रत सम्बन्धी अतिचार का प्रतिक्रमण (निराकरण, विशुद्धि) करता हूँ। स्व साक्षी पूर्वक अपनी निंदा करता हूँ, पर गुरु आदि की साक्षी पूर्वक अपनी गर्ही करता हूँ और हे भगवान्! पूर्वकाल में उर्जित अतिचार का भी त्याग करता हूँ जो भी मैंने राग-द्वेष और मोह के वश होकर स्वयं असत्य भाषण किया है, अन्य से असत्य भाषण कराया है और असत्य भाषण करते हुए की अनुमोदना की है उस सबको परित्याग करता हूँ।

इस प्रकार जो कि तीर्थकर देवों के द्वारा प्रतिपादित है, वह द्वितीयसत्य महाव्रतारोपण मेरे अर्हन्त की साक्षी से, सिद्धों की साक्षी से, साधुओं की साक्षी से, आत्म साक्षी से, परसाक्षी से और सब देवताओं की साक्षी से सुव्रत, अखंडव्रत होवे तथा यही महाव्रत, निस्तारक, पारक, तारक, और आराधक होवे। दूसरा महाव्रत सब व्रतधारी प्राणियों में सम्यक्त्व पूर्वक उत्तम व्रतरूप, दृढ़ अखंड व्रतरूप समारुद्ध जो आपमें है वही मुझे भी प्राप्त हो, इस प्रकार के द्वितीय महाव्रत के आरोपण करने पर सब अतिचारों की विशुद्धयर्थ के लिए, दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, (चातुर्मासिक और सांवत्सरिक) इस प्रकार काल के नियम से जो काई अतिचार हुआ है उस सबकी विशुद्धयर्थ तथा ईर्यापथ, केशलोच, मार्गाइत्यादि द्रव्यों के समरन्ध में नियम से जो काई अतिचार हुआ है उस सबकी विशुद्धयर्थ प्रतिक्रमण करता हूँ।

सिद्धान्त रूप में जाना है और इसको आचरण किया। अथवा इसके द्वारा ही देवेन्द्रों और नरेन्द्रों ने मनुष्यों को इस सत्य साध्य का अर्थ बतलाया है वैज्ञानिकों ने इसी सत्य की साधना की है इसका सेवन किया है। यह महाप्रयोजन वाला अथवा गम्भीर अर्थ वाला है। मन्त्रों और औषधियों, विद्याओं को सिद्ध करने में इसका प्रयोजन है। इसमें सार्थकत्व रहता है, चारणगणों और श्रमणों की विद्या इसी से सिद्ध रहती है। यह मानव गणों का वन्दनीय, स्तुत्य है, व्यन्तर-ज्योतिष्क आदि देवगणों का यह अर्चनीय है तथा भवनपति आदि असुर गणों का यह पूजनीय है। नाना प्रकार के व्रत या वेश धारण करने वाले साधुओं ने इसे अंगीकार किया है ऐसा वह सत्यलोक में सारभूत है यानि संसार में समस्त पदार्थों में प्रधान है। क्षेम रहित होने से यह महासमुन्द्र में भी बढ़ा चढ़ा है। प्रण और अटल होने से ये मेरुरूपत से भी बढ़कर स्थिर है। संताप को शान्त करने में बजोड़ होने से यह चन्द्रमण्डल से भी अधिक सौम्य है। वस्तु के कण-कण को यथार्थ रूप से प्रकाशित करने वाला होने से यह सूर्य-मण्डल से भी बढ़ा चढ़कर प्रकाशमान है अथवा कोई भी तेजस्वी इसका तिरस्कार नहीं कर सकता इसलिए शूर समूह से भी तजेर्सी है। निर्दोष होने से शरतकालिन गगन तल से भी अधिक निर्मल है। सहदय लोगों के हृदय को प्रफुल्लित करने वाला होने से यह गन्धमादन (चन्दन वृक्षों के बन वाले गजदन्त) पर्वतों से भी अधिक सुगम्भित है। संसार में जितने भी हरिणगमेषी आह्वान आदि मन्त्र हैं, वशीकरण आदि मन्त्र हैं, मन्त्र तथा विद्या के जप हैं, प्रज्ञाप्ति आदि विद्याएँ हैं, तिर्यच लोकवासी जृमक जाति के देव हैं, फेंक कर चलाए जाने वाले बाण आदि के अस्त्र हैं, सीधे प्रहार किये जाने वाले अस्त्र हैं अथवा अर्थनीति आदि लौकिक शास्त्र हैं, चित्र आदि कलाओं की शिक्षाएँ हैं, सिद्धान्त आगम धर्मशास्त्र हैं, वे सबके सब प्रतिष्ठत हैं। अर्थात् ये सब सत्य से ही उपलब्ध या सिद्ध होते हैं।

वस्तु को यथार्थ रूप में प्रकट करने वाला वह सत्य भी यदि संयम का बाधक हो तो उसे जरा सा भी नहीं करना चाहिए जो हिसा और पाप से मिश्रित हो, चरित्र नाशक तथा स्त्री आदि विकथाओं को भी प्रकट करने वाला हो अथवा फूट डालने वाला तथा व्यर्थ की ढींगे हांकने वाला हो, जो अनार्यों, पापकर्म में प्रवृत्त म्लेच्छों द्वारा बोलने योग्य वचन हो, अथवा अन्याय का पोषक हो, दूसरे पर मिथ्या दोषारोपण करने वाला तथा विवाद पैदा करने वाला हो, दूसरे की विडम्बना, झूठी-आलोचना करके फजीहत करने वाला हो अनुचित जोश और धृष्टता से भरा हुआ हो, लज्जा रहित अपशब्द लोकनिन्दनीय हो तथा जिसे अच्छी तरह न देखा हो, अच्छी तरह न जाना हो अथवा जो हकीकत के विपरीत रूप में देखा हो, सुना हो व अच्छी तरह न जाना हो उस विषय में किंचित मात्र भी नहीं कहना चाहिए। अपनी प्रशंसा और दूसरे की निन्दा करना भी असत्य है। जैसा किसी से कहना कि तू उत्तम स्मरण-शक्ति वाला मेधावी नहीं है। भुलकड़ है तू धनिक नहीं है। द्ररिद्र है। धर्मप्रेमी नहीं है, अधर्मी है। तू कुलीन नहीं है अकुलीन है। तू दाता नहीं है। कंजूस है। तू शूरवीर नहीं, डरपोक है। तू सुन्दर नहीं कुरुप है। तू भाग्यशाली नहीं भाग्यहीन है। तू पंडित नहीं मूर्ख है। तू बहुश्रुत नहीं अल्पज्ञ है। तू तपस्वी नहीं है भोजन भट्ट है। परलोक के विषय में तेरी बुद्धि संशय

रहित नहीं है अर्थात् संशय-ग्रस्त नास्तिक है अथवा जाति (मातृपक्ष) कुल (पितृपक्ष) रूप व्याधि (कोढ़ आदि दुःसाध्य रोग) तथा (बुखार आदि रोग) के निमित्त से भी पर-पीड़ाकारी, निन्दनीय वचन यदि सत्य हो तो भी असत्य होने से सदा के लिए वर्जनीय वचन यदि सत्य हो तो भी असत्य होने से सदा के लिए वर्जनीय समझना चाहिए तथा जो वचन द्रोहयुक्त हैं अथवा दुविधा से भरे हैं अथवा द्रव्य एवं भाव दोनों प्रकार से दूसरे से शिष्टाचार अथवा उपकार का उल्लंघन करने वाले हैं, वे सत्य हो तो भी नहीं बोलना चाहिए। प्रश्न होता है कि तब किस प्रकार का सत्य बोलना चाहिए? (उत्तर में कहते हैं) जो त्रिकालवर्ती, पुदगलादि द्रव्यों से द्रव्य की नई पुरानी क्रमवर्ती पर्यायों से उनके सहभावी वर्ण आदि गुणों से कृषि आदि कर्मों से या उठाने-रखने आदि चेष्टाओं से चित्रकला आदि अनेक शिल्पों से तथा आगमों के सैद्धान्तिक अर्थों से युक्त हो तथा व्युत्पन्न या अव्युत्पन्ननाम, तीनों काल के वाचक क्रियापदों, अव्यय, प्र, परा आदि (जिनके जुड़ जाने पर धात्वर्थ बदल जाता है) उपसर्गों प्रत्यय लगाने पर नये अर्थ के बोधक तद्वित पद, समास पद, सुबन्न, तिगन्त, विभक्तयन्तपद, हेतु यौगिक पद, उणादि-प्रत्यायान्त पद सिद्ध किया। बताने वाले पद भू आदि धातु आकारादि स्वर तथा षड्ज आदि संगीत स्वर अथवा ह्रस्व-दीर्घ, प्लुत रूप मन्त्रोच्चारण कालसूचक स्वर अथवा कहीं स्वर के बदले रस शब्द मिलता है। वहाँ अर्थ होगा—शृंगार आदि नौरस प्रथमा आदि विभक्ति स्वर व्यंजनात्मक वर्ण इन सबसे युक्त हो वह सत्य है ऐसा त्रिकाल विषय सत्य दस प्रकार का होता है। वह सत्य जैसे मुहँ से कहा जाता है वैसे ही कर्म, लेखन, हाथ, पैर, आँख आदि की चेष्टा इंगित आदि आकृति से भी होता है अथवा जैसे बोला है वैसा ही करके बताने से यानि कथन के अनुसार अमल करने से ही सत्य होता है। संस्कृत प्राकृत आदि भेद से बाहर प्रकार की भाषा होती है। तथा एकवचन, द्विवचन आदि भेद से सोलह प्रकार का वचन होता है, इन नाम आदि से संगत वचन ही बोलने योग्य होता है। वही सत्य कहलाता है।

इस प्रकार तीर्थकर भगवान् द्वारा अनुज्ञात आदिष्ठ तथा भली-भाँति सोचा-विचारा हुआ वचन समय (अवसर) आने पर संयमी साधु को बोलना चाहिए। (प्रश्नव्याकरणांग)

अध्याय—14

महाभारत में वर्णित सत्य

सत्यं सत्सु सदा धर्मः सत्यं धर्मः सानतनः

सत्यमेव नमस्येत सत्यं हि परमा गतिः ॥१४॥

सत्युरुषों में सदा सत्यरूप धर्म का ही पालन हुआ है। सत्य ही सनातन धर्म है। सत्य को ही सदा सिर झुकाना चाहिए; क्योंकि सत्य ही जीव की परम गति है।

सत्यं धर्मस्तपो योगः सत्यं ब्रह्म सनातनम् ॥

सत्यं यज्ञः परः प्रोक्तः सर्वं सत्ये प्रतिशिष्ठतम् ॥१५॥

सत्य ही धर्म तप और योग है। सत्य ही सनातन ब्रह्म है सत्य को ही परम यज्ञ कहा गया है तथा सब कुछ सत्य पर ही टिका हुआ है।

सत्य के 13 भेद

सत्यं च समता चैव दमश्चैव न संशयः ।

अमात्सर्यं क्षमा चैव हीस्तिक्षानसूयता ।

त्यागो ध्यानमथार्यत्वं धृतिश्च सततं स्थिरा ।

अहिंसा चैव राजेन्द्र सत्याकारास्त्रयोदश ॥१६॥

राजेन्द्र! सत्य, समता, दम, मत्सरता का अभाव, क्षमा, लज्जा, तितिक्षा (सहनशीलता) अनसूया, त्याग, परमात्मा का ध्यान, आर्यता (श्रेष्ठ आचरण), निरन्तर स्थिर रहने वाली धृति (धैर्य) तथा अहिंसा—ये तेरह सत्य के ही स्वरूप हैं इसमें संशय नहीं है।

सत्यं नामाव्ययं नित्यमविकारि तथैव च ।

सर्वधर्माविरुद्धेन योगेनैतदवाप्यते ॥१०॥

नित्य एकरस, अविनाशी और अविकारी होना ही सत्य का लक्षण है। समरत धर्मों के अनुकूल कर्तव्य पालन रूप योग द्वारा इस सत्य की प्राप्ति होती है।

आत्मनिश्टे तथानिश्टे रिर्पो च समता तथा ।

इच्छाद्वेशक्षयं प्राप्य कामक्रोधक्षयं तथा ॥११॥

अपने प्रिय मित्र में तथा अप्रिय शत्रु में भी समान भाव रखना 'समता' है। इच्छा, (राग), द्वेष, काम और क्रोध को मिटा देना ही समता की प्राप्ति का उपाय है।

दमो नान्यस्पृहा नित्यं गाम्भीर्य धैर्यमेव च ।

अभयं रोगशमनं ज्ञानेनैतदवाप्यते ॥१२॥

किसी दूसरे की वस्तु को लेने की इच्छा न करना, सदा गम्भीरता और धीरता रखना, भय को त्याग देना तथा मन के रोगों को शान्त कर देना—यह 'दम' (मन और इन्द्रियों के संयम) का लक्षण है। इसकी प्राप्ति ज्ञान से होती है।

अमात्सर्यं बुधाः प्राहुर्दने धर्मं च संयमः ॥

अवस्थितेन नित्यं च सत्येनामत्सरी भवेत् ॥१३॥

दान और धर्म करते समय मन पर संयम रखना अर्थात् इस विषय में दूसरों से ईर्ष्या न करना इसे विद्वान लोग 'मत्सरता का अभाव' कहते हैं। सदा सत्य का ही पालन करने से मनुष्य मत्सरता से रहित हो सकता है।

अक्षमायाः क्षमायाश्च प्रियाणीहाप्रियाणि च ।

क्षमते सम्मतः साधुः साध्वाप्नोति च सत्यवाक् ॥१४॥

जो सहने और न सहने योग्य व्यवहारों तथा प्रिय एवं अप्रिय वचनों को भी समान रूप से सहन कर लेता है, वही सर्वसम्मत, क्षमाशील श्रेष्ठ पुरुष है। सत्यवादी पुरुष को ही उत्तम रीति से क्षमाभाव की प्राप्ति होती है।

कल्याणं कुरुते बाढं धीमान् न ग्लायते क्वचित् ।

प्रशान्तावांगना नित्यं हीस्तु धर्माद्वाप्यते ॥१५॥

जो बुद्धिमान् पुरुष भली—भाँति दूसरों का कल्याण करता है और मन में कभी खेद नहीं मानता, जिसकी मन वाणी सदा शान्त रहती है, वह लज्जाशील माना जाता है। यह लज्जा नामक गुण धर्म के आचरण से प्राप्त होता है।

धर्मार्थहेतोः क्षमते तितिक्षा क्षान्तिरुच्यते ।

लोकसंग्रहणार्थं वै सा तु धैर्येण लभ्यते ॥१६॥

धर्म ओर अर्थ के लिए मनुष्य जो कष्ट सहन करता है, उसकी वह सहनशीलता 'तितिक्षा' कहलाती है। लोगों के सामने आदर्श उपस्थित करने के लिए उसका अवश्य पालन करना चाहिए। तितिक्षा की प्राप्ति धैर्य से होती है। (दूसरों के दोष न देखना 'अनसूया' है।)

त्यागः स्नेहस्य यत् त्यागो विशयाणां तथैव च ।

रागद्वेशप्रहीणस्य त्यागो भवति नान्यथा ॥१७॥

विषयों की आसक्ति का जो त्याग है, वही वास्तविक त्याग है। राग—द्वेष से रहित होने पर ही त्याग की सिद्धि होती है, अन्यथा नहीं (परमात्म—चिन्तन का नाम की 'ध्यान' है।)

आर्यता नाम भूतानां यः करोति प्रयत्नतः ।

शुभं कर्म निराकारो वितरागस्तथैव च ॥१८॥

जो मनुष्य अपने को प्रकट न करके प्रयत्न पूर्वक प्राणियों की भलाई का काम करता रहता है, उसके उस श्रेष्ठ भाव और आचरण का नाम ही 'आर्यता' है। यह आसक्ति के त्याग से प्राप्त होता है।

धृतिर्नाम सुखे दुःखे यथा नान्तोति विक्रियाम् ।

तां भजेत सदा प्राज्ञो य इच्छैद भूतिमात्मनः ॥१९॥

सुख या दुःख प्राप्त होने पर मन में विकार न होना 'धृति' है। जो अपनी उत्तरि चाहता हो, उस बुद्धिमान् पुरुष को सदा ही 'धृति' का सेवन करना चाहिए। सर्वथा क्षमिणा भावं तथा सत्यपरेण च ।

वीतहर्षभयक्रोधो धृतिमाप्नोति परिष्ठतः ॥२०॥

मनुष्य को सदा क्षमाशील होना तथा सत्य में तत्पर रहना चाहिए।

अध्याय—15

विभिन्न धर्म में वर्णित सत्य

1) वैदिक धर्म में वर्णित सत्य

अहिंसा सत्यमस्तेयं भौचमिन्द्रियनिग्रहः ।

एवं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्यब्रवीन्मनुः । ॥६३मनुस्मृति

अहिंसा (किसी को भी मन, वाणी और शरीर से दुःख न देना) सत्य बोलना, चोरी नहीं करना, पवित्रता और इंद्रियों का निग्रह करना ये संक्षेप से चारों वर्णों का धर्म मनु जी ने कहा है।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं भौचमिन्द्रियनिग्रहः

धीर्विद्या सत्यमक्रोधोदशकं धर्मं लक्षणम् ॥१२

संतोष, क्षमा, मन को दबाना, अन्याय से किसी की वस्तु न लेना, शारीरिक पवित्रता, इन्द्रियों का निग्रह (विषयों से उन्हें रोकना), बुद्धि (शास्त्रादि तत्त्व का ज्ञान), विद्या (आत्म बोध), सत्य (यथार्थ कथन), क्रोध न करना ये दस धर्म के लक्षण हैं।

2) बौद्ध धर्म में वर्णित सत्य

अनुपवादो अनुपधातो पातिमोक्षे च संवरो ।

मतञ्जुता च भृतस्मि पन्तं च सायनासन ।

अधिविच्चे च आयोगो एवं बुद्धान सासनं ॥१७

निंदा न करना, घात न करना प्रतिमोक्ष में संयम रखना, भोजन में मात्रा जानना, एकांतवास, चित्त को योग में लगाना यह बौद्धों की शिक्षा है।

सुखो बुद्धान उप्पादो सुखा सद्व्यापदेसना ।

सुखा संघस्स सामग्री समग्रान तपो सुखो ॥१६

सुख दायक है बौद्धों का जन्म, सुखदायक है सद्व्याप का उपदेश, संघ में एकता सुखदायक है और सुखदायक है एकतायुक्त तप करना।

सीलदस्सनसम्पन्नं धम्भृं सच्चवादिनं ।

अत्तनो कम्मकुब्बानं तं जनो कुरुते पियं ॥१९

जो शील और दर्शन (सम्यग्दृष्टि) से संपन्न, धर्म में स्थित, सत्यवादी और अपने कामों को करने वाला है उसे (पुरुष) लोग प्रेम करते हैं।

अकोधेन जिने कोधं असाधुना जिने ।

जिने कदरियं दानेन सच्चेन अलिकवादिनं ॥१३ (कोधवग्गो)

अक्रोध से क्रोध को जीते, असाधु को साधुता (भलाई) से जीते, कंजुस को दान से जीते, झूठ बोलने वाले को सत्य से जीते।

सच्चं भणे न कुज्जेय्य दज्जाप्परिम्भिय याचितो ।

एतेहि तीहि ठानेहि गच्छे देवान सन्तिके ॥१४

सच बोले, क्रोध न करे, थोड़ा भी माँगने पर दे, इन तीनों से पुरुष देवताओं के पास जाता है।

जिसने हर्ष, भय और क्रोध तीनों को त्याग दिया है। उसने विद्वान पुरुष को ही 'धैर्य' की प्राप्ति होती है।

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा ।

अनुग्रहश्च दानं च सत्तां धर्मः सनातनः ॥ १२१

मन, वाणी और क्रिया द्वारा सभी प्राणियों के साथ कभी द्वोह न करना तथा दया और दान यह श्रेष्ठ पुरुषों का सनातन धर्म है।

एते त्रयोदशाकाराः पृथक् सत्यैकलक्षणाः ।

मजन्ते सत्यमेवेह बृहंयेन्ते च भारत ॥ १२२

ये पृथक—पृथक तेरह रूपों में बताये हुए धर्म एकमात्र सत्य को ही लक्षित कराने वाले हैं। ये सत्य का ही आश्रय लेते और उसी की बुद्धि एवं पुष्टि करते हैं।

नान्तः शक्यो गुणानां च वक्तुं सत्यस्य पार्थिव ।

अतः सत्यं प्रशंसन्ति विप्राः सपितुदेवताः ॥ १२३

पृथ्वीनाथ! सत्य के गुणों की सीमा नहीं बतायी जा सकती। इसलिए पितर और देवताओं के सहित ब्राह्मण सत्य की प्रशंसा करते हैं।

नास्ति सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम् ।

स्थितिर्हि सत्यं धर्मस्य तस्मात् सत्यं न लोपयेत् ॥ १२४

सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं और झूठ से बढ़कर कोई पातक नहीं है। सत्य ही धर्म की अधारशिला है; अतः सत्य का लोप न करे।

उपैति सत्यादु दानं हि तथा यज्ञः सदक्षिणाः ।

त्रैताग्निहोत्रं वेदाश्च ये चान्ये धर्मनिश्चया ॥ १२५

दान का दक्षिणाओं सहित यज्ञ का, त्रिविध अग्नियों में हवन का, वेदों के स्वाध्याय का तथा अन्य जो अन्य जो धर्म का निर्णय करने वाले शास्त्र हैं, उनके भी अध्ययन का फल मनुष्य सत्य से प्राप्त कर लेता है।

अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् ।

अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥ १२६

यदि एक और एक हजार अश्वमेध यज्ञों को और दूसरी ओर एक मात्र सत्य को तराजू पर रखका जाए तो एक हजार अश्वमेध यज्ञों की अपेक्षा सत्य का ही पलड़ा भारी होगा।

अहिंसका ये मनुयो निच्चं कायेन संवुता ।

ये यन्ति अच्वुतं ठानं यथं गन्त्वा न सोवरे ॥ १५

जो मनुष्य हिंसा से रहित, नित्य अपने शरीर में संयत है, वे उस अच्वुत पद को प्राप्त करते हैं जिसे प्राप्त कर वे शोक नहीं करते हैं।

वचीपकोपं रक्खेय वाचाय संवुतो सिया ।

वची दुच्चरितं हित्वा वाचाय सुचरितं चरे ॥ ११२

वाणी के दुराचार से बचे, वाणी से संयत रहे। वाणी के दुराचार को छोड़ वाणी के सदाचार का आचरण करे।

कायेन संवुता धीरा अथो वाचाय संवुता ।

मनसा संवुता धीरा ते वे सुपरिसंवुता ॥ ११४

जो धीर पुरुष काय से संयत, वाणी से संयत और मन से संयत रहते हैं, वे ही पूर्ण रूप से संयत रहते हैं, वे ही पूर्ण रूप से संयत हैं।

यो पाणमति पातेति मुसावादं च भासति ।

लोके अदिनं आदियति परदारं च गच्छति ॥ ११२

सुरामेरयपानं च यो नरो अनुयुज्जति ।

इधेवमेसो लोकस्मिं मूलं खनति अत्तनो ॥ ११३ (मलवग्गो)

जो जीव हिंसा करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, पर-स्त्री गमन करता है, शराब—दारु पीता है वह इस संसार में अपनी ही जड़ खोदता है।

3) यहूदी धर्म में वर्णित सत्य—प्रेम, करुणा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, श्रमनिष्ठा, भूमि की सेवा, अनाथों, पीड़ित और विधवाओं की सेवा सदाचार और पवित्रता यही तो है यहोवा को प्रसन्न करने के उपाय।

4) पारसी धर्म में वर्णित सत्य—हम पवित्र विचार करें। पवित्र काम करे। हमारे विचार, हमारे वचन और हमारे कर्म—सब पवित्र हो।

हे परम प्रभु परमेश्वर! तेरा सत् हमारे साथ हो। हम केवल वही सोचना चाहते हैं और वही कहना चाहते हैं, और करना चाहते हैं जिससे इहलोक और परलोक, दोनों में हमारा कल्याण हो। प्रभु जरथुश्त्र के भक्तों, अपने हाथों, पैरों को और मन को तैयार रखो कि वे सत्कर्म करने में लेश मात्र की भी देर न करें। गलत कामों को हमेशा टालें। इस संसार में सत्य कर्म करने के लिए विशेष रूप से उत्सुक रहो, जिससे तुम व्याज के सहित अपना कर्ज चुका सको।

इन बातों से अपने को कडाई से बचाओ—क्रोध, पराई निंदा, असत्य, कज्जूरी, उद्घण्डन, जिद्दिपन, लूटपाट और अच्छाई का विरोध।

अभिमानिमार्द्वेतसं पुरुष प्रहवयति प्रियं वचः ॥ ११ श्लोकार्धसूति संग्रह पृ ११७

दयार्द्र चित्त वाले अभिमानी पुरुष को भी प्रिय वचन नम्र कर देते हैं।

असत्यं पुरुष ग्राम्यं न जातु वचनं वदेत् ॥ १२

आर्य पुरुष कभी असत्य, कठोर और अश्लील वचन न बोलें।

असत्यमपि मन्यन्ते लोकाः सत्यं ससाक्षिकम् ॥ १३

अन्य की साक्षी पूर्वक कही गई असत्य बात भी सत्य मानी जाती है। उपेयते सर्वजनैः प्रदेष्टा, यथा समुद्रः सरितासमूहैः ॥ १४

जैसे नदियों का समूह समूद्र में समिलित होता है वैसे ही विशेष वक्ता के सान्निध्य में जन समूह उपस्थित होता है।

कस्योन्नतिं न कुरुते भुवि साधुवाक्यं ॥ १५

संसार में साधु (जन) वचन किसकी उन्नति नहीं करते, अपितु सबका कल्याण करते हैं।

क्षिपेद् वाक्यं शरांस्तीक्ष्णान्, न पारुष्यव्यप्लुतान् ॥ १६

कठोर और तीक्ष्ण वाक्य रूपी बाण नहीं चलाने चाहिए।

गुरुणां वचनं पथ्यं, कवीनां रसवद्वचः ॥ १७

गुरुओं के वचन पथ्यरूप हितकारी होते हैं और कवियों के वचन रस रूप होते हैं।

जिनेश्वरमुखोत्पन्नं वाक्यं स्वार्गापवर्गदम् ॥ १८

जिनेश्वर के मुख से निर्गत वचन भव्य जीवों को स्वर्ग—मोक्ष के सुख को देने वाले हैं।

न सत्यमपि वक्तव्यं पुंसा साक्षिविवर्जितम् ॥ १९

साक्षी के बिना विवेकी पुरुष को सत्य बात भी नहीं कहनी चाहिए।

परपीडाकरं वाक्यं वर्जनीयं प्रयत्नतः ॥ १०

दूसरों को पीड़ा उत्पन्न करने वाले वचनों से प्रयत्न—पूर्वक वचना चाहिए।

पीयूषं न हि निःशेषं पिबन्नेव सुखायते ॥ ११

सारा अमृत पीने से ही कुछ सुख प्राप्त नहीं होता, थोड़ा पीने से भी होता है। (हित के थोड़े से भी वचन सुखकारी होते हैं।)

ब्रुवन्ति न कदा सन्तः प्राणत्यागेप्यसत्यकम् ॥ १२

सज्जन प्राणनाश का अवसर आने पर भी असत्य—वचन नहीं बोलते।

भारत्यपि न वक्तव्या, दुरितादानकारिणी ॥ १३

पापास्त्रव करने वाली वाणी नहीं बोलनी चाहिए।

मधुरं वरुवन् यथोच्चिंतं, परपृष्ठोऽपि जनस्य वल्लभः ॥ १४

मिष्ट शब्द बोलने वाली कोकिल समस्त जीवों को प्रिय होती है।

युष्णं पुनातु भारत्या लक्षणाढ्यं पदद्वयं ॥ १५

अनेक शुभ लक्षणों से समन्वित जिनवाणी के चरण—द्वय तुम लोगों को पवित्र करें।

वित्थे मुनिवाक्येऽपि प्रामाण्यं वचने कुरुतः ॥ १६

यदि मुनि का वाक्य भी झूठा हो गया तो फिर किसी के वचन का भी प्रमाण नहीं रहा।

सतां हि कुलविद्येयं, यन्मनोहरभाषम् ॥ १७

मनोहर वचन बोलना यह सज्जनों की कुलविद्या है।

सुखावबोधप्रायेण प्राणिभ्यो रोचते वचः ॥ १८

प्रायः सरलता से बोध कराने वाले वचन ही संसारी प्राणियों को रूचिकर होते हैं।

सुवशीकरणं शरीरिणं प्रियवाक्यादपरं न विद्यते । १९

प्रिय वचन के अतिरिक्त संसार में जीवों को वशीकरण करने का अन्य उपाय नहीं है।

सुस्तिनग्धा मधुरा नूनं, संता भवति भारती । २०

सज्जन पुरुषों की वाणी स्नेहपूर्ण एवं कर्ण प्रिय होती है।

स्वामिनश्च गुरुणां च नाधिक्षेप्यं वचो वदेत् ॥ २१

हिंसा एवं असत्य का भयावह परिणाम

स्वस्तिकावती नाम की एक सुन्दर नगरी थी। उसके राजा का नाम विश्वावसु था। विश्वावसु की रानी श्रीमती थी। उसके एक वसु नाम का पुत्र था।

वहीं एक क्षीरकदम्ब उपाध्याय रहते थे। वे बड़े सुचित्र और सरल—स्वभावी थे। जिन भगवान् के वे भक्त थे और होम, शान्ति—विधान आदि जैन क्रियाओं द्वारा गृहस्थों के लिये शान्ति—सुखार्थ अनुष्ठान करना उनका काम था। उनकी स्त्री का नाम स्वस्तिमती था। उसके पर्वत नाम का एक पुत्र था। भाग्य से वह पापी और दुर्वर्षसनी हुआ। कर्मों की कैसी विचित्र स्थिति है कि पिता कितना धर्मात्मा और सरल और उसका पुत्र दुराचारी। इसी समय एक विदेशी ब्राह्मण नारद, जो कि निरभिमानी और सच्चा जिन भक्त था, क्षीरकदम्ब के पास पढ़ने के लिये आया। राजकुमार वसु, पर्वत और नारद ये तीनों एक साथ पढ़ने लगे। वसु और नारद की बुद्धि अच्छी थी, सो वे तो थोड़े ही समय में अच्छे विद्वान् हो गये। रहा पर्वत सो एक तो उसकी बुद्धि ही खराब, उस पर पाप के उदय से उसे कुछ नहीं आता—जाता था। अपने पुत्र की यह हालत देखकर उसकी माता ने एक दिन अपने पति से गुस्सा होकर कहा—जान पड़ता है। आप बाहर के लड़कों को तो अच्छी तरह पढ़ाते हैं और विशेष अपने पुत्र पर आपका ध्यान नहीं है—उसे आप अच्छी तरह नहीं पढ़ाते। इसीलिये उसे इतने दिन तक पढ़ाते रहने पर भी कुछ नहीं आया। क्षीरकदम्ब ने कहा—इसमें मेरा कुछ दोष नहीं है। तो सबके साथ एक सा ही श्रम करता हूँ। तुम्हारा पुत्र ही मूर्ख है, पापी है, वह कुछ समझता ही नहीं। बोलो, अब इसके लिए मैं क्या करूँ? स्वस्तिमती को इस बात पर विश्वास हो, इसलिये उसने तीनों शिष्यों को बुलाकर कहा—पुत्रों, देखो तुम्हें एक—एक पाई दी जाती है, इसे लेकर तुम बाजार जाओ और अपने बुद्धिबल से इसके द्वारा घने लेकर खाओ और पाई पीछे वापिस भी लौटा लाओ। तीनों गये। उनमें पर्वत एक जगह से चने मोल लेकर और वहीं खा—पीकर सूने हाथ घर लौट आया। अब रहे वसु और नारद, सो इन्होंने पहले तो चने मोल लिये और फिर उन्हें इधर—उधर घूमकर बैठा, जब उनकी पाई वसूल हो गई तब बाकी बचे चनों को खाकर वे लौट आये। आकाश उन्होंने गुरुजी की अमानत उहें वापिस सौंप दी। इसके बाद क्षीरकदम्ब ने एक दिन तीनों को आटे के बने हुए तीन बकरे देकर उनसे कहा—देखो, इन्हें ले जाकर और जहाँ कोई न देख पाये ऐसे एकान्त स्थान में इनके कानों को छेद लाओ। गुरु की आज्ञानुसार तीनों फिर इस नये काम में लग गये। पर्वत ने तो एक जंगल में जाकर बकरे का कान छेद डाला। वसु और नारद बहुत जगह गये, सर्वत्र उन्होंने एकान्त

स्थान ढूँढ डाला, पर उन्हें कहीं उनके मन लायक स्थान नहीं मिला अथवा यों कहिये कि उनके विचारानुसार एकान्त स्थान कोई था ही नहीं। वे जहाँ पहुँचते और मन में विचार करते वहीं उन्हें चन्द्र, सूर्य, तारा, देव, व्यन्तर, पशु, पक्षी और अवधिज्ञानी मुनि आदि जान पड़ते। वे उस समय यह विचार कर कि ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ कोई न देखता हो, वापिस घर लौट आये। उन्होंने उन बकरों के कानों को नहीं छेदा। आकर उन्होंने गुरु जी को नमस्कार किया और अपना सब हाल उनसे कह सुनाया। सच है—बुद्धि कर्म के अनुसार ही हुआ करती है। उनकी बुद्धि की इस प्रकार चतुरता देखकर उपाध्यायजी ने अपनी प्रिया से कहा—क्यों देखी सबकी बुद्धि और चतुरता? अब कहो दोष मेरा या पर्वत के भाग्य का?

एक दिन की बात है कि वसु से कोई ऐसा अपराध बन गया, जिससे उपाध्याय ने उसे बहुत मारा। उस समय स्वस्तिमती ने बीच में पड़कर वसु को बचा लिया। वसु ने अपनी बचाने वाली गुरुमाता से कहा—माता, तुमने मुझे बचाया इससे बड़ा उपकृत हुआ। कहो तुम्हें क्या चाहिये? वही लाकर मैं तुम्हें प्रदान करूँ। स्वस्तिमती ने उत्तर में राजकुमार से कहा—पुत्र, इस समय तो मुझे कुछ आवश्यकता नहीं है, पर जब होगी तब माँगूँगी। तू मेरे इस बर को अभी अपने पास ही रख।

एक दिन क्षीरकदम्ब के मन में प्रकृति की शोभा देखने के लिये उत्कंठा हुई। वह अपने साथ तीनों शिष्यों को भी इसलिये लिवा ले गये कि उन्हें वहीं पाठ भी पढ़ा दूँगा। वह एक सुन्दर बगीचे में पहुँचे। वहाँ कोई अच्छा पवित्र स्थान देखकर वे अपने शिष्यों को बृहदारण्य का पाठ पढ़ाने लगे। वहीं और दो ऋद्धिधारी महामुनि स्वाध्याय कर रहे थे। उनमें से छोटे मुनि ने क्षीरकदम्ब को पाठ पढ़ाते देखकर बड़े मुनीराज से कहा—प्रभो, देखिए कैसे पवित्र स्थान में उपाध्याय अपने शिष्यों को पढ़ा रहे हैं। गुरु ने कहा—अच्छा है, पर देखो, इनमें से दो तो पुण्यात्मा हैं और वे स्वर्ग में जायेंगे और दो पाप के उदय से नकों के दुःख सहेंगे। सच है—

कर्मों के उदय से जीवों को सुख या दुःख भोगना ही पड़ता है। मुनि के बचन क्षीरकदम्ब ने सुन लिए। वह अपने विद्यार्थियों को घर भेजकर मुनीराज के पास गये। उन्हें नमस्कार कर उसने पूछा—हे भगवन्! हे जैन सिद्धान्त के उत्तम विद्वान्! कृपाकर मुझे कहिए कि हम में से कौन दो तो स्वर्ग जाकर सुखी होंगे और कौन दो नक्क जायेंगे? काम के शत्रु मुनीराज ने क्षीरकदम्ब से कहा—भव्य, स्वर्ग जाने वालों में एक तो तू जिनक्त और दूसरा धर्मात्मा नारद है और वसु तथा पर्वत पाप के उदय से नक्क जायेंगे। क्षीरकदम्ब मुनीराज को नमस्कार कर अपने घर आया। उसे इस बात का बड़ा दुःख हुआ कि उसका पुत्र नरक में जायेगा क्योंकि मुनियों का कहा अनन्तकाल में भी झूठा नहीं होता।

एक दिन कोई ऐसा कारण दीख पड़ा, जिससे वसु के पिता विश्वावसु अपना राज—काज वसु को सौंपकर आप साधु हो गये। राज्य अब वसु करने लगा। एक दिन यसु वन—विहार के लिए उपवन में गया हुआ था। वहीं उसने आकाश से लुढ़क कर गिरते एक पक्षी को देखा। देखकर उसे आश्चर्य हुआ। उसने सोचा पक्षी के लुढ़कते

हुए गिरने का कोई कारण यहाँ अवश्य होना चाहिए। उसकी शोध लगाने को जिधर से पक्षी गिरा था उधर ही लक्ष्य बांधकर उसने बाण छोड़ा। उसका लक्ष्य व्यर्थ न गया। यद्यपि उसे यह नहीं जान पड़ा कि क्या गिरा, पर इतना उसे विश्वास हो गया कि उसके बाण के साथ ही कोई भारी वस्तु गिरी जरूर है। जिधर से किसी वस्तु के गिरने की आवाज उसे सुन पड़ी थी वह उधर ही गया पर तब भी उसे कुछ नहीं दिखा। पड़ा। यह देख उसने उस भाग को हाथों से टटोलना शुरू किया। हस्तस्पर्श से उसे एक निर्मल खम्मा, जो कि स्फटिक-मणि का बना था, जान पड़ा। वसुराजा उसे गुप्तराति से अपने महल में ले आया। वसु ने खम्मे के चार पाये बनवाये और न्याय-सिंहासन के लिए लगवा दिये। उन पायों के लगने से सिंहासन ऐसा जान पड़ने लगा मानो वह आकाश में ठहरा हुआ हो। धूर्त वसु अब उसी पर बैठकर राज्यशासन करने लगा। उसने सब जगह यह प्रगट कर दिया कि 'राजा वसु बड़ा ही सत्यवादी है, उसकी सत्यता के प्रभाव से उसका न्यायसिंहासन आकाश में ठहरा हुआ है।' इस प्रकार कपट की आड़ में वह अब सर्वसाधारण के बहुत ही आदर का पात्र हो गया। सच है—मायावी पुरुष संसार में क्या ठगाई नहीं करते। इधर सम्यग्दृष्टि, जिनभृता क्षीरकदम्ब संसार से विरक्त होकर तपस्वी हो गया और अपनी शक्ति के अनुसार तपस्या कर अन्त में समाधिमरण द्वारा उसने स्वर्ग लाभ किया। पिता का उपाध्याय पद अब पर्वत को मिला। पर्वत को जितनी बुद्धि थी, जितना ज्ञान था, उसके अनुकूल वह पिता के विद्यार्थियों को पढ़ाने लगा। उसी वृत्ति के द्वारा उसका निर्वाह होता था। क्षीरकदम्ब के साधु हुए बाद ही नारद भी वहाँ से अन्यत्र चल दिया। वर्षों तक नारद विदेशों में घूमा फिरा। घूमते—फिरते वह फिर भी एक बार स्वस्तिकापुरी की ओर आ निकला। वह अपने सहाध्यायी और गुरुपुत्र पर्वत से मिलने को गया। पर्वत उस समय अपने शिष्यों को पढ़ा रहा था। साधारण कुशल प्रश्न के बाद नारद वहीं बैठ गया और पर्वत का अध्यापन कार्य देखने लगा। प्रकरण कर्मकाण्ड का था। वहाँ एक श्रुति थी—“अजैर्यश्टव्यमिति” दुराग्रही पापी पर्वत ने उसका अर्थ किया कि “अजैश्छाग्रं प्रयश्टव्यमिति” अर्थात्—बकरों की बली देकर होम करना चाहिये। उससे बाधा देकर नारद ने कहा—नहीं, इस श्रुति का यह अर्थ नहीं है। गुरुजी ने तो हमें इसका अर्थ बतलाया था कि अजैस्त्रिवाशिकैर्धान्यैः प्रयश्टव्यम् अर्थात्—तीन वर्ष के पुराने धान से, जिसमें उत्पन्न होने की शक्ति न हो, होम करना चाहिए। पापी, तू यह क्या अनर्थ करता है जो उलटा ही अर्थ कर दिया? उस पर पापी पर्वत ने दुराग्रह के वश हो यही कहा कि नहीं तुम्हारा कहना सर्वथा मिथ्या है। असल से “अज” शब्द का अर्थ बकरा ही होता है और उसी से होम करना चाहिए। ठीक कहा है—

जिसे दुर्गति में जाना होता है, वही पुरुष जानकर भी ऐसा झूठ बोलता है। तब दोनों में सच्चा कौन है, इसके निर्णय के लिए उन्होंने राजा वसु को मध्यस्थ चुना। उन्होंने परस्पर में प्रतिज्ञा की कि जिसका कहना झूठ हो उसकी जबान काट दी जाय। पर्वत की माँ को जब इस विवाद का और परस्पर की प्रतिज्ञा का हाल मालूम हुआ तब उसने पर्वत को बुलाकर बहुत डाँटा और गुस्से में आकर कहा—पापी, तूने यह क्यों

अनर्थ किया? क्यों उस श्रुति का उल्टा अर्थ किया? तुझे नहीं मालूम कि तेरा पिता जैनधर्म का पूर्ण श्रद्धानी था और वह अजैर्यष्टव्यम् इसका अर्थ तीन वर्ष के पुराने धान से होम करने का करता था और स्वयं भी वह पुराने धान से ही सदा होमादिक किया करता था। स्वस्तिमती ने उसे और भी बहुत फटकारा, पर उसका फल कुछ नहीं निकला। पर्वत अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ बना रहा। पुत्र का इस प्रकार का दुराग्रह देखकर वह अधीर हो उठी। एक ओर पुत्र के अन्याय पक्ष का समर्थन होकर सत्य की हत्या होती हैं और दूसरी ओर पुत्र—प्रेम उसे अपने कर्तव्य से विचलित करता है। अब वह क्या करे? पुत्र प्रेम में फंसकर सत्य की हत्या करे या उसकी रक्षाकर अपना कर्तव्य पालन करे? वह बड़े संकट में पड़ी। आखिर दोनों शक्तियों का युद्ध पुत्र—प्रेम ने विजय प्राप्त कर उसे अपने कर्तव्य पथ से गिरा दिया—सत्य की हत्या करने को उसे सत्रद्ध किया। वह उसी समय वसु के पास पहुँची और बोली—पुत्र—तुम्हें याद होगा कि मेरा एक बर तुमसे पाना बाकी है। आज उसकी मुझे जरूरत पड़ी है। इसलिए अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह कर मुझे कृतार्थ करो। बात यह है—पर्वत और नारद का किसी विषय पर झगड़ा हो गया है। उसके निर्णय के लिये उन्होंने तुम्हें मध्यस्थ चुना है। इसलिए मैं तुम्हें कहनें को आई हूँ कि तुम पर्वत के पक्ष का समर्थन करना। सच है—जो स्वयं पापी होते हैं वे दूसरों को भी पापी बना डालते हैं। जैसे सर्प स्वयं जहरीला होता है और जिसे काटता है उसे भी विषयुक्त कर देता है। पापियों का यह स्वभाव ही होता है।

राजसभा लगी हुई थी। बड़े—बड़े कर्मचारी यथा स्थान बैठे हुए थे। राजा वसु भी एक सुन्दर रत्न जड़े सिंहासन पर बैठा हुआ था। इतने में पर्वत और नारद अपना न्याय कराने के लिए राजसभा में आये। दोनों अपना न्याय कराने के लिए अपना—अपना कथन सुनाकर अन्त में किसका कहना सत्य है और गुरुजी ने अपने को अजैर्यष्टव्यम् इसका क्या अर्थ समझाया था, इसका खुलासा करने का भार वसु पर छोड़ दिया। वसु उक्त वाक्य का ठीक अर्थ जानता था और यदि वह चाहता तो सत्य की रक्षा कर सकता था, पर उसे अपनी गुरुआणीजी के मांगे हुए वर ने सत्यमार्ग से ढकेल कर आग्रही और पक्षपाती बना दिया। मिथ्या आग्रह के वश हो उसने अपनी मानमर्यादा और प्रतिष्ठा की कुछ परवाह न कर नारद के विरुद्ध फैसला कर दिया। उसने कहा कि जो पर्वत कहता है वही सत्य है और गुरुजी ने हमें ऐसा ही समझाया था कि अजैर्यष्टव्यम् इसका अर्थ बकरों को मारकर उनसे होम करना चाहिए। प्रकृति को यह महा अन्याय सहन नहीं हुआ। उसका परिणाम यह हुआ कि राजा वसु जिस स्फटिक के सिंहासन पर बैठकर प्रतिदिन राजकार्य करता था और लोगों को यह कहा करता था कि मेरे सत्य के प्रभाव से मेरा सिंहासन आकाश में ठहरा हुआ है, वही सिंहासन वसु की असत्यता से टूट पड़ा और पृथ्वी में घुस गया। उसके साथ ही वसु भी पृथ्वी में जा धूँसा। यह देख नारद ने उसे समझाया—महाराज, अब भी सत्य—सत्य कह दीजिए, गुरुजी ने जैसा अर्थ कहा था वह प्रगट कर दीजिए। अभी कुछ नहीं गया। सत्यव्रत आपकी इस संकट से अवश्य रक्षा करेगा। कुगति में व्यर्थ अपनी आत्मा को न ले जाइए। अपनी इस पर दुर्दशा पर भी वसु को दया नहीं आई। वह और जोश

जैन धर्म की कुछ विशेषताएं / मौलिकताएं

- 1) जैन धर्म विश्व एवं विश्व के समस्त चेतन-अचेतन द्रव्यों को अकृत्रिम, शाश्वतिक मानता है, अतः इसके निर्माता, पालक, संहार कर्ता को नहीं मानता है।
- 2) प्रत्येक जीव स्व-स्व कर्म के अनुसार जन्म- मरण, सुख- दुःख को भोगता है, अतः जीव को सुख-दुःखादि देने में अन्य कोई शक्ति/ ईश्वर आदि की मान्यता नहीं है। ब्रह्माण्ड में अनन्तानन्त अशुद्ध संसारी जीव हैं तो अनन्तानन्त शुद्ध मुक्त जीव हैं।
- 3) प्रत्येक भव्य जीव योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के माध्यम से पुरुषार्थ करते हुए भगवान् / परमात्मा बन सकता है। परमात्मा संख्या की दृष्टि से अनन्तानन्त है। परमात्मा पुनः जन्म ग्रहण/ अवतार ग्रहण नहीं करते हैं।
- 4) जैन धर्मावलम्बी केवल मनुष्य ही नहीं हो सकते हैं परन्तु पशु- पक्षी, देव, नारकी, भूत, प्रेत, राक्षस भी हो सकते हैं। केवल इसमें शर्त है सत्य- निष्ठा, भाव की पवित्रता, व्यवहार में आर्द्धता।
- 5) स्व कर्मानुसार मनुष्य मरकर भगवान्, देव, नारकी, पशु- पक्षी, कीट-पतंग आदि बन सकता है तो पशु मरकर देव, मनुष्य, नारकी और देव मरकर मनुष्य, पशु- पक्षी बन सकता है। देव मरकर देव एवं नारकी तथा नारकी मरकर नारकी एवं देव नहीं बन सकते हैं। पशु- पक्षी, देव, नारकी, वस्त्रपति, कीट-पतंग भी कालान्तर में भगवान् बन सकते हैं। भगवान् बनने के पूर्व तक प्रायः प्रत्येक जीव अनन्त बार मनुष्य, देव, नारकी, पशु- पक्षी, वृक्ष बन चुका होता है।
- 6) सूर्य, चंद्र, ग्रह आदि असंख्यात- असंख्यात हैं अर्थात् इनकी संख्या अनेक करोड़ों- अरबों से भी अधिक हैं।
- 7) जैनधर्म कर्म को केवल भावात्मक संस्कार मात्र ही नहीं मानता परन्तु उसमें भौतिक- कर्म परमाणुओं को भी स्वीकार करता है।
- 8) विश्व के प्रत्येक चेतन, अचेतन द्रव्य परस्पर सहयोगी/ उपकारी/ प्रभावकारी होते हैं अर्थात् केवल परस्परोग्रहो जीवानाम् ही नहीं परन्तु परस्परोपग्रहो द्रव्याणाम् भी है। इसके बिना किसी भी द्रव्य की सत्ता, अवस्था, परिणमशीलता, क्रिया, अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व आदि संभव नहीं हैं, तथापि प्रत्येक द्रव्य वस्तु स्वातंत्रता की अपेक्षा पृथक्-पृथक्/ मौलिक है।
- 9) जैन धर्म में आंशिक सत्य को नय एवं पूर्ण सत्य को प्रमाण माना है। आंशिक को आंशिक एवं पूर्ण को पूर्ण सापेक्ष दृष्टि से मानने पर सत्य मानता है परन्तु निरपेक्ष दृष्टि से मानने पर मिथ्या / असत्य मानता है। इसको जैन धर्म के महान् सिद्धान्त अनेकान्तवाद/ सापेक्षवाद या नयवाद/ स्याद्वाद कहते हैं।
- 10) भाव की शुद्धता के लिए सब धार्मिक व्रत-नियम, पूजा-पाठ, रीति-रिवाज, क्रिया-काण्ड हैं। यदि भाव शुद्धि के लिए व्रतादि कारण नहीं बने तो उस व्रतादि को धर्म नहीं कहा जाएगा। 11) असत् से सत् की या चेतन से अचेतन या अचेतन से चेतन की उत्पत्ति जैनधर्म स्वीकार नहीं करता है। परन्तु प्रत्येक द्रव्य में, गुणों में परिवर्तन मानता है। 12) जैन धर्म में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, क्षमा, मार्दव, सरलता, निर्लोभता, संयम, तप, त्याग, सत्-विश्वास, सच्चा-विज्ञान, सदाचार जीव रक्षा के साथ-साथ प्रत्येक वस्तु के स्वशुद्ध-स्वरूप को सार्वभौम धर्म माना है।
- 13) निरूपतम स्वार्थी तथा निरूपतम प्राणी परन्तु भृत्य के छणाड़ (४)

में आकर बोला—नहीं, जो पर्वत कहता है वही सत्य है। इतना उसका कहना था कि उसके पाप के उदय ने उसे पृथ्वीतल में पहुँचा दिया। वसु काल के सुपुर्द हुआ। मरकर वह सातवें नरक में गया। सच है जिनका हृदय दुष्ट और पापी होता है उनकी बुद्धि नष्ट हो जाती है और अन्त में उन्हें कुगति में जाना पड़ता है। इसलिए जो अचौरुपुरुष हैं और पाप से बचना चाहते हैं उन्हें प्राणों पर कष्ट आने पर भी कभी झूल न बोलना चाहिए। पर्वत की यह दुष्टता देखकर प्रजा के लोगों ने उसे गधे पर बैठा कर शहर से निकाल बाहर किया और नारद का बहुत आदर-सत्कार किया।

नारद अब वहीं रहने लगा। वह बड़ा बुद्धिमान और धर्मात्मा था। सब शास्त्रों में उसकी गति थी। वह वहाँ रहकर लोगों को धर्म का उपदेश दिया करता, भगवान की पूजा करता, पात्रों को दान देता। उसकी यह धर्म परायणता देखकर वसु के बाद राज्यसिंहासन पर बैठने वाला राजा उस पर बहुत खुश हुआ। उस प्रसन्नता में उसने नारद को गिरिट नामक नगरी का राज्य भेंट में दे दिया। नारद ने बहुत तक उस राज्य का सुख भोगा। अन्त में संसार से उदासीन होकर उसने जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। मुनि होकर उसने अनेक जीवों को कल्याण के मार्ग में लगाया और तपस्या द्वारा पवित्र रत्नत्रय की आराधना के अन्त में वह सर्वार्थसिद्धि गया, जो कि सर्वोत्तम सुख का स्थान है। साभार-आराधना कथाकोश पृ. 215-224

Let me bring Love

Lord make me an instrument of Thy peace
“where There is ”hate, ‘That I may” bring love.
“Where There is ”offence, “That I may” bring pardon.
“Where There is ” discord “ that I may” bring union.
“Where There is ” error, “ That I may” bring truth.
“Where There is ” doubt. “That I may” bring faith.
“Where There is ” despair, “That I may” bring hope.
“Where There is ” darkness. “That I may” bring light.
“where There is ” sadness, “That I may” bring joy.

हे प्रभु मुझे अपनी शान्ति का एक यन्त्र बना।

जहाँ धृणा है, वहाँ मैं प्रेम ला सकूँ।

जहाँ आक्रमण है, वहाँ मैं क्षमा ला सकूँ।

जहाँ मतभेद है, वहाँ मैं मेल मिलाप ला सकूँ।

जहाँ भूल है, वहाँ मैं सच्चाई ला सकूँ।

जहाँ सन्देह है, वहाँ मैं विश्वास ला सकूँ।

जहाँ निराशा है, वहाँ मैं आशा ला सकूँ।

आचार्य कनकनन्दी जी के विविध शोध पूर्ण-ग्रन्थ

19-11-2007 से परिवर्तित मूल्य

I आध्यात्मिक

	मुल्य
1) अनेकान्त सिद्धान्त (द्वि.सं.)	41
2) अहिंसामृतम् (द्वि. सं.)	25
3) अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग	21
4) अपुनरागमन पथः मोक्षमार्ग	05
5) आदर्श नागरिक की प्रायोगिक क्रियायें	05
6) आहार दान से अभ्युदय	9
7) उपवास का धार्मिक वैज्ञानिक विश्लेषण	15
8) जीवन्त धर्म सेवा धर्म	11
9) तत्त्वानुचिन्तन (द्वि. सं.)	30
10) दिग्म्बर साधु का नग्नत्व एवं केशलोंच (हिन्दी, मराठी, गुजराती, उर्दू (11सं.)	5
11) धर्म, जैन धर्म तथा भ. महावीर	25
12) बन्धु बंधन के मूल	51
13) विनय मोक्षद्वारा	31
14) विश्व धर्मसभा (समोवशरण)	21
15) क्षमा वीरस्य भूषणम् (तृ.सं.)	25
16) श्रमण संघ संहिता	30
17) त्रैलोक्य पूज्य ब्रह्मचर्य (द्वि. सं.)	25

II आध्यात्मिक-विज्ञान(गणित)

1) अनन्त शक्ति सम्पन्न परमाणु से लेकर परमात्मा	201
2) धर्म विज्ञान बिन्दु	15
3) धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका-(पु.1) स.सं.	15
4) धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका-(पु.2) ष.सं.	20
5) धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका-(पु.3) ष.सं.	30
6) धर्म दर्शन एवं विज्ञान (द्वि.सं.)	101
7) ब्रह्माण्डीय जैविक-भौतिक एवं रसायन विज्ञान-	125
8) ब्रह्माण्ड के रहस्य	25

9) ब्रह्माण्ड एवं प्रतिब्रह्माण्ड : धार्मिक वैज्ञानिक विश्लेषण-	15
10) विश्व विज्ञान रहस्य	151
11) विश्व प्रतिविश्व एवं श्याम-विवर	25
12) वैज्ञानिक आईन्स्टीन के सिद्धान्तों को पुनः परीक्षण की आवश्यकता-	15
13) ब्रह्माण्ड-काल-आकाश एवं जीवः अनन्त (बडा)	201
14) ब्रह्माण्ड-काल-आकाश एवं जीवः अनन्त	25
(III) आध्यात्मिक मनो-विज्ञान	
1) अतिमानवीय शक्ति (द्वि. सं.)	51
2) क्रान्ति के अग्रदूत (द्वि. सं.)	21
3) कर्म का दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण (द्वि. सं.)	75
4) ध्यान का वैज्ञानिक विश्लेषण (द्वि. सं.)	31
5) लेश्या मनोविज्ञान (द्वि. सं.)	11
6) तत्त्व चिन्तन-सर्व धर्म समता से विश्व शान्ति	51
(IV) शिक्षा-मनोविज्ञान	
1) आचार्य कनकनन्दी दृष्टि में शिक्षा	11
2) नैतिक शिक्षा एवं सामान्य ज्ञान	40
3) सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान(बृहत्)	301
4) सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान (छोटा)	21
(V) शोध (धार्मिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक)	
1) अग्नि परीक्षा	11
2) अनुभव चिन्तामणि	10
3) ऊठे ! जागो ! प्राप्त करो (हिन्दी, कन्नड)	11
4) करें साक्षात्कार यथार्थ सत्य का	50
5) करें साक्षात्कार यथार्थ धर्म एवं भाव का	40
6) जैन धर्मावलम्बी संख्या और उपलब्धि	21
7) जीवन विकास एवं विनाश के सूत्र	10
8) जैन धर्मावलम्बिओं की दिशा-दशा-आशा	5
9) जैन एकता एवं विश्व शान्ति	5
10) धार्मिक कुरीतियों का परिशोधन (द्वि.सं.)	10
11) नग्र सत्य का दिग्दर्शन	15
12) निकृष्टतम स्वार्थी तथा क्रूरतम प्राणीः मनुष्य	10

13) प्रथम शोध बोध-आविष्कार एवं प्रवक्ता-	25
14) प्राचीन भारत की 72 कलायें	11
15) भ्रष्टाचार उन्मूलन	5
16) भारत को गारत एवं महान् भारत बनाने के सूत्र	5
17) भारत के सर्वोदय के उपाय	5
18) मानवीय निकृष्ट संघर्ष का इतिहास	10
19) मेरा लक्ष्य-साधना एवं अनुभव	10
20) ये कैसे धर्मात्मा, निव्यसनी, राष्ट्र सेवी	11
21) व्यसन का धार्मिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण (च.सं.)	51
22) विज्ञान को भी अविज्ञात सत्य	20
23) शाश्वत समस्याओं का समाधान	18
24) शिक्षा, संस्कृति एवं नारी गरिमा	61
25) संगठन के सूत्र (द्वि.सं.)	25
26) संस्कार (हिन्दी, गुजराती, मराठी, कन्नड़) 15 वां. सं.	10
27) संस्कार (बृहत्)	50
28) सत्यान्वेषी आ. कनकनन्दी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व	5
29) संस्कृति की विकृति	10
30) संस्कार और हम	25
31) हिंसा की प्रतिक्रिया है : प्राकृतिक प्रकोपादि	25
32) क्षमा वीरस्य भूषणम् (तृ. सं.)	21
33) विभिन्न क्रम विकासवाद एवं परम आध्यात्मि विकासवाद	25
34) भारत की अन्तरंग खोज	10
35) विभिन्न भावात्मक प्रदूषण एवं भ्रष्टाचारः कारण तथा निवारण	15
36) वर्तमान की आवश्यकता : धार्मिक उदारता न कि कट्टरता	15
37) वैश्वीकरण वैश्वीक-धर्म एवं विश्वशान्ति	21

VI अनुवाद, टीका, समीक्षा(आध्यात्मिक विज्ञान)

1) इष्टोपदेश (आध्यात्मिक - मनोविज्ञान)	101
2) पुरुषार्थसिद्धयुपाय (अहिंसा का विश्वस्वरूप)	201
3) विश्व द्रव्य-विज्ञान (द्रव्य संग्रह)	101
4) स्वतंत्रता के सूत्र (मोक्ष शास्त्र)द्वि. सं.	201
5) सत्यसाम्यसुखामृतम् (प्रवचनसार)	501

VII मीमांसा, समालोचना, संकलन

1) कौन है विश्व का कर्ता- हर्ता-धर्ता?	11
2) ज्वलन्त शंकाओं का शीतल समाधान (द्वि. सं.)	41
3) जिनार्चना पुष्प-1(तृ.सं.)	51
4) जिनार्चना पुष्प-2	21
5) निमित्त उपादान मीमांसा (द्वि.सं.)	7
6) पुण्य पाप मीमांसा (द्वि.सं.)	15
7) पूजा से मोक्ष, पुण्य, पाप भी	21
8) भाग्य एवं पुरुषार्थ (हिन्दी, मराठी) पं.सं.	15
9) शोधपूर्ण ग्रन्थ तथा ग्रन्थ कर्ता आ.कनकनन्दी-	10
10) अमृतत्व की उपलब्धि के हेतु समाधि - मरण	40
11) परोपदेश कुशल बहुतेरे....	5

VIII इतिहास

1) अयोध्या का पौराणिक, ऐतिहासिक एवं राजनैति विश्लेषण	11
2) ऋषभ पुत्र भरत से भारत (द्वि. सं.)	21
3) धर्म प्रवर्तक 24 तीर्थकर (द्वि. सं.)	21
4) पाश्वर्नाथ का तपोपसर्ग कैवल्य धामः बिजौलिया	15
5) भारतीय आर्य कौन कहाँ से- कब से कहाँ के ?	50
6) युग निर्माता भ.ऋषभदेव (द्वि. सं.)	61
7) युग निर्माता भ.ऋषभदेव (पद्यानुवाद)	5
8) विश्व इतिहास	25

(IX) स्मारिका (वैज्ञानिक संगोष्ठी)

1) कर्म सिद्धान्त और उसके वैज्ञानिक मनोविज्ञान एवं सामाजिक आयाम-	60
2) शिक्षा-शोधक-स्मारिका-	100
3) स्मारिका (स्वतंत्रता सूत्र में विज्ञान)	81
4) स्मारिका (स्वतंत्रता के सूत्र में विज्ञान)	51
5) जैन धर्म में विज्ञान	150
6) भारतीय संस्कृति में विश्व शान्ति और पर्यावरण सुरक्षा के सूत्र	20
7) मंथन (जैन दर्शन एवं विज्ञान)	50

X स्वप्न, शकुन-भविष्य विज्ञान, मंत्र, सामुद्रिक शास्त्र (शरीर से भविष्य ज्ञान)

1) भाव-भाग्य तथा अंग-विज्ञान (सर्वांग विज्ञान की वैज्ञानिक गवेषणा)	251
--	-----

2) भविष्य फल विज्ञान (द्वि.सं.)	201	2) Leshya Psychology	11
3) मंत्र-विज्ञान (द्वि.सं.)-	25	3) Moral Education	25
4) शकुन-विज्ञान 30	5	4) Nakedness of Digambar Jain Saints and Kesh Lonch	5
5) स्वप्न-विज्ञान (द्वि.सं.)	101	5) SansKaras	5
		6) Sculopr the Rishabhadev	51
XI स्वास्थ्य विज्ञान		7) Phylosophy of Scientific religion	51
1) समग्र स्वास्थ्य के उपाय: तपस्या	25	8) What kinds of Dharmatma (piousman) these are	51
2) आर्दश विचार-विहार-आहार	51	(XV) डॉ. एन. एल. कछारा के साधित्य (संस्थान के सचिव)	
3) धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान (पु.1) तृ.सं.	50	1) जैन कर्म सिद्धान्तः आध्यात्म और विज्ञान	50
4) धर्म एवं स्वास्थ्यविज्ञान (पु.2)	21	2) समवशरण (आ. कनकनन्दी से भेट वार्ता)	
5) शारीरीक-मानसिक-आध्यात्मिक स्वास्थ्य के विविध आयाम	201	3) Jain Doctrine of Karma	21
XII प्रवचन			
1) क्रान्ति दृष्टा प्रवचन	11	XIV प्रकाशनार्थी तैयार	
2) जीने की कला (संवर्द्धित द्वि. सं.)	25	1) विश्व के परम विचित्र प्राणी: मानव, -पृष्ठ 400	
3) भ. महावीर तथा उनका दिव्य संदेश	5	2) पंचविध एकेन्द्रिय जीव, - पृष्ठ- 200	
4) भारत को पुनःविश्वगुरु बनाने के लिए समग्र क्रान्ति चाहिए	11	3) विविध दीक्षा विधि, - पृष्ठ -50	
5) मनन एवं प्रवचन	5		
6) विश्व शान्ति के अमोघ-उपाय (द्वि.सं.)	10	XVI आगामी प्रकाशनाधीन ग्रंथ	
7) विश्व धर्म के दस लक्षण	41	1) न्याय, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजविज्ञान: पृष्ठ संख्या लगभग 1000	
8) व्यक्ति एवं समाज निर्माण के आद्य कर्तव्य	15	2) भारत का दिव्य संदेश : पृष्ठ लगभग 500 से 750 तक	
9) शान्ति क्रान्ति के विश्व नेता बनने के उपाय	41	4) परम्परा, धर्म एवं विज्ञान :- परम्पराओं में धर्म क्या है? अधर्म क्या है? विज्ञान क्या है? अविज्ञान क्या है? यह सिद्ध किया जायेगा। पृष्ठ-प्रायः 100	
10) समग्र क्रान्ति के उपाय	15	8) परम पर्यावरण वैज्ञानिक तीर्थकर एवं पर्यावरण की सुरक्षा: पृष्ठ प्रायः 400 से 500	
11) सत्य परमेश्वर	75	10) कल्याणकारक : जैन आयुर्वेद विज्ञान-पृष्ठ प्रायः1100 (वैज्ञानिक समीक्षा)	
XIII कथा		11) भाव ही-कल्पवृक्ष, चिंतामणि, कामधेनु - पृ. 200	
1) कथा सुमन मालिका	15		
2) कथा सौरभ	21		
3) कथा पारिजात	15		
4) कथा पुष्पाजली	15		
5) कथा चिन्तामणि	15		
6) कथा त्रिवेणी	8		
XIV अंग्रेजी साधित्य			
1) Fate and efforts	15		

आचार्य श्री कनक नन्दी जी गुरुदेव संसंघ के विशेष कार्यक्रम (2007 तक)

1. www.jainkanaknandhi.org
2. E-mail-info@jainkanaknandhi.org.
3. राष्ट्रीय / अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठियाँ-10
4. धर्म दर्शन विज्ञान प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन-29
5. धार्मिक प्रशिक्षण कक्षाएँ—सैंकड़ों
6. स्वसंघ—परसंघ के साधुओं के अध्ययन—अध्यापन के कार्यक्रम—सैंकड़ों
7. प्रश्न मंच एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम, भजन, भाषण, सेवा—सैंकड़ों
8. बच्चों, युवक—युवतियों को संस्कारवान बनाना एवं उनसे आहार लेना—हजारों
9. हर क्षेत्र में अच्छे व्यक्ति को एवं संस्थाओं को पुरस्कृत करना—हजारों
10. हर विधा के वैज्ञानिक शोधपूर्ण साहित्यों का सृजन एवं प्रकाशन 172 ग्रन्थ (छह भाषाओं में अनेक संस्करण)
11. कम्प्यूटराइज्ड प्रतियोगिता-11)
12. अनेक विश्वविद्यालयों में ‘आचार्य श्री कनकनन्दी साहित्य कक्ष’ की स्थापना।
13. गरीब, असहाय, रोगी, विफल मनुष्य एवं पशु—पक्षियों की सेवा—सहायता करना।
14. व्यक्ति से लेकर राष्ट्र एवं विश्व में समता—सुख—शान्ति—मित्रता, संगठन आदि की स्थापना के लिए प्रयास।
15. धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान(बडौत, मुजफ्फरनगर, कोटा, उदयपुर, सलूम्बर, प्रतापगढ़, मुंबई, अमेरिका, सागवाडा, गाजियाबाद)
16. धर्म दर्शन सेवा संस्थान (उदयपुर, अमेरिका)
17. जैन, हिन्दू, मुसलमान शोध छात्रों द्वारा आचार्य श्री कनकनन्दी साहित्यों के ऊपर शोध (Ph.D.) कार्य।
18. अमेरिका, इंग्लैण्ड, आस्ट्रेलिया आदि देश—विदेश में स्व—वैज्ञानिक शिष्यों द्वारा धर्म प्रभावना।

संस्थान की नियमावली

1. विवक्षित पुस्तक के प्रकाशक, द्रव्यदाता को उस किताब की दशमांश प्रतियाँ दी जायेगी।
2. ग्रन्थ प्रकाशक (द्रव्य दाता) ग्रन्थमाला का आजीवन सदस्य रहेगा तथा ग्रन्थमाला से प्रकाशित पुस्तक की एक—एक प्रति निःशुल्क दी जायेगी।
3. साधु—साधी, विशिष्ट विद्वत् जन और विशिष्ट धर्मायतनों को शोध कार्य हेतु पुस्तक निःशुल्क दी जायेगी।
4. संस्थान से संबन्धित कार्य कर्त्ताओं को प्रकाशित पुस्तकों की एक—एक प्रति निःशुल्क दी जायेगी।

5. 1. संस्थान की वार्षिक सदस्यता केवल 501 रुपये,
2. 3 वर्ष सदस्यता 1301 रुपये,
3. 5 वर्ष सदस्यता 2101 रुपये,
4. आजीवन सदस्यता 7001 रुपये,
5. संरक्षक सदस्यता 11001 रुपये,
6. परम संरक्षक सदस्यता 25001 रुपये,
7. शिरोमणी संरक्षक सदस्यता 51001 रुपये,
8. परम शिरोमणी संरक्षक सदस्यता 100001 रुपये है।

6. साहित्य प्रेमियों के लिए छूट

शिविर, संगोष्ठी, शोध (Ph.d.) विश्वविद्यालय आदि में साहित्य कक्ष आदि महत्वपूर्ण कार्य में प्रयोग में आने वाले आचार्य श्री कनकनन्दी के विशेष ग्रन्थ एवं जिल्ड वाले ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों के ऊपर 10 प्रतिशत छूट, विशेष संगोष्ठी आदि के अवसर पर विशेष छूट। सामान्यतः 10 प्रतिशत छूट 1000 रुपये से अधिक साहित्य क्रय करने पर 25 प्रतिशत छूट होगी।

7. आपका अन्य सहयोग

संगोष्ठि, शिविर आदि में साहित्य, पुरस्कार आर्थिक सहायता, श्रमदान आदि देकर।

प्राप्ति स्थान —

धर्म दर्शन सेवा संस्थान, द्वारा—
छोटू लाल चितौड़ा,
चंद्रप्रभ दि. जैन मंदिर आयड़,

आयड़ बस—स्टॉप के पास उदयपुर— 313001(राज.)

फोन नं.— (0294) 2413565. 5561114, 5561115, 5561116, 5561117, 5561118, 5561119, 5561120, 5561121, 5561122, 5561123, 5561124, 5561125, 5561126, 5561127, 5561128, 5561129, 5561130, 5561131, 5561132, 5561133, 5561134, 5561135, 5561136, 5561137, 5561138, 5561139, 5561140, 5561141, 5561142, 5561143, 5561144, 5561145, 5561146, 5561147, 5561148, 5561149, 5561150, 5561151, 5561152, 5561153, 5561154, 5561155, 5561156, 5561157, 5561158, 5561159, 5561160, 5561161, 5561162, 5561163, 5561164, 5561165, 5561166, 5561167, 5561168, 5561169, 5561170, 5561171, 5561172, 5561173, 5561174, 5561175, 5561176, 5561177, 5561178, 5561179, 5561180, 5561181, 5561182, 5561183, 5561184, 5561185, 5561186, 5561187, 5561188, 5561189, 5561190, 5561191, 5561192, 5561193, 5561194, 5561195, 5561196, 5561197, 5561198, 5561199, 5561200, 5561201, 5561202, 5561203, 5561204, 5561205, 5561206, 5561207, 5561208, 5561209, 5561210, 5561211, 5561212, 5561213, 5561214, 5561215, 5561216, 5561217, 5561218, 5561219, 5561220, 5561221, 5561222, 5561223, 5561224, 5561225, 5561226, 5561227, 5561228, 5561229, 5561230, 5561231, 5561232, 5561233, 5561234, 5561235, 5561236, 5561237, 5561238, 5561239, 5561240, 5561241, 5561242, 5561243, 5561244, 5561245, 5561246, 5561247, 5561248, 5561249, 5561250, 5561251, 5561252, 5561253, 5561254, 5561255, 5561256, 5561257, 5561258, 5561259, 5561260, 5561261, 5561262, 5561263, 5561264, 5561265, 5561266, 5561267, 5561268, 5561269, 5561270, 5561271, 5561272, 5561273, 5561274, 5561275, 5561276, 5561277, 5561278, 5561279, 5561280, 5561281, 5561282, 5561283, 5561284, 5561285, 5561286, 5561287, 5561288, 5561289, 5561290, 5561291, 5561292, 5561293, 5561294, 5561295, 5561296, 5561297, 5561298, 5561299, 5561300, 5561301, 5561302, 5561303, 5561304, 5561305, 5561306, 5561307, 5561308, 5561309, 5561310, 5561311, 5561312, 5561313, 5561314, 5561315, 5561316, 5561317, 5561318, 5561319, 5561320, 5561321, 5561322, 5561323, 5561324, 5561325, 5561326, 5561327, 5561328, 5561329, 5561330, 5561331, 5561332, 5561333, 5561334, 5561335, 5561336, 5561337, 5561338, 5561339, 5561340, 5561341, 5561342, 5561343, 5561344, 5561345, 5561346, 5561347, 5561348, 5561349, 5561350, 5561351, 5561352, 5561353, 5561354, 5561355, 5561356, 5561357, 5561358, 5561359, 5561360, 5561361, 5561362, 5561363, 5561364, 5561365, 5561366, 5561367, 5561368, 5561369, 5561370, 5561371, 5561372, 5561373, 5561374, 5561375, 5561376, 5561377, 5561378, 5561379, 5561380, 5561381, 5561382, 5561383, 5561384, 5561385, 5561386, 5561387, 5561388, 5561389, 5561390, 5561391, 5561392, 5561393, 5561394, 5561395, 5561396, 5561397, 5561398, 5561399, 5561400, 5561401, 5561402, 5561403, 5561404, 5561405, 5561406, 5561407, 5561408, 5561409, 5561410, 5561411, 5561412, 5561413, 5561414, 5561415, 5561416, 5561417, 5561418, 5561419, 5561420, 5561421, 5561422, 5561423, 5561424, 5561425, 5561426, 5561427, 5561428, 5561429, 5561430, 5561431, 5561432, 5561433, 5561434, 5561435, 5561436, 5561437, 5561438, 5561439, 5561440, 5561441, 5561442, 5561443, 5561444, 5561445, 5561446, 5561447, 5561448, 5561449, 5561450, 5561451, 5561452, 5561453, 5561454, 5561455, 5561456, 5561457, 5561458, 5561459, 5561460, 5561461, 5561462, 5561463, 5561464, 5561465, 5561466, 5561467, 5561468, 5561469, 5561470, 5561471, 5561472, 5561473, 5561474, 5561475, 5561476, 5561477, 5561478, 5561479, 5561480, 5561481, 5561482, 5561483, 5561484, 5561485, 5561486, 5561487, 5561488, 5561489, 5561490, 5561491, 5561492, 5561493, 5561494, 5561495, 5561496, 5561497, 5561498, 5561499, 5561500, 5561501, 5561502, 5561503, 5561504, 5561505, 5561506, 5561507, 5561508, 5561509, 5561510, 5561511, 5561512, 5561513, 5561514, 5561515, 5561516, 5561517, 5561518, 5561519, 5561520, 5561521, 5561522, 5561523, 5561524, 5561525, 5561526, 5561527, 5561528, 5561529, 5561530, 5561531, 5561532, 5561533, 5561534, 5561535, 5561536, 5561537, 5561538, 5561539, 5561540, 5561541, 5561542, 5561543, 5561544, 5561545, 5561546, 5561547, 5561548, 5561549, 5561550, 5561551, 5561552, 5561553, 5561554, 5561555, 5561556, 5561557, 5561558, 5561559, 55615510, 55615511, 55615512, 55615513, 55615514, 55615515, 55615516, 55615517, 55615518, 55615519, 55615520, 55615521, 55615522, 55615523, 55615524, 55615525, 55615526, 55615527, 55615528, 55615529, 55615530, 55615531, 55615532, 55615533, 55615534, 55615535, 55615536, 55615537, 55615538, 55615539, 55615540, 55615541, 55615542, 55615543, 55615544, 55615545, 55615546, 55615547, 55615548, 55615549, 55615550, 55615551, 55615552, 55615553, 55615554, 55615555, 55615556, 55615557, 55615558, 55615559, 55615560, 55615561, 55615562, 55615563, 55615564, 55615565, 55615566, 55615567, 55615568, 55615569, 55615570, 55615571, 55615572, 55615573, 55615574, 55615575, 55615576, 55615577, 55615578, 55615579, 55615580, 55615581, 55615582, 55615583, 55615584, 55615585, 55615586, 55615587, 55615588, 55615589, 55615590, 55615591, 55615592, 55615593, 55615594, 55615595, 55615596, 55615597, 55615598, 55615599, 556155100, 556155101, 556155102, 556155103, 556155104, 556155105, 556155106, 556155107, 556155108, 556155109, 556155110, 556155111, 556155112, 556155113, 556155114, 556155115, 556155116, 556155117, 556155118, 556155119, 556155120, 556155121, 556155122, 556155123, 556155124, 556155125, 556155126, 556155127, 556155128, 556155129, 556155130, 556155131, 556155132, 556155133, 556155134, 556155135, 556155136, 556155137, 556155138, 556155139, 556155140, 556155141, 556155142, 556155143, 556155144, 556155145, 556155146, 556155147, 556155148, 556155149, 556155150, 556155151, 556155152, 556155153, 556155154, 556155155, 556155156, 556155157, 556155158, 556155159, 556155160, 556155161, 556155162, 556155163, 556155164, 556155165, 556155166, 556155167, 556155168, 556155169, 556155170, 556155171, 556155172, 556155173, 556155174, 556155175, 556155176, 556155177, 556155178, 556155179, 556155180, 556155181, 556155182, 556155183, 556155184, 556155185, 556155186, 556155187, 556155188, 556155189, 556155190, 556155191, 556155192, 556155193, 556155194, 556155195, 556155196, 556155197, 556155198, 556155199, 556155200, 556155201, 556155202, 556155203, 556155204, 556155205, 556155206, 556155207, 556155208, 556155209, 556155210, 556155211, 556155212, 556155213, 556155214, 556155215, 556155216, 556155217, 556155218, 556155219, 556155220, 556155221, 556155222, 556155223, 556155224, 556155225, 556155226, 556155227, 556155228, 556155229, 556155230, 556155231, 556155232, 556155233, 556155234, 556155235, 556155236, 556155237, 556155238, 556155239, 556155240, 556155241, 556155242, 556155243, 556155244, 556155245, 556155246, 556155247, 556155248, 556155249, 556155250, 556155251, 556155252, 556155253, 556155254, 556155255, 556155256, 556155257, 556155258, 556155259, 556155260, 556155261, 556155262, 556155263, 556155264, 556155265, 556155266, 556155267, 556155268, 556155269, 556155270, 556155271, 556155272, 556155273, 556155274, 556155275, 556155276, 556155277, 556155278, 556155279, 556155280, 556155281, 556155282, 556155283, 556155284, 556155285, 556155286, 556155287, 556155288, 556155289, 556155290, 556155291, 556155292, 556155293, 556155294, 556155295, 556155296, 556155297, 556155298, 556155299, 556155300, 556155301, 556155302, 556155303, 556155304, 556155305, 556155306, 556155307, 556155308, 556155309, 556155310, 556155311, 556155312, 556155313, 556155314, 556155315, 556155316, 556155317, 556155318, 556155319, 556155320, 556155321, 556155322, 556155323, 556155324, 556155325, 556155326, 556155327, 556155328, 556155329, 556155330, 556155331, 556155332, 556155333, 556155334, 556155335, 556155336, 556155337, 556155338, 556155339, 556155340, 556155341, 556155342, 556155343, 556155344, 556155345, 556155346, 556155347, 556155348, 556155349, 556155350, 556155351, 556155352, 556155353, 556155354, 556155355, 556155356, 556155357, 556155358, 556155359, 556155360, 556155361, 556155362, 556155363, 556155364, 556155365, 556155366, 556155367, 556155368, 556155369, 556155370, 556155371, 556155372, 556155373, 556155374, 556155375, 556155376, 556155377, 556155378, 556155379, 556155380, 556155381, 556155382, 556155383, 556155384, 556155385, 5

आचार्य श्री कनकनन्दी पुस्तक समीक्षा

समीक्षक—डॉ. पारसमल अग्रवाल (भूतपूर्व वैज्ञानिक—अमेरिका)
लेखक — आचार्य श्री कनकनन्दी जी पृष्ठ—400, मूल्य—201 प्राप्ति — स्थान धर्म दर्शन सेवा संस्थान, द्वारा— छोटू लाल चितौड़ा, चंदप्रभ दि. जैन मंदिर आयड, आयड बस—स्टॉप के पास उदयपुर— 313001(राज.) फोन नं.—(0294) 2413565. 6941114

नास्तिक हो या आस्तिक, श्वेतांबर हो या दिग्म्बर, जैन हो या वैष्णव, विद्वान् हो या अल्पज्ञानी जिज्ञासु, इस पुस्तक में सभी के लिए माल है, सभी के लिए उपयोग हो जानकारी है। जो नास्तिक हैं उनको भी एक साथ कुछ ही पृष्ठों को पढ़ने से आधुनिक विज्ञान के गहनतम विषयों की झलक देखने को मिल सकती है। सापेक्ष सिद्धान्त, क्वाण्टम सिद्धान्त, स्ट्रिंग थ्योरी, जिनोम सिद्धान्त आदि वैज्ञानिक विषयों का उल्लेख करके भक्तों को एवं श्रद्धालुओं को आधुनिक विज्ञान को भी विद्वान् मनीषी लेखक ने सरल शब्दों में परोसा है। अध्याय—३ (पृष्ठ 194—267) लगभग पूरा—का—पूरा वैदिक धर्म के तथ्यों को समर्पित किया है। यह एक सुन्दर प्रयोग इस रूप में भी है कि पाठक विभिन्न दार्शनिक ग्रन्थों का लाभ एक ही पुस्तक में प्राप्त करने में समर्थ हो सकेंगे। इस अध्याय में पृ. 227 पर आचार्य श्री लिखते हैं, सृष्टि की रचना में भगवान् तो केवल निमित्त मात्र ही हैं क्योंकि उसका प्रधान कारण तो “सृष्टि पदार्थों की शक्तियाँ ही हैं।” वैदिक दर्शन के वर्णन वाले अध्याय में ऐसा पढ़कर एक पाठक को यह जिज्ञासा हो सकती है कि क्या यह तथ्य वैदिक संस्कृति से सम्बन्धित किसी ग्रन्थ से है? वस्तुतः इस तरह के संकलन से न केवल जानकारी में वृद्धि होती है अपितु सहिष्णुता एवं एकता के भावों में भी वृद्धि होती है। पृष्ठ 54 से 56 में वर्णित अनन्त (Infinite) की विवेचना एक शोध कर्ता के लिए बहुत उपयोगी हो सकती है। इस विवेचना को समझने में एक कठिनाई यह आ सकती है कि अनन्त की गणना हेतु अनन्त का सहारा लिया है (देखिए पृ. 56, चौथी पंक्ति) विस्वृत वर्णन की आवश्यकता इस बात को रेखांकित करती है कि एक पुस्तक एक गुरु की पूर्णता नहीं कर सकती है। किसी भी तथ्य को ठीक से समझने हेतु जीते—जागते गुरु के पास तो एक जिज्ञासु को आना ही होता है। पृ. 31 पर क्वाण्टम सिद्धान्त के वर्णन के सन्दर्भ में आचार्य श्री लिखते हैं—“नए विज्ञान में, अपेक्षित प्रायिकताओं (Probabilities) पर बल था। यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता था कि एक स्थिति के बाद कौन सी स्थिति आयेगी। आज विज्ञान इस प्रायिकता की उपेक्षा नहीं कर सकता।” उक्त वैज्ञानिक दृष्टिकोण अनिश्चितता सिद्धान्त पर आधारित है। क्या यह अनिश्चितता सिद्धान्त आत्मा एवं कर्मधूलि (कर्म परमाणु) के प्रभाव को नकारने का परिणाम है? आचार्य श्री के द्वारा लिखित उक्त कथन को पढ़ने के बाद यदि किसी जिज्ञासु के मन में ऐसा प्रश्न पैदा होता है तो इसका हाँ में उत्तर अति उपयोगी सिद्ध हो सकता है। उक्त तीन उदाहरण तो नमूनों के रूप में हैं—एक दो नहीं अनेकों स्थलों पर इस पुस्तक में आध्यात्मिक एवं भौतिक ज्ञान संबंधित नवीन जानकारी एक पाठक को मिल सकती है। एक तरह से यह पुस्तक कई प्रकार के सुन्दर पुष्टों का संकलन कहा जा सकता है। आचार्य श्री ने अपने अध्ययन एवं अनुभव के आधार पर जनोपयोगी तथ्यों का यह सुन्दर संकलन किया है। इसका लाभ लेकर जिज्ञासु अपने जीवन में अधिक पवित्रता की प्रेरणा प्राप्त कर सकेंगे—ऐसी आशा लेखक को है एवं मैं भी इस में पूर्णतया सहमत हूँ।

डॉ. पारसमल अग्रवाल 15 / 11 / 2007



आचार्य श्री कनकनन्दी के आशीर्वाद से, आचार्य श्री महाप्रज्ञ चातुर्मास व्यवस्था समिति एवं धर्म दर्शन सेवा संस्थान (आ. श्री कनकनन्दी द्वारा आशीर्वाद प्राप्त) के प्रायोजकत्व तथा विज्ञान समिति (उदयपुर) एवं न विश्व भारती विश्व विद्यालय (लाडनूँ) के आयोजकत्व में और मोहन लाल खाडिया विश्व विद्यालय के सहयोग से आयोजित संगोष्ठी में सम्बोधन करते हुए डॉ. नारायण लाल कच्छारा (सचिव— धर्म—दर्शन—सेवा संस्थान)



मुनि आध्यात्मनन्दी की दीक्षा के साधनामय एक वर्ष के पूर्ण की पुण्य—स्मृति में था शान्ति—समतापूर्ण साधनामय पावन वर्षयोग (ग.पु. कॉ. सागवाड़ा 2007) के बन—स्मरणार्थ मुनि आध्यात्मनन्दी के गृहस्थ परिवार की तरफ से प्रकाशित यह थ। दीक्षा के अवसर पर पिच्छी प्रदान करते हुए परिवारजन (सागवाड़ा—2006)



आचार्य श्री कनकनन्दी के आशीर्वाद से, आचार्य श्री महाप्रज्ञ चातुर्मास व्यवस्था
समिति एवं धर्म दर्शन सेवा संस्थान (आ. श्री कनकनन्दी द्वारा आशीर्वाद प्राप्त)
के प्रायोजकत्व तथा विज्ञान समिति (उदयपुर) एवं जैन विश्व भारती विश्व
विद्यालय (लाडनूँ) के आयोजकत्व में मो. सु. वि. वि.के सहयोग से
आयोजित संगोष्ठी में सम्बोधन करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ (उदयपुर-2007)



आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव से प्रशिक्षण प्राप्त करके द्वितीय बार विदेशों में
धर्म प्रचार के अनन्तर आ. श्री के ग्रन्थ विमोचन करते हुए डॉ. कच्छारा,
डॉ. पारस मल अग्रवाल (भूतपूर्व वैज्ञानिक अमेरिका) ब्र. सोहन लाल जी
एवं ब्र. रमण लाल जी आदि (ग. को. पु. कॉ. सागवाडा)